नीति-विज्ञान ।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरका ५२ वाँ ग्रन्थ ।

नीति-विज्ञान

अथवा

आचार-शास्त्र ।

[मानव-आचार पर वैज्ञानिक विवेचन ।]

लेखक—

श्रीयुत बाबू गोवर्धनलाल,

एम० ए०, बी० एल० ।

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय,

हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई ।

श्रावण, १९८० वि० ।

अगस्त, १९२३ ।

प्रथमावृत्ति ।]

[मूल्य ३)

प्रकाशकः—

नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय,
हीराबाग, पोष्ट गिरगाँव, बम्बई।

मुद्रक—

मंगेश नारायण कुळकर्णी,
कर्नाटक प्रेस, ४३४,
ठाकुरद्वार, बम्बई।

विषय-सूची ।

पूर्वाभास ।

"आचार-नीतिके सम्बन्धमें दो कल्पनायें हैं। एकके अनुसार मनुष्य एक कल्पित ईश्वरकी आज्ञाका पालन करता है; परन्तु क्षण भरके लिए भी यह नहीं सोचता कि उसकी आज्ञा उचित और न्यायपूर्ण है या अनुचित और अन्याय-पूर्ण।........वह किसी कामको बुरा इसलिए समझता है कि ईश्वरने उसका निषेध किया है, इसलिए नहीं कि बुरा समझकर ही ईश्वरने उसका निषेध किया है। आचार-नीतिकी यह कल्पना स्वतंत्र विचार पर नहीं, वरन् आज्ञाधीनता पर अधिक ज़ोर देती है। यह प्रज्ञाके समीप नहीं, वरन् सज़ा पानेके भय, तथा पुरस्कार प्राप्त करनेकी आशाके सम्मुख अपील करती है। इस कल्पनाके अनुसार ईश्वर एक सम्राट् है, जिसकी इच्छा ही धर्म-व्यवस्था या कानून है, और चुपचाप आज्ञा-पालन करना सारे जीवधारियोंका एक मात्र कर्तव्य है; क्योंकि मनुष्य ईश्वरके भृत्य या गुलामके अतिरिक्त कुछ नहीं है। ....आचारनीतिके सम्बन्धमें हम लोगोंके विचारोंने पलटा खाया है। अब लाखों मनुष्य यह विश्वास करने लग गये हैं कि जिस वस्तुके द्वारा आनन्द और समृद्धिकी उपलब्धि होती है वह पूर्ण रूपसे नीत्यनुरूप है और यथार्थ सदाचारका सार या मूल आधार अन्ध भृत्यवत आज्ञापालन नहीं है। यह मानसिक गुलामीका फल है। कर्तव्यको देख कर तथा उसे पूर्ण रूपसे अनुभव कर कर्तव्य-पथ पर चलनेमें ही स्वाधीनता, पुरुषार्थ और ओजस्विता है। सिर्फ़ आज्ञा-पालन करनेको हम भृत्योचित गुण कह सकते हैं; इससे अधिक और कुछ नहीं। यथार्थ सदाचरण स्वतंत्रता और ज्ञानका फल और फूल है।"

—कर्नल आर० जी० इंगरसोल।

भूमिका।

इस पुस्तकका लेखक वैज्ञानिक या दार्शनिक नहीं है और न उसे विद्वान् या साहित्यिक होनेहीका दावा है। तब यह प्रश्न सहज ही उपस्थित होता है कि ऐसी दशामें उसे ऐसे जटिल, विवाद-ग्रस्त और गम्भीर विषयपर कलम उठानेका क्या अधिकार है। उत्तरमें विनम्र निवेदन है कि इस क्षुद्र पुस्तकका लेखक विचारस्वातन्त्र्यको बड़ी मूल्यवान् वस्तु समझता है और उसकी धारणा है कि प्रत्येक मनुष्यको अपने स्वतन्त्र विचारोंके व्यक्त करनेका पूर्ण अधिकार है। संसारके किसी भी विद्वान् मनुष्य या धर्मको किसीके विचार-स्वातन्त्र्यके अपहरण करनेका अधिकार नहीं है। प्रत्येक मनुष्यको जीवनकी समस्याओंपर मनन और विचार करनेका जन्म-सिद्ध अख्तियार है। अतएव लेखकने इस पुस्तककी रचना विद्वान् गिने जाने या विवाद खड़ा करनेके उद्देशसे कदापि नहीं की है। उसने केवल अपने मनोगत भावोंको लिपिबद्ध करनेका प्रयत्न किया है। बहुत समयके अध्ययन और चिन्तनके द्वारा वह जिन नतीजोंपर पहुँचा है वही इस पुस्तकमें क्रमबद्ध रीतिसे लिख दिये गये हैं।

विचारके क्षेत्रमें मौलिकता एक अति ही दुष्प्राप्य वस्तु है। मौलिकसे मौलिक विचारोंके पीछे भी पूर्वकालीन पुरुषोंके अस्पष्ट विचार—शताब्दियोंके अविश्रान्त चिन्तन और प्रयास—अवश्य विद्यमान रहते हैं और प्रत्येक विचारक युगयुगान्तरके चिन्तनों और संचित अनुभवोंसे अवश्य लाभ उठाता है। इस दृष्टिसे संसारका कोई भी विचार पूर्णतः मौलिक या नया नहीं कहा जा सकता। संसारका इतिहास क्रम-बद्ध विकास या उन्नतिका इतिहास है और कोई भी वैज्ञानिक पूर्वापरके सम्बन्धको अस्वीकार नहीं कर सकता। प्राचीन समयके मनुष्य पत्तों और वृक्षोंकी छालकी पोशाक पहिनते थे; परन्तु आजके सभ्य और 'फैशनग्रस्त' मनुष्य तरह तरहके वस्त्रों और परिच्छदोंसे अपने शरीरको ढँकते हैं। क्या यह किसी भी प्रकार अस्वीकार किया जा सकता है कि तुच्छ और सामान्य बल्कल-वस्त्रोंसे ही वर्तमान सभ्य मनुष्योंके विविध प्रकारके परिच्छदोंका विकास हुआ है? इसी प्रकार असभ्य जंगली मनुष्योंके सामान्य नरकट या बाँसके बाजोंसे इसराज या तानपूरेकी उत्पत्ति हुई है। नदीमें तैरने-

वाली छोटी छोटी डोंगियोंसे प्रक्षुब्ध महोदधिमें स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करनेवाले बड़े बड़े जहाजोंका जन्म हुआ है। पशुओंकी खाल या मिट्टीकी तख्तियों पर लिखी जानेवाली पुस्तकोंके गर्भसे ही इस समयके महान् प्रेसों या यंत्रालयोंका अवतार हुआ है। इसी प्रकार पूर्व समयके तुच्छ और सामान्य विचारकोंके अस्तित्वके कारण ही संसारमें बुद्ध और कृष्ण, स्पेन्सर और डार्विन प्रभृति लोग जन्म ग्रहण कर सके हैं। इनकी मौलिकता इनके विचारोंके नये-पनमें नहीं, वरन् इनकी स्पष्टता, इनके अध्यवसाय, और वर्णित बातोंपर स्वयं इनके निश्चल विश्वासमें और अपने विचारोंके मध्य तल्लीन हो जानेमें है।

लेखक इस पुस्तकके लिए इस दर्जेकी मौलिकताके दावा करनेका दुःसाहस नहीं कर सकता। तौभी अपने तुच्छ विचारके अनुसार वह इस पुस्तकको मौलिक अवश्य कह सकता है। यद्यपि उसके विचार एकदमसे नवीन नहीं हैं, तथापि वे लेखकके अपने और स्वतंत्र विचार हैं और लेखक उन्हें सत्य समझता है। लेखकने दूसरोंके विचारोंको भी चिन्तन और मनन द्वारा अपना बनाया है और यही लेखककी मौलिकता है।

जहाँ तक लेखक समझता है इस विषय पर हिन्दीमें एक भी पुस्तक नहीं है। अँगरेजीमें भी इस ढंगसे लिखी गई कोई पुस्तक उसकी नजरोंसे नहीं गुजरी। अँगरेजी पुस्तकें योरोपीय परिस्थितियोंको नजरमें रखकर लिखी गई हैं, अतएव वे भारतीय परिस्थितियोंके साथ पूर्णतया कदापि लागू नहीं हो सकतीं। वर्तमान पुस्तक किसी एक पुस्तकके आधार पर नहीं लिखी गई है, वरन् लेखकको इसके लिए बहुतसी पुस्तकोंका अध्ययन करना पड़ा है। ज्ञानतः लेखकने जितनी पुस्तकोंसे सहायता ली है उनका वर्णन उसने स्थल स्थल पर ग्रन्थके भीतर ही कर दिया है; परन्तु अज्ञात रूपसे लेखकको कितनी और किन किन पुस्तकोंसे सहायता मिली है यह कहना उसके लिए भी कठिन है। सब कुछ स्वीकार करने पर भी लेखक शायद इस पुस्तकके कुछ अंशोंको—विशेष कर अन्तके कई अध्यायोंको—मौलिक कह सकता है और इसके लिए पुरस्कार या तिरस्कारका भागी केवल लेखक ही है।

पहले ही निवेदन किया जा चुका है कि लेखक विद्वान् या साहित्यिक होनेका दावा नहीं करता। इसी लिए इस पुस्तककी रचनाशैली और भाषा दोनों साधारण हैं। लेखक साहित्यिक नहीं है, इसलिए उसकी भाषा साहित्यिकोंको नापसन्द हो सकती है और वे इसे नीरस और सौन्दर्य-रहित भी अनु-

मान कर सकते हैं। अतएव यदि साहित्यिकों और विद्वानोंकी यह धारणा हो, तो इससे लेखकको कोई दुःख न होगा। क्योंकि वह न तो भाषाका पण्डित है और न साहित्यका मर्मज्ञ, इसलिए उसने भाषाके सौन्दर्य्यकी अपेक्षा स्पष्टता पर कहीं अधिक ध्यान रक्खा है। भाषा साहित्य या कविता पर भी लेखक अपने कुछ स्वतंत्र विचार रखता है, परन्तु यहाँ पर उनके वर्णन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। साहित्यिक चाहे जो कुछ कहें, लेखक तो यही समझता है कि भाषाका उद्देश केवल भावोंका व्यक्त करना है और जिस भाषाके द्वारा भाव अच्छी तरहसे व्यक्त किये जा सकें वही भाषा उत्तम है। इस पुस्तकमें लेखकने आद्योपान्त अपने इसी सिद्धान्त पर चलनेकी चेष्टा की है। इसी लिए साहित्यिक नियमोंके विरुद्ध उसे स्थल स्थलपर एक ही बातको बदले हुए शब्दोंमें दो दो तीन तीन बार भी लिखना पड़ा है।

अन्तमें वह अपने सभी पाठकों और समालोचकोंसे क्षमा और निष्पक्षताकी प्रार्थना करता है। मतभेद बुरी वस्तु नहीं है—क्योंकि भिन्नता, असादृश्य या नानात्वमें ही जीवनका स्वाद है—किन्तु दूसरोंके मतोंपर बिना विचार किये, प्रमाणोंपर बिना कुछ भी ध्यान दिये— अपने मतसे विरुद्ध अन्य सभी मतोंकी उपेक्षा करना अवश्य बुरी वस्तु है। लेखककी कदापि यह इच्छा नहीं है कि सब लोग उसीके सदृश सोचने लग जायँ; बल्कि वह यह चाहता है कि सब लोग स्वतंत्रतापूर्वक विचार कर सकें। लेखक जितना मूल्य अपने स्वतंत्र विचारोंका समझता है उतना ही दूसरोंके स्वतंत्र विचारोंका भी समझता है और इस कारण उनका यथेष्ट आदर करता है।

इस पुस्तकको लिखे हुए कई वर्ष हो गये। पुस्तक लिखनेका निश्चय तो लेखकने बहुत पहले कर लिया था, परन्तु उसका आरम्भ सन् १९१८ में हुआ और १९२० में वह प्रायः पूरी हो गई। प्रकाशकसे पुस्तकके प्रकाशित करनेकी बातोंको तै हुए भी प्रायः दो वर्ष हो गये और अब १९२३ में यह पुस्तक अनेक विघ्न बाधाओंको तै करके संसारके प्रकाशमें पदार्पण कर रही है। लेखकको विश्वास नहीं होता कि इस पुस्तकका अच्छा स्वागत होगा, तथापि कर्तव्यपालन समझ कर ही वह इस पुस्तकको—अपने विचारोंको जो अनेक समयसे उसके मस्तिष्कमें हलचल मचा रहे थे—संसारमें भेजनेका साहस कर रहा है। न तो उसे पुरस्कारकी आशा है और न तिरस्कारका भय। वह सर्वथा उदासीन है।

लेखक यह कदापि नहीं समझता कि यह पुस्तक रत्नरूपसे मातृभाषाके मुकुटमें जटित होकर माताकी शोभावृद्धि कर सकेगी, तौभी यदि मातृभाषाके पुजारी इस पुष्परूपी तुच्छ पुस्तकको माताके चरणों पर स्थान पानेके योग्य समझेंगे, तो लेखककी प्रसन्नताकी कोई सीमा नहीं रहेगी।

पाठकों और समालोचकोंसे लेखक केवल यही भिक्षा चाहता है कि पुस्तकको एक बार आद्योपान्त पढ़े बिना वे इसके सम्बन्धमें कोई राय कायम न कर लें।

सबसे अन्तमें लक्ष्मी, प्रभा और माधुरीके सम्पादकोंके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना भी लेखकका कर्तव्य है। इस पुस्तकके अनेक अंश 'लक्ष्मी' के पृष्ठोंमें और 'युद्ध, जीवन-संग्राम और सदाचार' तथा 'सदाचारकी उत्पत्ति और आवश्यकता' शीर्षक अध्याय 'माधुरी' और 'प्रभा' में प्रकाशित हो चुके हैं। प्रकाशनके पूर्व ही उन्हें इस पुस्तकमें सम्मिलित करनेकी अनुमति देनेके लिए लेखक उक्त सम्पादकोंके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता है। विशेष कर लेखक अपने मित्र बाबू रामानुग्रहनारायणलाल बी० ए० का बड़ा कृतज्ञ है। लेखकके परिश्रमके साथ उन्होंने जो स्नेह दिखलाया है उसके लिए लेखक उनका चिर ऋणी रहेगा। उन्होंने ही अनुरोध करके इसके खण्डोंको लक्ष्मीमें प्रकाशित किया और ग्रन्थके समाप्त हो जाने पर उन्होंने ही लेखकको इसे पुस्तकाकार प्रकाशित करानेके लिए उत्तेजित किया। बिना उनके उत्साहवर्द्धनके शायद इस ग्रन्थका जन्म ही न होता।

यहाँ पर यह कहना बहुत जरूरी प्रतीत होता है कि लेखक और प्रकाशकके मध्य सैकड़ों कोसोंका अन्तर रहनेके कारण, बहुत कुछ सावधानी रखते हुए भी, यदि पुस्तकमें कुछ अशुद्धियाँ रह गई हों, तो पाठक उनपर ध्यान न देंगे और कृपया उन्हें सुधार लेंगे। अन्तमें विद्वान् प्रकाशकके प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करके लेखक इस भूमिकाको समाप्त करता है। प्रकाशकने कहीं कहीं पर उचित सम्मतियाँ देकर, संशोधन करके एवं ध्यानपूर्वक इस पुस्तकको प्रकाशित करके लेखकके ऊपर जो ऋणभार रक्खा है उससे मुक्त होना उसके लिए असम्भव है।

गया—
जुलाई, १९२३।

—गोवर्द्धनलाल।

नीति-विज्ञान ।

पहला अध्याय ।

विषय-प्रवेश ।

विचारका महात्म्य ।

बहुत दिनोंकी जड़ावस्थाके बाद हमारे देशमें जागृतिके लक्षण दीख पड़ रहे हैं। चारों ओरसे पुकार उठ रही है कि "अब सोनेका ज़माना गया, अब हमें कर्ममें रत होना चाहिए। केवल तर्क वितर्कसे काम न चलेगा। इस समय हमारा उद्धार दर्शनशास्त्रके द्वारा नहीं वरन् साधनसे होगा।" निस्सन्देह हम केवल ऐसा कहते ही नहीं हैं वरन् हम कुछ न कुछ काममें लग भी गये हैं।

स्वभावतः पाठकवर्ग मुझसे पूछ सकते हैं कि ऐसे समयमें भी नीतिशास्त्रकी महत्ता समझानेसे क्या लाभ होगा। एक तो भारत स्वभावसे ही ध्यानशील और संसारसे उदासीन है, इस पर भी उसे ध्यानस्थ बनानेका प्रयत्न क्यों कर रहे हो? मेरा उत्तर बहुत साधारण है। ज़रा भी सोचने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि *विचारसे ही कर्मोंकी उत्पत्ति होती है। बिना विचारके कर्म सर्वथा असम्भव है।* संसा-

रकी यह सारी भौतिक उन्नति भी विचारका ही फल है। वैज्ञानिकोंके अहर्निशि चिन्तन करनेसे ही यह मुझे प्राप्त हुआ है। यदि वे रात दिन कठिन परिश्रम करके और अपने सरको खपा कर प्राकृतिक नियमोंकी जानकारी न प्राप्त करते तो आज संसार इतना उन्नत कहाँसे होता? कार्य्यके पहिले विचार ही जन्म ग्रहण करता है। *प्रत्येक कामके करनेके पहले हमारे मनमें उस कामके करनेका ख़याल ही पैदा होता है।* उसी ख़यालको हम कार्य्यमें परिणत करते हैं। मान लो कि हम अपने घरसे अपने मित्रके यहाँ जाना चाहते हैं, तो अब यदि प्रत्येक पग पर यह ख़याल हमारे मनमें न रहे, तो क्या हम अपने मित्रके यहाँ पहुँच सकते हैं? क्या बिना इस ख़यालके हम एक क़दम भी बढ़ा सकते हैं? विचार या ज्ञान, विश्वास या धारणा ही सब कुछ है। यह ठीक है कि अक्सर हमारे विचार हमारे मस्तिष्कमें सोया करते हैं, कुछ बाह्य कारणोंसे हम उन्हें व्यवहारमें नहीं लाते हैं या कभी कभी हमें उनके विरुद्ध भी कुछ काम करना पड़ता है। परन्तु ऐसी अवस्थामें भी ये विचार एकदम बेकार नहीं बैठे रहते। ये भविष्यके लिये संचित रहते हैं। ये ही भविष्यमें हमारे कार्य्योंके अनुशासक बनते हैं। ये विचार सलाईमें अग्निके समान छिपे रहते हैं और अवसर पाते ही एकाएक प्रज्वलित हो उठते हैं, बमगोलेके समान फट पड़ते हैं और अक्सर बहुतसी चीजोंको भस्मीभूत भी कर डालते हैं। *बड़े बड़े आन्दोलनों और विप्लवोंकी आकस्मिक उत्पत्ति इसी प्रकार होती है।* पुनः ये मूक विचार अपने उपयुक्त वायुमण्डलकी रचनामें कहाँ तक समर्थ होते हैं, यह तो स्पष्ट ही है। हम खुद शायद कार्य्यमें प्रवृत्त न हों, परन्तु हमारे मूक विचारोंहीसे उन काम करनेवालोंको कितनी सहायता मिलती है

जिनके विचार हमसे मिलते हैं। हाथ पकड़ कर हम उनकी सहायता न भी करें तौभी केवल मात्र उनके पथमें हमारे किसी बाधाके न रखनेसे क्या उनका कम उपकार होता है?

अपने विचारोंहीके कारण मनुष्यने दैविक और पैशाचिक दोनों प्रकारका काम किया है। उसने संसारहितके लिए अपना प्राण तक परित्याग किया है। अपने विचारोंहीके कारण उसने देश विदेश विजय किये हैं, बच्चों और स्त्रियोंको अग्निके हवाले किया है तथा काफिरों और अविश्वासियोंकी हत्या की है।

ज्ञानकी आवश्यकता।

ज्ञानका माहात्म्य अनन्त है। हमारा प्रत्येक कार्य्य ज्ञानका ही नतीजा है। प्रत्येक काम ज्ञानरूपी बीजका ही फल और फूल है। अज्ञान ही सारे दु:खों और क्लेशोंका कारण है। प्राकृतिक नियमोंके न जाननेके कारणसे ही मनुष्य अनेकों दु:ख झेलता है। उदाहरणके लिए आप बीमारियों-हीको लीजिए। क्या प्राय: सभी बीमारियोंकी जड़ हमारा अज्ञान नहीं है? यदि हमें जीवनके सभी नियम पूर्णत: माळूम होते—यदि हमें खाने पीने या रहने सहनेकी उत्तम रीति माळूम होती—तो क्या हम सहजमें ही इतनी बीमारियोंके लक्ष्य बन सकते? इसी कारण हमारे शास्त्रोंने ज्ञानको इतनी महत्ता दी है और अज्ञानको समस्त दु:खोंका कारण ठहराया है।

नीति-विज्ञान-की महत्ता।

तब क्या ज्ञानका वह अंश जिसके द्वारा मनुष्योंके परस्परका कर्तव्य स्थिर होता है एकदम व्यर्थ है? नीतिशास्त्र सदाचरणका शास्त्र है। यदि हमें हर बातमें ज्ञानकी इतनी आवश्य-कता है तो क्या हमें इस शास्त्रकी कोई जरूरत नहीं? क्या हमें नीतिके स्वरूप और उत्पत्तिके सम्बन्धमें कुछ भी जानने-

की कोई जरूरत नहीं ? प्रकृति हमें सच्चरित्र बनाना चाहती है या दुश्चरित्र, विना मजहबके भी सदाचार सम्भव है या नहीं, हमारे हृदय-में सदाचारकी कोई स्वतन्त्र प्रवृत्ति है या नहीं, हमलोग स्वर्ग या नरककी लालच या भयसे ही सत्कर्म करते हैं, या और किसी कार-णसे, उत्तम और नैतिक घिरावके पैदा करनेसे संसारका दुःख कुछ मेटा जा सकता है या नहीं, इत्यादि प्रश्नोंका उत्तर क्या हमारे लिए सर्वतः उदासीनताकी बात है ?

मनुष्य स्वभावसे ही सामाजिक जानवर है। मनुष्यकी सारी कामनायें समाजके द्वारा ही पूरी हो सकती हैं। समाजके बिना वह एक क्षण भी जीता नहीं रह सकता। समाजमें रहने पर ही उसके स्वभावका पूर्ण विकाश हो सकता है—उसकी पूर्ण उन्नति हो सकती है। अतएव उसे सबसे अधिक समाज-विज्ञान जाननेकी आवश्य-कता है और विशेषकर उसके लिए नीति-विज्ञान या सदाचार-शास्त्रकी जानकारी परमावश्यक है।

नीतिके क्षेत्र-में ज्ञानकी आवश्यकता।

साधारणतः सभी बातोंमें ज्ञानका माहात्म्य स्वीकृत हो चुका है, परन्तु तौभी नैतिक जीवनमें ज्ञानका एकाधिपत्य अभी तक किसी देशमें नहीं हुआ है। लोगोंका विचार है कि इसमें मजहब * के अखण्ड साम्राज्यको ज्योंका त्यों छोड़ देना चाहिए; नैतिक बातोंमें तर्क वितर्ककी कोई आवश्यकता नहीं। इससे लाभके बदले हानि ही अधिक

---

* मैं जान बूझ कर 'धर्म' शब्दके बदले अरबीके 'मज़हब' शब्दका प्रयोग कर रहा हूँ, क्योंकि मेरी समझमें 'धर्म' और 'मजहब' में बड़ा अंतर है और हमारे वर्तमान धार्मिक विचारोंके लिए 'मज़हब' शब्द ही अधिक उप-युक्त है। (देखो अध्याय पन्द्रहवाँ।)

होगी। हमारे देशके लोग इसी कारण अँगरेजी शिक्षा तथा वैज्ञानिक शिक्षाके विरुद्ध हैं और कुछ लोग जो इन्हें आवश्यक समझते भी हैं तो वे भी यह जरूर चाहते हैं कि वैज्ञानिक शिक्षाके साथ साथ मजहबी शिक्षा भी अवश्य दी जाय ताकि हमारे आचार ढीले न पड़ने पावें। परन्तु यह विचार सर्वतः भ्रम-मूलक है। नीतिके क्षेत्रमें भी ज्ञानकी ज्योतिकी कम आवश्यकता नहीं। *ज्ञान ही कर्तव्याकर्तव्यका फैसला कर सकता है, अन्धविश्वास कदापि नहीं।*

मज़हबसे ज्ञानका वहिष्कार और उसका कुपरिणाम

परन्तु मज़हबकी स्थिति ज्ञान पर नहीं वरन् अन्ध-विश्वास पर है। मजहब अपनी आज्ञाओंके लिए बुद्धिग्राह्य युक्तियाँ नहीं बतला सकता। यहाँ हमें धर्मग्रन्थों, ईश्वरके कहे हुए वाक्यों, तथा पुजारियोंके आदेशोंका सहारा लेना पड़ता है। और जब *ज्ञानका इस प्रकार वहिष्कार होता है, तो कोई आश्चर्य नहीं कि हमारे कार्य्य भी ज्ञानसे शून्य तथा पशुवत् होते हैं। इसी ज्ञानके वहिष्कृत होनेके कारण हम मज़हबोंके आदेशोंमें और मज़हबी लोगोंके आचरणमें इतनी विरुद्धता पाते हैं।* अन्धविश्वास पर स्थित होनेके कारण ही, नैतिक सिद्धान्तोंको मानते हुए भी, मजहब इन पर व्यवहार नहीं करता। ईश्वरकी एकता तथा मनुष्यजाति मात्रके भ्रातृत्वको मानते हुए भी मजहबने असंख्योंका खून किया है—इतने लोगोंकी हत्या की है कि जिनकी हड्डियाँ एकत्रित होने पर संसारके सभी मीनारोंसे ऊँची हो जायँगी—लोगोंको इतनी यंत्रणा पहुँचाई है कि जिसके सामने 'मजहब-कल्पित नरक'की भी यातनायें शायद फीकी पड़ जायँगी—अहिंसावादी होने पर भी मजहबने इतने लोगोंके सुख शान्ति और आरामको बलात्कार छीन लिया है तथा उनके चित्तको

श्मशान बनाया है कि वह सर्वथा कल्पनातीत है। मज़हबने सदा ज्ञानका पथावरोध किया है—अपनी अवस्थाके बदलनेकी कोशिशमें मनुष्यके साथ शत्रुता की है और संसारकी उन्नतिको पूर्ण बलके साथ रोका है।

मज़हब और ज्ञान।

हम अपने 'मज़हबाच्छन्न' देशके सम्बन्धमें क्या कहें, योरोपमें भी जहाँ कि मज़हबका प्राबल्य एकदम घट गया है हम देखते हैं कि मज़हबकी कुचेष्टा और अपकार-प्रियता अभी तक समाप्त नहीं हुई है। आज भी हम देखते हैं कि कथोलिक इन्साइक्लोपीडिया—कुछ तो बाइबुलका सहारा लेकर और कुछ इस बहाने कि अविश्वाससे बड़ी सामाजिक हानि होती है—धार्मिक असहिष्णुताको प्रतिपादित करता है।........ ....सितम्बर १९०७ के घोषणापत्रमें (encyclical letter) वर्तमान पोपने यह प्रकाशित किया है कि "नवीन विचारके अध्यापक विश्वविद्यालयोंमें न बहाल किये जायँ और उनके ग्रन्थोंका प्रचार बन्द किया जाय।" *

यह सर्वथा स्वाभाविक है, क्योंकि अन्ध-विश्वासपर स्थित होनेके कारण मज़हबको ज्ञानका प्रतिरोध करना ही पड़ेगा। *ज्ञान और मज़हब मित्र कदापि नहीं हो सकते।* एककी अवनतिसे दूसरेकी उन्नति और एककी उन्नतिसे दूसरेकी अवनति होगी। मज़हब (अर्थात् अन्ध-विश्वास) और ज्ञान साथ साथ कदापि नहीं चल सकते। ज्ञानमें स्वतन्त्रता है और मज़हबमें गुलामी; स्वतन्त्रता और गुलामीका साथ

---

* Christianity and Civilization by Charles T Gorham Watts (1914) pp. 101—2

किस प्रकार हो सकता है—अन्धकार और आलोक एक ही स्थान-पर किस प्रकार रह सकते हैं!

ज्ञानसे लाभ।

परन्तु मनुष्यका उपकार ज्ञानके ही द्वारा हुआ है, यह स्पष्ट है। ज्ञान ही मनुष्यके दुःखोंको हटा सकता है यह स्वयं-सिद्ध है। ज्ञानके द्वारा मनुष्य प्राकृतिक अभाव-को भी पूरा कर सकता है। ज्ञानके द्वारा वह प्रकृति पर एकाधिपत्य लाभ करता है और प्रकृतिकी शक्तियोंसे दासीका काम लेता है। जल, वायु, आकाश उसके आज्ञानुवर्ती बनते हैं। बक्लने* इसको पूर्णतया सिद्ध कर दिया है कि योरोपकी उन्नति मज़हबके घटनेसे हुई। मज़हबका प्राबल्य जितना घटा उतना ही योरोप उन्नतिकी ओर अग्रसर हुआ। जितना ही मज़हबका अन्धकार कम हुआ उतना ही स्वतन्त्रता देवीकी आभा चहुँओर फैली। जब मनुष्यकी मानसिक गुलामी जाती रही तब उसकी शारीरिक गुलामीका भी अन्त हुआ। बुद्धिके स्वतन्त्र होने पर मनुष्यने राजनैतिक स्वतंत्रता भी प्राप्त की—स्वेच्छाचारी राजाओंके अप्रतिहत बल और असीम अत्याचारोंकी इतिश्री हुई। बक्लकी पुस्तकके पढ़ने पर किसीके भी जीमें सन्देह न रहेगा कि ज्ञानके द्वारा ही क्लेशोंसे हमारी मुक्ति हो सकती है।

मज़हबको ज्ञानकी आवश्यकता नहीं है।

मज़हब और ज्ञानका एक स्थानमें रहना असम्भव है। भोजन कौन करता है? वही जो भूखा है। इसी प्रकार ज्ञानोपार्जन वही करता है जो ज्ञानका भूखा है—जो ज्ञानसे तृप्त नहीं हुआ है—जो समझता है कि वह कुछ नहीं जानता तथा उसे बहुत कुछ सीखना है। मज़हब यह समझता है कि उसे सभी विषयोंका ज्ञान प्राप्त है और

---

* देखो Buckle's History of Civilization in England-Humphrey Milford World's Classics Series 3 vols.

मजहबके अनुयायी मजहबकी बातोंको साक्षात् परमात्माकी बात समझ कर माननेके लिए बद्ध हैं। शंकाका यहाँ कोई स्थान नहीं है। परमात्मा क्या झूठ बतला सकता है? वह भी क्या मूर्ख हो सकता है? यदि कोई शंका कभी धीमेसे विद्यमान हुई भी, तो मजहबी आदमी शीघ्र इसे पाप समझ कर दबानेकी चेष्टा करता है; परन्तु तर्क शंका और अन्वेषणसे ही ज्ञानकी प्राप्ति होती है। सारांश यह है कि मज़-हबी आदमीको कोई ज्ञान सीखना नहीं है, वह सब कुछ जानता है।

मनुष्यकी सृष्टि किस प्रकार हुई? क्यों यह कौनसी मुश्किल बात है! शेषशायी भगवानके कमल-नालसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए और ब्रह्मा-हीने मनुष्य जातिकी उत्पत्ति की। क्या बाइबुल और कुरान यह साफ़ साफ़ नहीं कहते कि प्रायः छः हज़ार वर्ष हुए कि ख़ुदाने छः दिन तक कड़ी मेहनत करके इस संसारकी और सब जीवोंकी रचना की थी और सातवें यानी इतवारके दिन ज़रा सुस्ताये थे? वर्षा किस प्रकार होती है? यह भी कोई बड़ी बात नहीं है। इसे वरुणदेवकी कृपा या क्रोध ही समझो। क्या सूर्य्य और चन्द्रमा घूमते हैं या पृथ्वी घूमती है? यह भी साधारण ही प्रश्न है। क्या रामचन्द्रजीके जन्मके समय सूर्य्य, और श्रीकृष्णके रास करनेके समय चन्द्रमा, एक ही स्थानपर महीनों तक खड़े नहीं रहे थे? जातियोंकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई? यह भी कोई कठिन सवाल नहीं है, क्योंकि यह कौन नहीं जानता कि ब्रह्माके मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षत्रिय, जंघासे वैश्य तथा चरणोंसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं? लोग बीमार क्यों पड़ते हैं? ईसाई मज़हब साफ़ कहता है कि प्रेतोंके शरीरके अन्दर घुसनेसे। व्याधिसे छुटकारा किस प्रकार मिल सकता है? देवताओंके प्रसन्न करनेसे, पूजा-पाठ, जप, ब्राह्मण-भोजन इत्यादिसे। (चलिए अब चिकित्सा-

शास्त्रकी कोई आवश्यकता शेष न रही)। मैं गरीब क्यों हूँ, कामोंमें मुझे सफलता क्यों नहीं होती ? यह मेरे खोटे प्रारब्धका दोष है। धनोपार्जनके लिए पुरुषार्थ और अध्यवसायकी ज़रूरत नहीं। मुझे आज एक अत्यन्त ज़रूरी कामके लिए कलकत्ते जाना था, परन्तु समय पर स्टेशन न पहुँच सका, गाड़ी खुल गई। क्या किया जाय क़िस्मतहीमें गाड़ी छुटना लिखा था। अधिक उदाहरण कहाँ तक दिये जायँ।

मज़हबसे हानि।

तात्पर्य्य यह है कि जब तक अन्ध-विश्वास बना रहता है तब तक ज्ञान पदार्पण नहीं कर सकता। मज़हबके घटनेहीसे योरोपकी तीनों बड़ी भूलें निर्वासित हो सकी हैं। प्रथम भूलके कारण राजनीतिमें आत्मबलकी अपेक्षा शासकगणपर ही अधिक भरोसा रक्खा जाता था। द्वितीय भूलके कारण विज्ञानके नामसे लोग अनहोनी बातोंमें विश्वास करते थे। तृतीय भूलके कारण लोग धर्ममें अत्यन्त हिंसक स्वभावके थे। * बक्लने यह भी प्रमाणित कर दिया है कि *मज़हबका एकाधिपत्य जिन देशोंमें जितना ही अधिक समय तक रहा है वे सभ्यतामें उतना ही अधिक पीछे पड़ गये हैं।* उसने सोलहवीं शताब्दीके इँग्लैण्ड और फ्रांसकी इस प्रकार तुलना की है—" अँगरेज़ोंने अपने ध्यान और बुद्धिको ऐहिक बातोंमें लगाया जिसका नतीजा यह हुआ कि सोलहवीं शताब्दीके अन्त तक उन्होंने एक ऐसा साहित्य पैदा कर डाला कि जिसकी मृत्यु कदापि नहीं हो सकती। किन्तु फ्रांस इस समय तक एक भी ऐसी पुस्तक न निकाल सका था कि जिसके नष्ट हो जानेसे

* Buckle's History of Civilization Vol. 1 P. 271. प्रत्येक भारतवासीको यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

योरोप दरिद्र हो सकता है। एक बात और भी है—फ्रांसमें सभ्यताने कहीं पहले जन्म ग्रहण किया था; देशकी आर्थिक अवस्था पहले ही उन्नत हो चुकी थी; इस देशकी भौगोलिक स्थिति इसे योरोपीय विचारका केन्द्र बना रही थी और इसने उस समय साहित्यकी ओर ध्यान दिया था, जब कि हमारे पूर्वज एकदम मूर्ख और असभ्य जंगली थे।

" साधारण उत्तर यही है कि कोई देश तबतक उन्नति नहीं कर सकता जब तक वहाँ मज़हबका प्राबल्य बना रहता है।........ सिर्फ़ बुद्धि-विषयक बातोंहीमें यह हालत नहीं है। मज़हबका एकाधिपत्य जब तक बना रहेगा तब तक किसी देशकी भौतिक और नैतिक अवस्था भी शोचनीय ही रहेगी, क्योंकि मज़हबके रहते सहानुभूतिका उत्पन्न होना असम्भव है। " *

योरोपके सभी देशोंकी अपेक्षा स्पेनमें मज़हबका प्राबल्य कहीं अधिक रहा है और इसी कारण स्पेन सभ्यतामें सभी योरोपीय देशोंसे आज तक पीछे है। मज़हबसे पूर्णतः जकड़ जाने पर थोड़े ही दिनोंमें स्पेनकी क्या दुर्दशा हुई, यह अत्यन्त ही शिक्षाप्रद है।

बक्क कहते हैं कि सतरहवीं शताब्दीके आरम्भमें (यानी चतुर्थ फिलिप और द्वितीय चार्ल्सके राज्यके पहले) मैड्रिडकी आबादी चार लाख थी और अठारहवीं शताब्दीके आरम्भमें वह घट कर दो लाख हो गई। सोलहवीं शताब्दीके अन्दर सेविल शहरमें सोलह हज़ारसे ज्यादे करघे थे और उनमें एक लाख तीस हज़ार आदमी काम करते थे। चतुर्थ फिलिपके राज्यमें इन सोलह हज़ार करघोंके स्थान पर

---

* Ib. Vol. II.Pp. 7—8

तीन सौसे भी कुछ कम ही शेष रह गये थे। सोलहवीं शताब्दीके मध्य टौलेडो शहरमें पचाससे अधिक ऊनके कारखाने थे। १६६५ में वहाँ सिर्फ़ तेरह कारखाने जीवित रह गये थे। टौलेडो अपने रेशमी वस्त्रोंके लिए मशहूर था, परन्तु यह व्यवसाय भी नष्ट हो गया। सतरहवीं शताब्दीके आरम्भ तक स्पेन अपने दस्तानोंके लिए प्रसिद्ध था और वे बहुत देशोंमें भेजे जाते थे। परन्तु यह व्यवसाय भी सतरहवीं शताब्दीके मध्य तक एकदम गायब हो गया।........ इग्लैंण्डका एक मंत्री स्टैन होप जो १६९९ में स्पेनमें रहता था लिखता है कि "एक भी ऐसा दिन नहीं गुजरता कि अन्नके लिए लड़ाई करके लोग सड़कों पर न मरते हों।" १६७९ में एक लेखकने लिखा है कि मज़हबी किताबोंके सिवा अन्य सभी ग्रन्थ एकदम व्यर्थ समझे जाते थे। अठारहवीं शताब्दीके मध्य तक मैड्रिड-में एक भी पुस्तकालय न था। स्पेनकी सबसे प्रसिद्ध सैलेमैन्का यूनिवर्सिटी सन् १७७१ तक निउटन (Newton) के आविष्कारों-को पढ़ानेसे इनकार करती थी। उसका कारण यह था कि ये बाइ-बुलके विरुद्ध थे। डयूक डी सेण्ट साईमन—जो सन् १७२१ और १७२२ में फ्रांसकी ओरसे स्पेनमें दूत होकर गया था—कहता है कि स्पेनमें विज्ञान पापमें और मूर्खता पुण्यमें शामिल है।........ १७६० में कुछ साहसी राजकर्मचारियोंने यह राय जाहिर की कि मैड्रिड (Madrid) की सड़कोंकी सफाईका प्रबन्ध किया जाना चाहिए। इतनी बड़ी धृष्टतासे लोगोंकी कोपाग्नि भड़क उठी। सिर्फ मूर्ख लोग ही नहीं बल्कि पढ़ेलिखे लोग भी भयानक प्रतिवाद करने लगे। गवर्नमेण्टने डाक्टरोंसे राय ली। उन्होंने भी निःसङ्कोच राय दी कि गर्देको न हटाना चाहिए। ऐसा करना गोया नये रास्ते पर चलना ठहरा।

उनके पूर्वज सदा गर्द और गन्दगीमें रहे तब वे क्यों नहीं रह सकते हैं? उनके पूर्वज निःसन्देह बुद्धिमान थे और निष्कारण ही वह गर्दमें नहीं रहते थे। नहीं नहीं, लोगोंके लिए दुर्गन्धकी शिकायत करना भी फजूल ही था, इससे भी वैज्ञानिक लाभ ही होता था। अतः स्पेनके सभी डाक्टरोंने सहमत होकर यह राय दी कि गर्द और कूड़ेको ज्यों-का त्यों छोड़ देना चाहिए।........फ़स्द खोलने और जुलाब देने-हीको स्पेनके डाक्टर प्रत्येक बीमारीके लिए परमौषध समझते थे। ये सभी बीमारियोंके लिए अचूक अस्त्र थे। *

धार्मिक दृढ़तामें योरोपके देशोंमेंसे स्कौटलैण्ड ही कुछ कुछ स्पेन-का सामना कर सकता है। स्कौटलैण्डमें भी अन्य देशोंकी अपेक्षा बहुत दिन तक मज़हबका साम्राज्य बना रहा है। फलतः सभ्यतामें स्कौटलैण्ड भी बहुत पीछे रहा है। + स्कौटलैण्ड अब तक भी पूर्ण-ताके साथ मज़हबसे अपना पिण्ड नहीं छुड़ा सका है। वहाँ धार्मिक असहिष्णुता—धार्मिक हिंसकता—अभी तक प्रबल रूपसे विद्यमान है। स्कौटलैंडनिवासी अभी तक विश्वास करते हैं कि सिवाय कुछ चुने हुए आदमियोंके समस्त मनुष्यजाति नरककी भागिनी होगी। प्राचीन मज़हबमें अब तक बहुत बल शेष है। अतएव लोगोंका जीवन निराशासे पूर्ण है। साधारणसे साधारण और एकदम निर्दोष दिल-बहलाव भी बुरा समझा जाता है। मज़हब अब तक भी जीवनको श्मशान बनानेकी चेष्टामें लगा है। स्कौटलैण्डकी मानसिक पराधीनताका पता इस घटनासे पूरे तौर पर चल जाता है। सन् १८५३ में

---

* Ib. Vol. II. pp. 400–421.

+ Ib. Vol. III pp. 181–82.

बक्लकी पुस्तक सन १८५७—६१ में लिखी गई।

स्कौटलैण्डमें हैजेकी बीमारी प्रबल रूपसे फैल गई। दरिद्रोंको भर पेट भोजन कराने, अपनी नालियोंको साफ कराने, कूड़े और गर्देका वहिष्कार करानेकी अपेक्षा यहाँके लोगोंने यह स्थिर किया कि इस बीमारीसे बचनेके लिए उन्हें एक ऐसा दिन नियत करना चाहिए कि जिस दिन समस्त स्कौच जाति भूखी रहे और उपदेशक लोग खूब उपदेश दें तथा मनुष्योंका ध्यान पापकी ओर आकृष्ट करें। इस तरह लोगोंको फिटकारने और उनकी निन्दा करनेसे ईश्वरके प्रसन्न होनेकी सम्भावना थी और इसी तरह बीमारीसे छुटकारा मिल सकता था, अन्य उपायों द्वारा नहीं। *

उदाहरणोंके सम्बन्धमें एक निवेदन।

सभी विज्ञानोंकी मूलभित्ति व्याप्तिवाद (Induction) है। अतएव *अन्य विज्ञानोंकी तरह नीतिविज्ञानको भी व्याप्तिवादकी नीवपर स्थित होना चाहिए।* इस कारण यह पुस्तक भी उदाहरणोंसे भरी हुई होती तो अच्छा होता। परन्तु मैं बहुत उदाहरण नहीं दे सका हूँ। इसका कारण केवल मेरी अयोग्यता ही नहीं है, वरन् स्थानका अभाव भी है। मैं नीति-विज्ञानपर पूरा ग्रन्थ लिखने नहीं बैठा हूँ; और न मुझमें इसकी क्षमता ही है। मैं केवल अपने देशबन्धुओंका ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ। तौभी मैंने अपने सिद्धान्तोंके स्पष्ट करनेके लिए यथेष्ट उदाहरण दे दिये हैं। मैंने केवल अपने देशसे ही उदाहरणोंको नहीं लिया है। अपने सिद्धान्तोंको अच्छी तरह स्पष्ट करनेके निमित्त यदि मुझे अन्य देशोंसे भी उदाहरण प्राप्त हो सके हैं, तो उनके उद्धृत करनेमें भी मैं नहीं हिचका हूँ। कारण यह है कि देश काल और जातिके रहते भी एक सार्वभौमिक मनुष्यजाति अवश्य

---

*Ib. Vol. III pp. 474-81.

विद्यमान है जो कुछ समयके बाद निःसन्देह सभी जातीय बंधनों, घृणा और स्वार्थपरताओंको छिन्न करके टेनिसनके कथनानुसार संसारके एकीकरण तथा समस्त मनुष्य जातिकी एक ही पार्लिमेण्टके स्वरूपमें (In the Federation of the World and Parliament of Man) व्यक्त होगी। दूसरा कारण भी है। यदि प्रकृतिकी एकरूपता सत्य है तो मनुष्यका इतिहास भी एक ही होना चाहिए। कारणके एक रहनेपर प्रभाव भी एक ही होगा। इसीलिए हमने विशेषकर मज़हबी अभिद्रोह और मज़हबी अत्याचारोंके सम्बन्धमें योरोपसे ही उदाहरण लिये हैं। योरोपमें ही मज़हबका प्राबल्य पूर्ण दृढ़ताके साथ हुआ था। वहाँ ही मजहबके वृक्षमें अनेकों विषमय फल लगे थे। इसीलिए योरोपमें ही हमें मज़हबी अत्याचारोंके सर्वोत्तम उदाहरण प्राप्त होते हैं। परन्तु आज हमारे देशकी मज़हबी अवस्था ठीक वैसी ही है जो योरोपकी कुछ समय पहले थी। *आँख खोलकर देखने और विचार करनेसे यह स्पष्ट हो जायगा कि हमारा वर्तमान मज़हब योरोपके क्रिस्तान धर्मसे भिन्न नहीं है। अतः मज़हबके हाथों हम उतना ही सताये जा रहे हैं जितना पूर्वकालमें योरोप सताया जा चुका है, एवं आज भी कुछ कुछ सताया जा रहा है। निस्तारके लिए हमें भी वही मार्ग पकड़ना होगा जिसे योरोपने पकड़ा है। दुःखसे छुटकारा पानेके लिए हमें भी ज्ञानका आश्रय लेना होगा।*

एक प्रचलित तर्कपद्धतिका विरोध।

योरोपके भीषण महा समरकी ओर इशारा करके आज कल हम संकीर्णता-प्रिय भारतवासी यह कह उठते हैं कि "विज्ञानकी इतनी प्रशंसा व्यर्थ है। देखो इसने योरोपमें किस प्रकार शोणितकी सरिता बहाई है, किस प्रकार दुर्बलों पर अत्याचार कराया है, किस

प्रकार विज्ञानकी जानकारी मनुष्यके विनाशमें—असंख्यों मनुष्योंके वध करनेमें—लगाई गई है, ज्ञानका योरोपने बहुत दुरुपयोग किया है, प्राकृतिक ज्ञानने योरोपको नरहत्यामें बड़ी सहायता दी है, अतएव ज्ञानको परम लक्ष्य न समझना चाहिए। पाश्चताय जातियाँ धन विभवके बढ़ानेके चक्करमें हैं। हम भारतवासियोंको पश्चिमकी इस आधिभौतिक सभ्यताकी आवश्यकता नहीं है।" आज कल तर्क करनेका यही फ़ैशन है। पाश्चात्य सभ्यताको भौतिक और अपनी सभ्यताको आध्यात्मिक कह कर हम झट पाश्चात्य जगतके विज्ञान और आविष्कारोंको विषवत् त्याग करनेके लिए तत्पर हो जाते हैं। परन्तु मैं पूछता हूँ कि वर्तमान वैज्ञानिक उन्नतिके पूर्व क्या योरोपमें लड़ाइयाँ न हुआ करती थीं? मजहबी योरोपमें अधिक लड़ाइयाँ हुई हैं या वैज्ञानिक योरोपमें? पुनः वर्तमान योरोपीय युद्ध क्या यह वैज्ञानिकोंका—या योरोपके दार्शनिकोंका—भड़काया हुआ है या मजहबी लोगोंका? क्या प्रायः प्रत्येक बद्ध-समर योरोपीय देशोंके गिरजोंसे लोगोंको युद्ध करनेकी उत्तेजना न दी जाती थी? और उनका धैर्य्यवर्द्धन न किया जाता था? क्या विलियम कैसर यह न समझता था कि वह इसी लिए अवतरित हुआ है कि वह देशोंको विजय करे? क्या इंग्लैण्ड प्रभृति देशोंको पराजय करना वह अपना ईश्वर-निरूपित कर्तव्य न अनुमान करता था? क्या जर्मनीके प्रत्येक गिरजेसे जुझाऊ बाजोंसे भी अधिक उत्तेजक प्रोत्साहनकी ध्वनि न उठती थी? क्या प्रत्येक देशके गिरजोंमें विजय प्राप्तिके लिए ईश्वरकी प्रार्थना न की जाती थी? यदि ज्ञान ही युद्धका कारण है तो संसारकी असभ्य जातियोंमें युद्धका नाम और निशान भी न पाया जाना चाहिए था—उनहीको पूर्ण अहिंसावादी होना चाहिए था। यदि सुखोपभोग—ऐहिक आनन्द और

आराम—ही लड़ाइयोंके जनक हैं तो आओ हम अपने भवभूति और कालिदासको तिलांजलि देकर जंगलियोंके सांग्रामिक गीत गायें, अपने न्याय और वेदान्तको छोड़कर नर-बलिदान आरम्भ करें और चन्दन, अक्षत, पुष्प, मिष्टान्न इत्यादिके बदले नररक्तसे ही अपने देवताओं तथा ईश्वरको प्रसन्न करें। यदि भौतिक सभ्यता बुरी वस्तु है तो आओ हम अपने वस्त्रोंको अभी उतार फेकें और छाल और बल्कल धारण करें—पकाकर नाना प्रकारके उत्तम भोजनोंका खाना छोड़ दें और कच्चे कन्द मूल खाना तथा मांसभक्षण करना आरम्भ करें। सुन्दर मकानोंको तोड़ डालें—ताजमहलको अभी भस्मीभूत कर डालें—और पर्णकुटीमें रहना शुरू करें। यदि भौतिक सभ्यता बुरी वस्तु है—सुखोपभोग विष है—तो आओ शीघ्र वीणाको चूल्हेमें लगा दें, इसराज और तानपूरेको चूर चूर कर डालें। संसारके सभी पुस्तकालयोंको अभी अग्निको समर्पण कर डालें। इस तर्कका पूर्ण उत्तर पाठकोंको इस पुस्तकमें कई स्थानों*पर मिलेगा। यहाँ उसके विस्तारकी आवश्यकता नहीं है।

युद्धकी जड़ ज्ञानमें नहीं वरन् मनुष्यके स्वभावमें है। मनुष्यने अपने प्राचीन हिंस्रस्वभावको पूर्णताके साथ अभीतक परित्याग नहीं किया है—पशुताका अवशेष उसमें अभीतक विद्यमान है। इसलिए समय समय पर वह अबतक भी ज्ञानका दुरुपयोग करता है। परन्तु इसलिए क्या हम ज्ञानके बदले अज्ञानको और सभ्यताके बदले असभ्यताको—ग्रहण करेंगे?

इस संसारमें दुरुपयोग किस वस्तुका नहीं होता? भोजन करना मनुष्यके लिए कितना आवश्यक है? क्या बिना भोजन किये मनुष्य

---

* देखो अध्याय ३ और १०।

जीवित रह सकता है ? परन्तु ठीक तौर पर, ठीक रीतिसे और ठीक परिमाणमें भोजन न करनेसे ही मनुष्य कितनी बीमारियोंमें फँस जाता है। तो क्या इसलिए हमें यही उचित है कि हम भोजन करना ही छोड़ दें ? भारतीय गवर्नमेण्टने लड़ाई दंगोंके बन्द करनेके ख़यालसे लोगोंसे हथियार छीन लिये हैं; इसी तरह क्या गवर्नमेण्टको यह भी नियम बना देना चाहिए कि कोई मनुष्य भोजन करे ही नहीं, क्योंकि अधिक भोजन करके अक्सर मनुष्य अजीर्ण और हैजेका शिकार बन जाता है ? मनुष्यके लिए अग्नि कितनी अवश्यक वस्तु है; परन्तु मनुष्य इस अग्निका कितना दुरुपयोग करता है और इसके द्वारा अक्सर कितनी हानि होती है ? तो क्या इसलिए यही उचित है कि मनुष्य अग्निसे एकदम काम लेना ही छोड़ दे ?

मनुष्यकी पशुताको ज्ञान और सहानुभूति ही कम कर सकती है, मज़हब नहीं। आगे चल कर इसका पूरा प्रमाण मिलेगा।

भारतमें मज़हबी अत्याचार

कहा जा सकता है कि हमारे देशमें मजहबी लड़ाइयोंका नाम भी नहीं सुना जाता—हमारे धर्मको सत्य, ज्ञान और विज्ञानके राहमें खड़ा होते हुए नहीं पाया जाता। इसका कारण यह है कि पूर्व समयमें हम मजहबी न थे; परन्तु जबसे हमने मजहबी होना शुरू किया तबसे निःसन्देह हमारे यहाँ भी योरोपके मजहबी अग्निकुण्डमेंसे—जिसमें असंख्यों मनुष्योंका हवन किया गया था—कुछ कुछ चिनगारियाँ उड़ उड़ कर आने लगी हैं। अन्ध विश्वासका जबसे हमारे यहाँ साम्राज्य हुआ है उसी दिनसे हमने अत्याचार आरम्भ किया है। क्या हमारे यहाँ धार्मिक अत्याचार एकदम नहीं हैं ? निष्पक्ष होकर देखनेवाला किस तरह अस्वीकार कर सकता है ? एक गोवधके ही मसले पर क्या क्या नहीं हो जाता है ! हमारी

राजनैतिक उन्नतिके पथको इसने किस प्रकार कण्टकाकीर्ण कर रक्खा है! पुनः निराकारवाद और साकारवाद, हिंसावाद और अहिंसावाद, सनातनधर्म और आर्य्यसमाज प्रभृतिके झगड़े क्या कम गजब ढाते हैं! हम अत्याचार करना अवश्य चाहते हैं परन्तु मौका नहीं मिलता।

और क्या भारतीय इतिहासमें धार्मिक अत्याचारोंके दृष्टान्त एकदम नहीं मिलते? हमारे यहाँ भी इन्क्वीजिशन (Inquisition धार्मिक कचहरियाँ) विद्यमान थीं। अशोकने एक धार्मिक पुलीस विभाग स्थापित किया था जिसकी खुफ़िया पुलीस (Censors) को सभी व्यक्तियों पर—सभी धर्मके, सभी सम्प्रदायके, सभी श्रेणीके मनुष्यों पर—अधिकार था। लोगोंके आचरणको, और विशेष कर अहिंसाके सम्बन्धमें लोगोंके कार्य्योंकी तहकीकात करना, तथा अपराधियोंको दण्ड दिलाना, यही इनका कर्तव्य था। स्त्रियोंके आचार-निरीक्षणके लिए अलग गुप्तचर होते थे। अशोककी उक्त खुफ़िया पुलीसके बहुत कुछ अर्वाचीन नमूने भी मिलते हैं। सन् १८७६ में काश्मीरके सिंहासनको एक धार्मिक महाराजा सुशोभित करते थे। उनके राज्यमें शास्त्रके नियमोंको न पालन करना जुर्म समझा जाता था, जिसकी जाँचके लिए एक खास कचहरी थी! इसमें पाँच पण्डित होते थे जो अपराधियोंको उचित दण्ड दिया करते थे। जाति-नियम भंग करनेवालोंको सजा देनेके लिए उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यतक—या शायद और बाद तक भी—खानदेश, दक्षिण और कोंकण इत्यादिमें पण्डितोंकी ऐसी बहुतसी कचहरियाँ विद्यमान थीं। ये कहाँ तक अनर्थ करती होंगी यह पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं। सातवीं शताब्दीमें हर्षवर्द्धन किसी जानवरके मारने और मांस-भक्षण करनेके अपराधमें प्राणदण्डकी सज़ा बड़ी खुशीके साथ देता था। अपराधीको कदापि क्षमा प्रदान

नहीं किया जा सकता था। बारहवीं शताब्दीके अन्तमें गुजरातके राजा कुमारपालको भी अहिंसाके प्रचारका असीम जोश चढ़ा था। एक चीलड़ मारनेके अपराधमें एक अभागे सौदागरकी अणहिलवाड़ाकी खास कचहरीमें जाँच हुई थी तथा उसका सब माल ज़ब्त हुआ था। एक और मनुष्य राजधानीमें कच्चा मांस लानेके कारण फाँसीपर चढ़ाया गया था! *

---

* इतिहासमें इस देशके धार्मिक अत्याचारोंके और भी अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। अभी थोड़े समय पहले महाराजा कालेज विजयानगरम्‌के इतिहासाध्यापक श्रीयुत एम. एस. रामस्वामी आयंगर एम० ए० ने अँगरेजीमें एक गवेषणा-पूर्ण लेख लिखा था जिसका कि अनुवाद 'जैनहितैषी' नामक मासिकपत्रमें (भाग १५, अंक १-२)' तामिल प्रदेशोंमें जैनधर्मावलम्बी' शीर्षक देकर प्रकाशित किया गया है। उसमें लिखा है कि "ईसाकी सातवीं शताब्दिके मध्यमें 'तिरुज्ञान संभाण्ड' नामक शैवाचार्यने कुनपाण्ड्य नामक जैन राजाको शैवमतावलम्बी बनाया और उसे जैनोंके विरुद्ध उत्तेजित किया। फल यह हुआ कि उस समय जैनोंके प्रति ऐसी निष्ठुरता और निर्दयताका व्यवहार किया गया जैसा दक्षिणभारतके इतिहासमें कभी नहीं हुआ। संभाण्डके घृणाजनक भजनोंसे—जिनके प्रत्येक दसवें पद्में जैनधर्मकी निर्भत्सना की गई है—यह स्पष्ट है कि वैमनस्यकी मात्रा कितनी बढ़ी हुई थी।...दक्षिण भारतमें जैनियोंकी विनष्ट प्रतिमायें, परित्यक्त गुफायें और भग्न मन्दिर इस बातके स्मारक हैं कि प्राचीन कालमें जैनसमाजका वहाँ कितना विशाल विस्तार था और किस प्रकार ब्राह्मणोंकी धार्मिक स्पर्धाने उनको मृतप्राय कर दिया। जैनसमाज विस्मृतिके पटलमें लुप्त हो गया; उसके सिद्धान्तों पर गहरी चोट लगी; परन्तु दक्षिणमें जैनधर्म और वैदिक धर्मके मध्य जो कराल संग्राम और रक्तपात हुआ वह मदुरामें मीनाक्षीके मन्दिरके स्वर्ण-कुमुद सरोवरके मण्डपकी दीवारोंपर अंकित चित्रोंको देखनेसे अब भी स्मरण हो आता है। इन चित्रोंमें जैनियोंके विकराल शत्रु तिरुज्ञान संभाण्डके द्वारा जैनियोंके प्रति किये गये अत्याचारों और रोमाञ्चकारी यातनाओंका चित्रण है। इस करुणा-काण्डका यहीं अन्त नहीं होता है, मदुरा-मन्दिरके बारह वार्षिक त्योहारोंमेंसे पाँचमें यह हृदयविदारक दृश्य अब भी प्रतिवर्ष दिखलाया जाता है!..."

—प्रकाशक।

संसारके आदि युगोंमें मजहबसे उपकार ।

अब मुझे इस ग्रन्थके सम्बन्धमें केवल एक बात और कहनेकी आवश्यकता है । इस ग्रन्थके पढ़नेपर पाठकवर्ग शायद यह कहेंगे कि इसमें मज़हबकी जरा कड़ी आलोचना की गई है। परन्तु मज़हबसे द्वेष रखनेके कारण मैंने ऐसा नहीं किया है वरन् इसमें जो कुछ लिखा गया है वह केवल सत्य-जिज्ञासाकी प्रेरणासे । संसारकी उन्नतिमें मज़हबने जो भाग लिया है उसे मैं मुक्तकण्ठसे स्वीकार करता हूँ नर-विज्ञान (Anthropology) के विद्यार्थियोंसे यह बात छिपी नहीं है कि मज़हब ही सभी रीति-नीति रस्म-रिवाज, नियम और कानूनोंका जनक है। मज़हबहीके द्वारा सारी शासन-प्रणालियोंकी उत्पत्ति हुई है । यदि प्राचीन असभ्य समयके सरदारके चारों ओर मज़हब जनित आभा और विभीषिका नहीं होती—यदि सरसे पैर तक मज़हब उसे विलक्षणतासे न ढाँक देता—यदि उसपर रहस्यका परदा न पड़ा होता—यदि वह निरा मनुष्य ही समझा जाता तो उसकी आज्ञाको कौन मानता ?

आज्ञाधीनताको मनुष्यने मज़हबसे ही प्राप्त किया है । प्राचीन मनुष्यकी हिंसक और स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति शायद पशुओंसे कम न थी। इस प्रवृत्तिको मज़हबके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु दमन नहीं कर सकती थी। अदृश्य देवताओं और प्रेतोंके भयके अतिरिक्त कोई वस्तु उसकी असीम स्वार्थपरताको, उसकी अविरल रक्तपिपासाको, उसकी भयङ्कर हिंसकताको न हटा सकती थी। अतएव मनुष्य अपनी सभ्यावस्थामें मज़हबके उपकारको कदापि नहीं भूल सकता ।

सामाजिकताका अर्थ ही है व्यक्तिकी उच्छृंखलता—उसकी स्वच्छन्दताका विनाश । समाजमें रहनेसे मनुष्यको मनमाने रूपसे काम

करनेकी स्वतंत्रता नहीं रहती। समाज उसके खाने पीने, पहरने ओढ़ने, विवाह पुत्रोत्पादन, हँसने रोने प्रभृति सभी बातोंके लिए नियम बनाता है। परन्तु आदि समयमें मनुष्य अपनी स्वतंत्रताको हर्ष और इच्छापूर्वक कदापि नहीं छोड़ सकता था। उसकी आसामाजिक, स्वेच्छाचारी प्रवृत्तिको पूर्ण बलके साथ दमन किये जानेकी आवश्यकता थी।

आदि समयमें मज़हब, कानून, रीति, रस्म, और आचार, व्यवहारमें कोई अन्तर न था। इन सबका उद्गमस्थान एक ही है। इनके पारस्परिक सम्बन्धको समाज-शास्त्रके पण्डितोंने पूर्णतया प्रमाणित कर दिया है।

संक्षेपमें इस सम्बन्धको यहाँ पर दिखलाना एकदम अप्रासांगिक न होगा। प्राय: सभी प्राचीन और असभ्य मानव-समाजोंका यही हाल रहा है कि जिस आदमीमें अन्य मनुष्योंकी अपेक्षा बुद्धि, बल और चालाकीकी मात्रा अधिक होती है—तथा जिसने उन कामोंको किया हो जिनके करनेमें अन्य मनुष्य असमर्थ रहे हों—वह मनुष्य अलौकिक, दिव्य समझा जाता है। वह मनुष्य देवता अनुमान किया जाता है। मरनेके पश्चात् तो उसकी अलौकिक, और चमत्कारात्मक शक्तियाँ और भी बढ़ जाती हैं और उसे वह महत्ता प्राप्त होती है कि जिसके द्वारा वह देवता बन जाता है और उसकी पूजा होने लगती है। इसी तरह मजहबकी उत्पत्ति होती है। कोई भी समाजशास्त्रका विद्यार्थी अस्वीकार नहीं कर सकता कि मृत सरदार ही प्राचीन समयका देवता होता था। पुन: भयके कारण ही उसकी पूजा होती थी। यह मजहबके सभी ऐतिहासिकों पर विदित है। भय ही मजहबकी मूल भित्ति है, भय ही मजहबका अन्तरात्मा है, भय ही मज़हबकी जान है—

यह किसी प्रकार अस्वीकार नहीं किया जा सकता । प्राचीन मनुष्य पूर्णतः भयका शिकार बना हुआ था । वह भयके मारे, मजबूरीसे ही पूजा करता था, इच्छापूर्वक प्रसन्नतासे कदापि नहीं । उसे देवताओंमें श्रद्धा या भक्ति न थी । वह हृदयसे कामना करता था कि ये देवता या देवियाँ न होतीं और वह इनसे स्वतंत्र होता; परन्तु उसके पास उपाय ही क्या था ? वह इन देव देवियोंकी उपेक्षा किस प्रकार कर सकता था ? इनका निरादर करके इनकी अप्रसन्नताके भयंकर परिणामोंके सहन करनेका साहस उसमें न था । उसका जीवन ही 'मज़हब-मय' था । उसका समस्त जीवन इन देवताओंकी अप्रसन्नताके रोकनेमें व्यतीत होता था । इसी भयके द्वारा मानव-जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें आज्ञाधीनताका पदार्पण हुआ है आदि समयमें राजनीति और मज़हबमें कोई भेद न था । मज़हब मनुष्यके प्रत्येक कामको, उसके सारे जीवनको आलिङ्गन किये हुए था । आदि समयमें पुरोहित और शासक प्रायः एक ही थे । मनुष्यकी प्रायः सभी सामाजिक संस्थाओंका जन्म मज़हबके ही द्वारा हुआ है । मनुष्यके आपसके प्रणाम, जुहार, सलाम, बन्दगीकी रीतियोंका भी जन्म मज़हबहीसे हुआ है । *

जिस प्रकार मजहबने संसारका हित किया है, उसी प्रकार लड़ाईसे भी संसारका बहुत उपकार हुआ है । लड़ाईके (जीवन-संग्रामके) द्वारा ही चौपाये मनुष्यमें परिवर्तित हुए हैं । लड़ाईहीने मनुष्यको दिव्य अस्त्रोंके बनानेकी शिक्षा दी है । लड़ाईहीके द्वारा मनुष्यने देशोंको विजय

* इस विषयको संक्षेपमें स्पेन्सरने बड़ी उत्तमताके साथ अपने Manners and Fashions नामक निबन्धमें वर्णन किया है See Spencer's Essays, Vol. III. Eassay On Manners and Fashions.

किया है और अपनी जाति और देशके गौरवकी तथा धन धान्यकी वृद्धि की है। लड़ाईहीने छोटी छोटी जातियोंको एक बड़ी जातिमें संम्मिलित कर एकताको बढ़ाया है। बिना लड़ाईके जाति-निर्माण किस प्रकार सम्भव हो सकता? लड़ाईहीके द्वारा बड़ी बड़ी सल्तनतें कायम हुईं। लड़ाईहीने मनुष्यको वाणिज्यकी शिक्षा दी। लड़ाईहीने एक जातिको दूसरी जातिसे परिचित कराया, तथा सभ्यताको फैलानेका पथ निर्माण किया। लड़ाईहीके सदृश गुलामीकी प्रथाने भी मनुष्यजातिका परम हित किया है। उदाहरणके लिए केवल यूनानी नगर-राष्ट्रों (City States) को ले लीजिए। क्या बिना इस प्रथाके ये नगर-राष्ट्र इतने उन्नत तथा सुख, सौन्दर्य्य, ज्ञान या सभ्यताकी खानि हो सकते थे? और फिर आधुनिक सभ्यताकी नीव ग्रीस सभ्यताहीमें है, इसे सभी इतिहासज्ञ भलीभाँति जानते हैं।

परन्तु सभ्यावस्थामें पहुँच कर मनुष्य इस लड़ाई और गुलामीको अविज्ञाकी दृष्टिसे देखता है। जिस लड़ाई और गुलामीसे उसका इतना हित हुआ है अब वही उसका अनिष्ट करती है—उसकी उन्नतिके पथमें खड़ी होती है। इसी प्रकार जिस मज़हबने प्राचीन और असभ्य युगोंमें मनुष्यका इतना उपकार किया है अब वह मनुष्यके आगे बढ़नेमें उसका पथावरोध करता है। किसी मूर्तिके गढ़नेमें एक मूर्ति तक्षक जिस प्रकार पहले बड़े बड़े और भारी औजारोंसे काम लेता है और क्रमसे वह उन औजारोंको फेंक कर बारीक और बहुत बारीक औजारोंका प्रयोग करता है उसी प्रकार प्रकृति भी पहले लड़ाई, गुलामी या मज़हब प्रभृति मोटे औजारोंका आश्रय ग्रहण कर पीछे उन्हें पूर्णतः अनावश्यक समझ कर एकदम फेंक देती है।

प्राचीन क्षुद्र संकुचित स्वार्थतापूर्ण मज़हबोंसे अब मनुष्यकी संतुष्टि नहीं हो सकती । अब उसे नैतिक धर्म—विश्वधर्म—की आवश्यकता है ।

निष्पक्षता-की प्रार्थना ।

इस पुस्तकके सम्बन्धमें अब और अधिक बातें लिखकर मैं पाठकोंको ठहराना नहीं चाहता । प्रार्थना केवल इतनी ही है कि इस पुस्तकको आद्योपान्त पढ़े बिना पाठकवर्ग कोई राय क़ायम न कर लें, तथा ग्रन्थकर्ताके विचारोंसे असन्तुष्ट होकर दो ही चार अध्यायोंके खतम करनेपर ग्रन्थको फेंककर झुँझला न उठें । ग्रन्थकर्ताके विचार और ग्रन्थके उद्देशका पता पुस्तकको एक बार आदिसे अन्त तक पढ़े बिना नहीं लग सकता । हो सकता है, मैं भूल कर रहा हूँ; परन्तु तौभी मैंने अपने विचारोंको युक्ति और प्रमाणसे प्रतिपादित किया है । यदि पाठकवर्ग निष्पक्ष होकर विचार करेंगे और अपने स्वतंत्र तर्क अनुमानके द्वारा यदि इस लेखकके विचारोंसे एकदम भिन्न विचारों पर भी पहुँच जायँगे तौ भी मैं अपने परिश्रमको सफल मानूँगा । मैं केवल मात्र निष्पक्षता और सहानुभूतिका प्रार्थी हूँ । क्या लेखकको पाठकोंसे इतनी भिक्षा मिलेगी? क्यों कर कहा जाय; लोगोंके मानसिक झुकाव और चित्तवृतिको देखकर आशा तो नहीं होती । परन्तु गालियोंके डरसे अपने विचारोंको छिपाये रखना भी कायरता है । इसी लिए उसने परिणामकी कुछ भी परवा न करके अपने विचारोंको निर्भीकताके साथ व्यक्त करनेकी चेष्टा की है । उसने तो अपने कर्तव्यके अनुसार कार्य किया है, अब हिन्दी संसार उसे चाहे जो पुरस्कार दे !

दूसरा अध्याय।

नीतिविज्ञान और उसकी उपयोगिता।
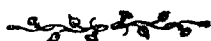
प्रथम प्रश्न यह है कि अन्य विज्ञानोंकी तरह **आचार-नीतिका विज्ञान** (Science of Ethics) **सम्भव है या नहीं ?**

पाठकवृन्द, जरा भी ध्यान देनेसे यह स्पष्ट हो जायगा कि *सदाचार मनुष्यके सामाजिक जीवन-विज्ञानके क्षेत्रसे बाहर नहीं है।* विज्ञान यहाँ भी अपना साम्राज्य बड़ी सुन्दरताके साथ स्थापित कर सकता है, और निस्सन्देह मानवहितके लिए इसकी बड़ी आवश्यकता है।

प्रथम आप देखें कि **विज्ञानका क्या उद्देश है।** विज्ञानका उद्देश है *प्रकृतिकी एकरूपता* (Uniformity of Nature), *प्रकृतिके सर्वव्यापक अपरिवर्त्तनीय नियमोंको घोषण करना, यह प्रमाणित करना कि संसारके सभी कार्य्य नियमके अधीन हैं, राईसे पर्वत, तिलसे ताड़, अदनेसे अदने भृङ्गसे लेकर सृष्टिके स्वामी मनुष्य तक पर प्राकृतिक नियमोंका एकाधिपत्य है। हर जगह नियम विद्यमान है,* हो सकता है कि हम उससे अनभिज्ञ हों। हर स्थान पर प्रबन्ध है, कारण-करण (Law of Causation) का सिलसिला सर्वत्र जारी है। अनियम, कुप्रबन्ध, बेतरतीबी कहीं भी नहीं। यह अटल नियम न तो कभी टूटता है और न किसीमें इसके तोड़नेकी—इसके बदलनेकी—शक्ति ही है। निःसन्देह

इसके न स्मरण रखनेके कारण ही मनुष्य अनेक बार भ्रम प्रमादमें पड़ा है, आज भी पड़ रहा है और अनेक बार अन्धकूपमें ढकेला गया है।

प्राकृतिक नियमका क्या अर्थ है ? प्राकृतिक नियम *वस्तुओंके सिलसिलेको कहते हैं, जिस सिलसिलेमें वह (प्रकृति) हमेशा उपस्थित हुआ करती है।* इन नियमोंके द्वारा हमें कारण करण (Causation) का पता चलता है, हमें यह माळूम होता है कि घटनायें एकके बाद एक सदा किस प्रकार घटा करती हैं, हमें यह ज्ञात होता है कि किसी दी हुई अवस्थामें—यदि बीचमें कोई बाधा उपस्थित न हो जाय—किसी कारणका क्या नतीजा होगा। *प्राकृतिक नियम हमें यही बतलाते हैं कि कुछ घटनायें सदा एक प्रकारसे घटी हैं और सदा इसी प्रकार घटती जायँगी,* कारण और प्रभावका सिलसिला सदा चला ही जायगा, किसीके—स्वयं परमात्माके भी मध्यगत होनेसे यह टूटनेवाला नहीं।

आचार-शास्त्र (Ethics) मनुष्यके सामाजिक जीवनका विज्ञान है। इसे मनुष्यके सामाजिक रहन-सहनसे सरोकार है। इसलिए इसे **भौतिक** (Physical) और **मानसिक** (Mental) दोनों तरहकी बातोंका विचार करना पड़ता है। भौतिक बातों पर प्रकृतिके अवश्यम्भावी नियमोंके अखण्ड एकाधिपत्यको अब कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। जैसे अब कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि अम्लजन और उज्जनके योगसे जो पदार्थ बनेगा वह पानीके अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता है, या एक निर्दिष्ट ताप-परिमाणमें रक्खे जानेसे कुछ पदार्थ पिघल जाते हैं, या सर्दीसे पदार्थ सिकुड़ते हैं और गर्मीसे फैलते हैं, इत्यादि। पाठको, मैं आपको तुरन्त सन्तुष्ट कर दूँगा कि

मनुष्यका चित्त—उसका दिल और दिमाग भी उसी प्रकार प्राकृतिक नियमोंके अधीन है।

मनुष्य कहाँ-तक स्वतंत्र और कहाँ-तक प्राकृतिक नियमोंके अधीन है?

मनुष्य निःसन्देह स्वतन्त्र है, पर उसकी स्वतन्त्रता पूर्णतः सीमाबद्ध और नियमाधीन है। निःसन्देह हम अपनी इच्छाके अनुसार सोच विचार सकते हैं, और काम कर सकते हैं, इसमें कोई भी बाधा नहीं। यदि हम चाहें तो दिन भर बैठे रहें, हम चाहें तो चौबीसों घण्टे परिश्रम करते रहें। हमारा काम हमारी इच्छाके अधीन है, परन्तु *मनुष्यके स्वभाव पर वंशानुक्रम* (Heridity) *और परिस्थिति* (Environment) *एवं उसकी शारीरिक बनावटके नियमोंके प्रभावको कौन इनकार कर सकता है?* केवल हमारा शारीरिक संगठन ही नहीं वरन् हमारी मानसिक बनावट भी हमें अपने पूर्वजों द्वारा प्राप्त हुई है। पुनः परिस्थितिके अगाध प्रभावको कौन माप सकता है? हमारी आचार-बुद्धि—हमारे रहने सहनेकी रीति—सर्वतः हमारी परिस्थिति (Environment) के अधीन है। हम जिस देशमें, जिस समयमें, जिस अवस्थामें पैदा होंगे वैसे ही हमारे तरीके भी होंगे। *हम वंशानुक्रम और परिस्थितिके हाथों उसी प्रकार नचाये जाते हैं जिस प्रकार नटके हाथों कठपुतली।* एक अँगरेज या मुसल्मानकी आचारबुद्धि हमारी आचारबुद्धिकी अपेक्षा इतनी विपरीत क्यों है? हम गोमांस-भक्षण करना महापातक और मुसल्मान इसे अपना धर्म क्यों मानते हैं? हिन्दू एक प्रकारका वस्त्र पहनते हैं, एक प्रकारका भोजन करते हैं, एक प्रकारकी शिखा रखते हैं, अन्य जातिवाले अन्य प्रकारकी। उनका गृह-प्रबन्ध एक प्रकारका है, दूसरे लोगोंका दूसरे प्रकारका। वे एक प्रकारके मकानमें पूजा करते हैं, दूसरे लोग भिन्न प्रकारके मकानमें। वे एक मन्त्रसे ईश्वरकी

उपासना करते हैं, और इसीको सर्वोत्कृष्ट और दूसरोंको एकदम झूठा और फजूल समझते हैं। मुसल्मान दूसरे मन्त्रका प्रयोग करता है और उसीको सत्य और अन्य सभीको असत्य और काफिराना मानता है। एक पूर्व दिशा तथा रविवारको पवित्र समझता है, तो दूसरा पश्चिम दिशा और शुक्रवारको। एकके लिए गो-मांस निषिद्ध है, तो दूसरेके लिए सूअर-मांस। इसके क्या कारण हैं? देखिए हम अपने भोजन-पानमें, अपने वस्त्र-आभरणमें अपने विवाह-सन्तानोत्पादनमें, नहीं नहीं अपने रोने हँसनेमें भी, कहाँ तक अस्वतन्त्र हैं।

मनुष्य पूर्णतः नियमाधीन है।

विचार कर देखनेसे यह स्पष्ट होगा कि मनुष्य प्रकृतिके हाथोंमें उतना ही असमर्थ है जितना कि जड़ जगत्—वह भी उसी प्रकार नियमाधीन है जिस प्रकार समस्त निर्जीव पदार्थ। मनुष्यकी सभ्यता, उन्नति प्रभृति सभी वस्तुयें उसके देशके जल-वायु, पृथ्वीकी उर्वरता तथा अनुर्वरता, भोजन प्राप्त करनेमें सुगमता या कठिनाई, इत्यादि बाह्य कारणोंपर निर्भर है। सभ्यताने भारतमें, मिश्रमें, या वैबिलौनमें योरोपकी अपेक्षा पहले क्यों जन्म ग्रहण किया? पुनः भारतकी सभ्यता एक प्रकारकी और योरोप तथा दूसरे देशोंकी दूसरे प्रकारकी क्यों है? एक देशकी शिल्पकला कविता एक प्रकारकी तथा दूसरे देशकी दूसरे प्रकारकी क्यों है? परिस्थितिका प्रभाव अगाध है और मनुष्य इनके अधीन जड़ पदार्थोंसे कम नहीं है।

एक अद्भुत प्रमाण।

मनुष्य कहाँ तक नियमाधीन है, इसे बक्लने बड़ी विस्मय-कारक रीतिसे स्पष्ट कर दिया है। मनुष्यके कार्य्य नियमके अधीन हैं या नहीं—तथा समाजकी किसी दी हुई अवस्थामें अपराधोंकी संख्या समान रहती है या नहीं—

यह जाननेके लिए बक्लने विविध विषयोंके ऊपर बहुतसे देशोंके अङ्कपत्रों (Statistics) को एकत्रित और अध्ययन करना शुरू किया। इसमें उन्हें अद्भुत सफलता प्राप्त हुई। बक्लने देखा कि प्रत्येक देशमें प्रत्येक साल हत्या प्रभृति अपराधोंकी संख्या बराबर ही रहती है। प्रत्येक साल आत्म-हत्या करनेवालोंकी संख्या भी उन्हें बराबर ही मिली। इन सबके अतिरिक्त मनुष्यके कार्य्योंके नियमाधीन होनेका उन्हें एक और अत्यन्त आश्चर्य्य-जनक प्रमाण प्राप्त हुआ। वे कहते हैं कि "लण्डन और पेरिसके डाकखानोंने कुछ समयसे ऐसे पत्रोंका कोष्टक छापना शुरू किया है कि जिनपर पत्र लिखनेवाले पता लिखना भूल गये हों और हर वर्ष उनका हिसाब पूर्व वर्षके हिसाबकी हू बहू नक़ल मालूम होती है। हर वर्ष पत्र लिखनेवालोंकी एक ही संख्या इस साधारण बातको भूल जाती है! यहाँ तक कि हम प्रतिवर्ष अग्रिम बतला सकते हैं कि कितने लोगोंकी स्मरण शक्ति उन्हें धोखा देगी।"

तब मनके ऊपर बाह्य जगत् एवं शारीरिक घटनाओंका प्रभाव किस प्रकार अस्वीकृत हो सकता है? यह सच है कि हम जब चाहें तब बैठें, जब चाहें तब काम करें, जब चाहें तब खेलें, परन्तु क्या शरीरके रोगसे अनुतप्त होनेपर भी? कोई अमङ्गल समाचारके सुननेपर हम क्यों चैतन्यशून्य हो जाते हैं? आपत्ति आ पड़नेपर हम क्यों कातर हो उठते हैं? उस समय हमारी आज़ादी कहाँ चली जाती है? यदि आप एक खाद्य वस्तुको ही लेकर देखेंगे तो आपको पता चल जायगा कि विविध प्रकारके भोजनका विविध मनुष्योंपर क्या प्रभाव पड़ता है। कौन आदमी इनकार कर सकता है कि किसी दी हुई अवस्थामें एक साधारण व्यक्ति एक प्रकारका काम न करेगा? घोर अनशन सहनेपर यदि कोई चोरी कर डाले अथवा अनेकानेक

मानसिक तथा शारीरिक कष्टोंके सहनेपर यदि कोई आत्महत्या करने-पर भी उतारू हो जाय, तो इसमें आपको क्या आश्चर्य प्रतीत होगा? कुसंगतिमें रहनेपर यदि कोई स्वयं दुश्चरित्र हो जाय तो इसमें आपको क्या विस्मय होगा? हम जानते हैं कि मधुर वचनोंसे, अच्छे व्यवहा-रसे लोग प्रसन्न होते हैं और कटुवचन और दुर्व्यवहारसे खिन्न, इत्यादि। यह साधारण विषय है, इस पर अधिक कहना वाक्यबाहु-ल्यके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। हम जानते हैं कि आशा, भय, प्रेम, घृणा, दया, सहानुभूति इत्यादि सभी भाव मनुष्योंपर अपना प्रभाव डालते हैं।

नीति-विज्ञानकी अपूर्णता।

यहाँ पर मैं अपनी कठिनाई स्वीकार कर लेना ही ठीक समझता हूँ, क्योंकि मनुष्य केवल **चैतन्य ही नहीं वरन् बुद्धि और ज्ञानसे युक्त है**। वह अपनी साधारण प्रवृत्ति-को अपनी बलवती इच्छासे दबा सकता है। मैं यहाँ तक माननेको तैयार हूँ कि वह अपने आचारको अपनी इच्छाके अनुसार बना सकता है। जैसे दारुण क्लेश सहने पर भी वह सत्य पथ पर अचल रह सकता है। ऐसे अनेकानेक महात्माओंका उदाहरण आप-को मिलेगा जिन्हें संसार-साम्राज्यका प्रलोभन भी सत्यपथसे तिलभर भी इधर उधर न कर सका। जिनके सभी कार्य्य उनकी शक्तिशालिनी इच्छाके अधीन थे, जिनके लिए कुछ भी असह्य और कुछ भी असम्भव नहीं था, जिनकी सभी कामनाओं, सभी वासनाओं, सभी जजबात, सभी हृदय-तरङ्गोंको उनकी इच्छारूपी प्रबल चट्टान सदा दबाये रखती थी। ऐसे लोग त्रिगुणातीत हैं। बाह्य जगत्का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे शारीरिक सुख और कष्ट भी अनुभव नहीं कर सकते। वे सभी शारीरिक नियमोंको अतिक्रम कर चुके हैं, वे शरीरकी कोई

परवाह नहीं करते—यदि इसमें कीड़ेतक भी लग जायँ तौभी उन्हें इसकी खबर नहीं होती, गोया वह शरीरयुक्त हैं ही नहीं। परन्तु यह दो चार गिने गुथे लोगोंका काम है। जनसाधारण इस अवस्थाको कदापि प्राप्त नहीं कर सकते। हर कोई शरीर और मनको अतिक्रम नहीं कर सकता, और जैसा मैं अभी कह चुका हूँ साधारण मनुष्य भौतिक, पारम्परिक तथा घिरावके नियमोंके हाथोंकी कठपुतली है। इसलिए मैं स्वीकार करता हूँ कि यह विज्ञान अभी अपूर्ण है। इसका

नीति विज्ञानकी उपकारिता।

कारण केवल इसका नयापन ही है, बल्कि इसकी अपूर्णता सर्वतः न्यायसंगत है। क्योंकि इसे जड़ पदार्थ या बुद्धिहीन पशुओंसे सरोकार नहीं है, वरन् बुद्धियुक्त, ज्ञानयुक्त मनुष्योंसे है, जिनके सब काम विचित्र और अनिश्चित हैं। किन्तु इससे इसकी उपकारिता भी असिद्ध नहीं होती। विज्ञानकी कोई एक शाखा बहुत अधूरी हो सकती है, किन्तु हम यह नहीं कह सकते कि उससे कोई हित नहीं हो सकता। प्रत्युत जो थोड़ा हम जानते हैं वह मानव-हितके लिए नितान्त हितकर और अत्यन्त आवश्यकीय हो सकता है। किसी विज्ञानकी अपूर्णताकी जाँच उसकी भविष्यके बतलानेकी शक्ति द्वारा होती है। मौसिमों और ऋतुओंसम्बन्धी बातोंके अग्रिम बतलानेकी हममें बहुत कम शक्ति है। हम अभ्रान्त नहीं बतला सकते कि कौन दिन अधिक ठंढा होगा और कौन दिन अति उष्ण, किस दिन आकाश मेघाच्छन्न रहेगा और किस दिन स्वच्छ, परन्तु यह हम निश्चयसे बतला सकते हैं कि पूस और माघ वैसाख और जेठकी अपेक्षा अधिक ठंढे होंगे, इसमें संशयका लेश मात्र भी नहीं। यहाँ हमारी जानकारी यद्यपि बहुत अधूरी है, तौभी देखिए, यह कितना हित करती है। हम ऋतुओंके अनुसार ही फसिल पैदा करते हैं, जमीन जोतते

हैं, बीज बोते हैं और खलिहान लगाते हैं। इसी प्रकार *कोई व्यक्ति-विशेष किसी विशेष अवसर पर कौन काम करेगा यह बतलाना हमारे लिये पूर्णतः दुस्साध्य है। किन्तु विशेष अवस्थाओंका—विशेष बातोंका—किसी जनसमूह पर क्या प्रभाव पड़ेगा हमारी यह बतलानेकी शक्ति बड़ी मूल्यवान् है* और यद्यपि कारण और नतीजेका सम्बन्ध ठीक ठीक दृष्टिगोचर न होनेके कारण हम विशेष व्यक्तियोंके कार्य्योंको अग्रिम नहीं बतला सकते तथापि विज्ञान उन नियमोंको ढूँढ़ निकाल सकता है, जिनके द्वारा मनुष्यके आचार-व्यवहारके शासित होनेसे उन्हें इच्छित फल प्राप्त हो सकता है। इसी प्रकार विज्ञान हमें यह भी बतलायगा कि अनिच्छित नतीजोंके रोकनेके लिए किन किन बातोंका त्याग आवश्यक है। इसलिए यह सिद्ध होता है कि नीति-शास्त्र यद्यपि असम्पूर्ण है और जैसा मैं अभी कह चुका हूँ यह सदा अपूर्ण रहेगा भी,तथापि यह हमारे बड़े हितका है, क्योंकि यह हमें अनेक बुराइयोंसे बचा सकता है और अनेक वाञ्छित फल प्रदान कर सकता है।

नीति-शास्त्र (Ethics) *को भी राजनीति-शास्त्र* (Politics) *और समाज-शास्त्र* (Sociology) *(जिसका यह निःसन्देह एक अङ्ग है) की भाँति व्याप्तिवाद* (Induction) *की नीव पर स्थित होना चाहिए और मजहब और धर्मसे इसे अपना पिण्ड छुड़ाना चाहिए।* हमलोग यह खोजें और अन्वेषण कर पता लगावें कि समाजकी उन्नतिके क्या नियम हैं। इसकी समृद्धि, इसके आरोग्य, इसके दीर्घजीवनके लिए किन किन बातोंकी आवश्यकता है, किन किन बातोंसे इसकी उन्नति रुक जाती है, इसका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और इसकी मृत्यु होती है।

हमलोग प्रयत्न करके यह स्थिर करें कि सदाचारका यथार्थ स्वरूप क्या है तथा इसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई; मनुष्यके ऊपर वंशानुक्रम और परिस्थितिका किस प्रकार और कितना प्रभाव पड़ता है; मनुष्यका असल स्वभाव किस तरहका है—उसकी अन्तःप्रवृत्ति उसे सच्चरित्र बनाना चाहती है या दुश्चरित्र; किन कारणोंसे मनुष्य पापमें पग धरता है; कुछ आचरणोंसे समाजको हानि और कुछ आचरणोंसे लाभ क्यों पहुँचता है। *संक्षेपमें हम लोग जीवनके नियमों* * *और जीवित रहनेके कानूनोंको अध्ययन कर यह ढूँढ़ निकालें कि किन कार्य्योंसे अवश्यमेव आनन्द और किन कार्य्योंसे दुःख होता है।*

वास्तविक धर्मशास्त्र।

ऐसा करना ही मानों धर्मशास्त्र निर्माण करना है। इन नियमोंके जानने और पालन करनेके अतिरिक्त हमें किसी अन्य धर्मशास्त्रके नियमोंको पालनेकी आवश्यकता नहीं है।

---

* देखो सदाचारकी परिभाषा, अध्याय ७ के अन्तमें।

तीसरा अध्याय ।
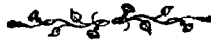
नीतिविज्ञानका लक्ष्य और अनुसन्धान-विधि ।

पूर्व अध्यायके अन्तमें हमने कहा है कि अन्य विज्ञानोंकी तरह नीति-विज्ञानको भी व्याप्तिवाद पर स्थित होना चाहिए तथा ज्ञानप्राप्तिके लिए इसे अन्य विज्ञानोंकी पद्धतिको अवलम्बन करना चाहिए; परन्तु नीतिविज्ञानमें और अन्य विज्ञानोंमें एक बड़ा अन्तर है । इस शास्त्रका विद्यार्थी बिना किसी कामनाके केवल मात्र ज्ञान प्राप्त करनेसे संतुष्ट नहीं होता । वह संसारमें उन्नति और परिवर्तन करना चाहता है । *अन्य वैज्ञानिकोंको केवल यथार्थसे—वास्तविक या विद्यमानसे—सरोकार है; परन्तु नीतिशास्त्रका अध्ययन करनेवाला आदर्शवादी है ।*

नीतिविज्ञान और अन्य विज्ञानोंमें अन्तर ।

किन्तु आदर्शकी जड़ यथार्थमें है। यदि वह आदर्शके उत्साहमें यथार्थको स्मरण न रक्खेगा तो कदापि कृतकार्य न हो सकेगा। नीत्युपदेशकको वैज्ञानिक होनेकी भी परम आवश्यकता है । आधुनिक नीत्युपदेशकको मजहबी लोगों या धर्मप्रचारकोंके असदृश, अपने प्रत्येक सिद्धान्तके लिए वैज्ञानिक कारण देना पड़ेगा, उन्हें युक्ति ग्राह्य बनाना पड़ेगा । 'अमुक कार्य्य सत्य और लाभदायक है' केवल इतना ही कहनेसे काम न चलेगा, वरन् उसे यह भी बतलाना होगा कि वह क्यों कर सत्य और लाभदायक है । नीत्युपदेशकको सदा याद रखना चाहिए कि

आदर्श और यथार्थ ।

वही आदर्श उत्तम है जो कार्य्यमें परिणत किया जा सके, **निरे** काल्पनिक आदर्शोंसे कोई लाभ नहीं।

उदाहरण-वैराग्य और परार्थवाद।

उदाहरणार्थ वैराग्य या सुख-परित्याग नीतिका आदर्श नहीं हो सकता। क्योंकि केवल वैरागियोंका बना हुआ समाज सर्वथा असम्भव है। यदि समाजके सब आदमी सुखकी कामनाको एकदम छोड़ दें, वैरागी हो जायँ, तो सारा समाज मृत्युको प्राप्त हो जाय। इसी प्रकार परार्थवादका सिद्धान्त सत्य होनेपर भी बहुत दूर नहीं खींचा जा सकता। अनुमान कीजिए कि किसी समाजमें कोई आदमी अपनी—अपने गृहपरिवारकी—फ़िक्र नहीं करता, वरन् इस समाजका हर आदमी अपने नहीं वरन् दूसरोंके सुखसाधनमें तत्पर है, तो क्या यह समाज आदर्श समाज होगा? क्या इस समाजमें पूर्ण आनन्द या सुख निवास करेगा? उलटे गड़बड़ी और अड़चनें उपस्थित न होंगी? क्या इस समाजके सारे काम उलट पुलट न हो जायँगे? राम अपना काम आप नहीं करता, वरन् वह श्यामके कामोंमें व्यस्त है। श्याम भी अपने नहीं वरन् यदुके कामोंमें लगा है। पुनः यदु अपनी फ़िक्र आप नहीं करता वरन् वह कृष्णके कामोंमें तत्पर रहता है। क्या इस प्रबन्धको आदर्श प्रबन्ध कह सकते हैं? क्या इस प्रबन्धसे हमारे सुख शान्ति और आरामकी वृद्धि होगी? यदि कोई आदमी हमारे आत्मोत्सर्गसे लाभ उठाना ही न चाहे, यदि सभी लोग आत्मोत्सर्गी हो जायँ तो हमारा आत्मोत्सर्ग किस प्रकार सम्भव हो सकता है? यदि हमारे सुखत्यागसे कोई लाभ उठाना ही न चाहे तो क्या ऐसी अवस्थामें हमारा सुखत्याग सरासर बेवकूफ़ी न होगी? यदि हम अपना सारा समय तुम्हें सुखी बनानेमें व्यतीत करें और इसी प्रकार

तुम अपना सारा समय हमें सुखी बनानेमें व्यतीत करो, तो शायद हम दोनोंमेंसे कोई भी सुखी न हो सके। जिस प्रकार स्वार्थवादका सिद्धान्त नीति-विरुद्ध है उसी प्रकार सम्यक् निस्वार्थवादका सिद्धान्त भी नीतिविरुद्ध है, क्योंकि व्यावहारिक जीवनमें इस सिद्धान्त पर नहीं चला जा सकता। इसी लिए हर्बर्ट स्पेन्सरने कहा है—*"नीतिका यह हुक्म नहीं है कि केवल अपने हितके लिए या अपने सुखको एकदम भुला कर केवल दूसरोंहीके हितके लिए जीवन धारण करो, वरन् नीति यह कहती है कि दूसरोंका और अपना दोनोंका हित साधन करो।"* *

समाजरक्षा-की आवश्यकता।

मनुष्य सामाजिक जीव है। अकेला रहना उसके लिए एकदम दुष्कर है। इससे कठिन उसे और कोई बात प्रतीत नहीं होती। शायद इसी बातको स्मरण रख कर आईन भारी अपराधियोंको एकान्तवास (Solitary Confinement) की सज़ा देता है? कैसा ही मनुष्य क्यों न हो, वह बिना मित्रता, प्रेम, और सहृदयताके जीवित नहीं रह सकता। *अपने सुख दुःख भाव और वासनाओंको दूसरों पर प्रकट किये बिना उसका जीना कठिन है।* शायद मनुष्यकी इसी आवश्यकताको पूरा करनेके लिए भाषाकी भी उत्पत्ति हुई होगी। समाजके द्वारा ही मनुष्यका पूर्ण विकास हो सकता है तथा उसकी इच्छा पूरी हो सकती है। अतएव मनुष्यका कर्त्तव्य दोहरा है। उसे आत्मरक्षा और समाजरक्षा दोनोंकी जरूरत है। ये दोनों प्रकारके कर्त्तव्य समान रूपसे ठीक, उचित, स्वाभाविक, अपरित्याज्य और आवश्यकीय हैं।

---

* देखो Ethics by Dr, Saleeby (Jacks Scientific Series) P. 32.

यदि हम समाजमें रहना चाहते हैं, यदि हम इससे लाभ उठाना चाहते हैं तो हमें केवल अपनी ही नहीं वरन् दूसरोंकी भी फ़िक्र करनी चाहिए। हमें समझना चाहिए कि समाजके ही कल्याणसे हमारा कल्याण हो सकता है और इसके अमङ्गलसे हमारा मङ्गल कदापि नहीं हो सकता। परन्तु आत्मरक्षाका सिद्धान्त भी हमारे लिए कम आवश्यकीय नहीं है।

आत्मरक्षाकी आवश्यकता।

यह पूर्णतः स्पष्ट है कि बिना आत्मरक्षाके—बिना अपने शरीरको कायम रक्खे—शायद हम दूसरोंका भी कोई उपकार नहीं कर सकते। उदाहरणसे यह बात और भी स्पष्ट होगी। हम लोग अनुमान करें कि कोई स्नेहमयी माता सामान्य बीमार पड़ती है और वह अपने वैयक्तिक स्वास्थ्यकी कुछ भी परवाह नही करती। वह पूर्ववत् अपने बच्चोंका लालन पालन करती है तथा दोनों शाम रसोई बनाकर अपने पति और परिवारको खिलाती रहती है और गृहस्थीके सभी कामोंको करती रहती है। वह समझती है कि अपने स्वास्थ्यकी परवाह करना वृथा है—पाप है। नतीजा यह होता है कि बीमारी बढ़ जाती है; अन्तमें रोग असाध्य हो जाता है और माताको अपना प्राण खो देना पड़ता है। क्या वह माता मरकर भी उसी प्रकार अपनी सन्तानकी—अपने पति और परिवारकी—सेवा कर सकती है? उसके इस आचरणसे उसके पति पुत्र और आत्मीय लोगोंको लाभ और सुख होता है या हानि और कष्ट? क्या उसकी मृत्युके पश्चात् उसके मातृ-हीन बच्चे मातृ-स्नेहसे वंचित नहीं हो जाते? क्या असम्भव है कि उसके बिना उसके बच्चोंका जीवन सदाके लिए कष्टमय हो जाय? क्या असम्भव है कि उसके बिना स्त्री-स्नेहसे वंचित उसका पति सदाके लिए निरा-

शाका शिकार या उन्माद रोगका लक्ष्य बन जाय? अच्छा अब हम एक और उदाहरण लें। अनुमान करें कि इस प्रकारके आचरणसे माताकी मृत्यु तो नहीं होती किंतु वह सदाके लिए या बहुत समयके लिए रुग्णा बन जाती है। तो क्या ऊपर जो बातें कही गई हैं वे इस अवस्थामें भी नहीं कही जा सकतीं? उसके पति, पुत्र, परिवार, सम्बन्धियोंको कितना कष्ट होता है! उनको कितना धन व्यय करना पड़ता है! उनको कितनी मानसिक और शारीरिक यातना होती है! जिस पतिसेवा, पुत्रसेवा या परिवार-सेवाके लिए वह इस तरहका आचरण करती है उस सेवासे भी उसे वंचित रहना पड़ता है—उसे वह सेवा करनेका भी सौभाग्य नहीं प्राप्त होता।

इस उदाहरणको सर्वथा काल्पनिक नहीं समझना चाहिए। आचारकी सच्ची नीतिको नहीं जाननेके कारण, मज़हबी धर्मशास्त्रोंके ऊपर चलनेके कारण तथा सभी प्रकारके सुख और आरामको त्याज्य, हेय, और बुरा समझनेके कारण लोग इस तरहका आचरण अकसर करते हैं। विचार कर देखनेसे वास्तविक जीवनमें इस तरहके अनेकों उदाहरण प्राप्त हो सकते हैं। कभी कोई मजदूर लहकती हुई धूप या मूसलधार वृष्टिकी परवाह किये बिना खुले हुए मैदानमें परिश्रम किये जाता है, तो कभी कोई दफ़्तरका मुहर्रिर रात दिनको समान समझकर अविश्रान्त परिश्रम करता है। कभी कोई तिजारती व्यवसायकी उधेड़ बुनमें लगे रहनेके कारण, सुख और नींदकी आवाज़को न सुनकर उनकी अवहेलना करता है तो कभी कोई सार्वजनिक या राजनैतिक काममें भाग लेनेवाला देशका कर्णधार अपने वैयक्तिक स्वास्थ्य और सुखकी उपेक्षा करता है और ये सभी लोग अपने उद्देशसाधन तथा लोक-हितकर कामोंके करनेमें असमर्थ सिद्ध होते

हैं । इन लोगोंके आचरणसे स्वयं इनका नहीं वरन् दूसरोंका भी कितना अनिष्ट होता है, यह स्पष्ट ही है ।

सम्यक् निस्वार्थवादकी नीति एक और रीतिसे भी हेय प्रतीत होती है । परार्थवादको बहुत दूर खींचनेसे घोर स्वार्थवादकी उत्पत्ति होती है । अनुमान करो कि किसी तप्त मरुभूमि पर हम और तुम दोनों प्याससे मर रहे हैं । हम दोनोंको जलकी समान आवश्यकता है । अकस्मात् दैवयोगसे मैं एक ग्लास जल प्राप्त करता हूँ । सिवाय उस ग्लासके जलका एक बिन्दु भी उस स्थान पर नहीं है । परन्तु मैं परार्थ-वादका अनुयायी हूँ, इसलिए उसे स्वयं पीकर अपनी प्राणरक्षा नहीं करता वरन् वह जल तुम्हें देकर अपना प्राण विसर्जन करता हूँ । इस अवस्थामें यद्यपि मेरा आचरण दिव्य, स्वर्गीय, सुन्दर और वीर-ता-परिपूर्ण है, पर तुम्हारा आचरण किस तरहका है ! तुम्हारे आचरणमें कितनी स्वार्थपरता है ! यह कोरी कल्पना ही नहीं है । प्रायः सभीके अनुभवमें आया होगा कि इस प्रकार अनुदार लालची पुरुषोंके प्रति किये गये उदारमना और स्वार्थहीन पुरुषोंके स्वार्थत्यागसे इन लालची पुरुषोंके हृदयमें स्वार्थकी वृद्धि होती है । हम लोगोंमेंसे प्रायः सभीने देखा होगा कि किसी लालची फ़क़ीरके भिक्षा माँगने पर जब हम उसे पैसे नहीं देते—या जब उसको आशासे कम पैसे प्राप्त होते हैं—तो वह किस प्रकार बुद बुदा कर हमें गालियाँ देता है और कभी कभी ज़ोरसे कोसने तक लगता है । ज़रासा ही विचार करनेसे प्रकट होता है कि फ़क़ीरके इस आचरणका यथार्थ कारण हमारी असम्बद्ध और विवेक-शून्य दानशीलता ही है । बिना परिश्रम किये हुए भी दानी लोगोंके द्वारा अपनी ज़रूरतोंके पूरी किये जानेसे फ़क़ीर समझ गया है कि आवश्यकताओंको पूरी करनेके लिए मेहनत करनेकी कोई

ज़रूरत नहीं है। सदा दूसरोंके द्वारा अपनी ज़रूरतोंके पूरी किये जानेसे वह स्वभावतः विश्वास करता है कि लोगोंको उसकी ज़रूरतें पूरी करनी ही चाहिए। स्वभावतः उसका यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि लोगोंसे इस प्रकार मदद माँगनेका उसे अधिकार है और अन्य लोगोंका यह कर्तव्य है कि वे उसे इस प्रकार मदद दें। विचार कर देखनेसे स्पष्ट होगा कि परार्थवाद भी एक प्रकारसे आत्म-प्रीति या आत्म-संभवन ही है। मैं अपना जीवन दूसरोंके लिए क्यों देता हूँ? इसी लिए कि मुझे इसीमें आनन्द प्राप्त होता है। इसी कारण कि मैं दूसरोंकी सेवा किये बिना नहीं रह सकता, यद्यपि इसमें मुझे अपना प्राण तक भी देना पड़ता है। निःसन्देह अब तक कोई बड़ा काम बिना आत्मबलके—एक प्रकारके आत्माभिमानके—नहीं किया गया है। निःसन्देह स्वार्थत्यागमें भी एक बहुत बड़े आत्मबलकी—बहुत बड़ी वीरताकी—आवश्यकता है। अतएव दूसरोंके प्रति हमारा जो कर्त्तव्य है उससे अपने प्रति हमारा जो कर्त्तव्य है यह कम महान् नहीं है। सच है;—

एवं विद्वानदीनात्मा व्यसनस्थो जिजीविषुः।
सर्वोपायैरुपायज्ञो दीनमात्मानमुद्धरेत्॥
एतां बुद्धिं समास्थाय जीवितव्यं सदा भवेत्।
जीवन् पुण्यमवाप्नोति पुरुषो भद्रमश्नुते॥

(—महाभारत शां० १४१, १००-१०१।)

अर्थात् जीवनरक्षा पर नजर रख कर विद्वान् और महान् पुरुषको अपने अधीन सभी उपायों द्वारा अपने कातर और दुखी आत्माकी रक्षा करनी चाहिए। इस उद्देशसे प्रत्येक आदमीको अपने आत्माकी रक्षा करनी चाहिए। जीवित रहनेहीसे मनुष्य धर्म प्राप्त कर सकता है तथा आनन्द और समृद्धिकी उपलब्धि कर सकता है।

स्वार्थवाद और परार्थवाद दोनों समान रूपसे आवश्यक हैं। दोनों एक दूसरेसे आबद्ध हैं। हम अभी देख चुके हैं कि बिना स्वार्थवादके—अर्थात् वैयक्तिक जीवनको कायम रक्खे परार्थवाद—सामूहिक या सामाजिक जीवन–असम्भव है। इसी प्रकार बिना परार्थवादके वैयक्तिक जीवन भी असम्भव है। इसके स्पष्टीकरणके लिए हम लोग केवल इतना ही स्मरण करें कि यदि हर जातिके प्राणियोंके पिता माता केवल स्वार्थपर ही लक्ष्य रखते तथा अपनी संततिके लालन पालन और रक्षाके लिए कठिन परिश्रम न करते, तो क्या आज इस संसारमें किसी तरहका भी जीव दृष्टिगोचर होता? आगेके अध्यायोंमें इस विषयकी और भी विस्तृत अलोचना की जायगी।

अतः वैयक्तिक तथा सामूहिक कल्याणके लिए आवश्यक है कि स्वार्थवाद और परार्थवाद दोनोंमें मेल और सहयोग हो। एक दूसरेके बिना अपूर्ण है। जिस प्रकार केवल स्वार्थवाद पर्य्याप्त नहीं है, उसी प्रकार केवल परार्थवादसे भी काम नही चल सकता।

इसको एक और उदाहरण देकर स्पष्ट करना अच्छा होगा। एक पूर्ण स्वस्थ और बल-सम्पन्न मनुष्य गंभीर क्लान्तिहारिणी निद्रासे प्रातः-काल उत्साह और प्रफुल्लता-पूर्ण हृदयके साथ, आनन्दसे गुनगुनाता हुआ अपने बिछौनेसे जाग कर उछल पड़ता है और नित्य कृत्योंसे फुरसत पाकर अपने कामोंमें लग जाता है। उसके चेहरेपर तेज, होठों पर मुसकुराहट, और हृदयमें साहस है। वह कठिनसे कठिन कामोंको भी साहस, विश्वास और फुर्तीके साथ सम्पादन करता है। उसके शरीरमें फुर्ती है और हृदयमें भरोसा। वह कठिनाइयोंसे विचलित नही होता, बलपूर्वक उनका सामना करता है और उन पर विजय प्राप्त करता है। उसे काम

करनेसे आनन्द और संतोष प्राप्त होता है और इस तरह अपने कामको समाप्त करके वह घर पहुँचता है। वह प्रेमसे अपनी स्त्रीको आलिंगन करता है, अपने बच्चोंके साथ खेलता है, उन्हें अपने कंधोंपर चढ़ा कर नचाता है तथा अपने परिवारके साथ स्नेहमय सम्भाषण करता है। वह मनुष्य केवल अपनी स्त्री पुत्र या परिवारके लिए ही नहीं वरन् सभी मनुष्योंके लिए आनन्दका भाण्डार है। वह पुष्पके समान अपने आनन्द-मय हृदय और प्रफुल्ल मुखमण्डलके द्वारा आनन्द वितरण करता है। वह मुरझाये हुए दिलको भी खिला देता है। वह सर्वत्र हास्य और प्रसन्नता विकीर्ण करता है। परन्तु उस मनुष्यकी अवस्था एकदम विपरीत है कि जिसने अपने शरीरकी कुछ भी परवाह न करके अपने स्वास्थ्यको एकदम बिगाड़ डाला है। उस मनुष्यके चारों ओर निराशा ही निराशा है। उसका हृदय उमंग और उत्साहसे शून्य है और जीवन उसके लिए कष्टमय है। वह किसी भी कामका निष्पादन उत्तमताके साथ नहीं कर सकता। सामान्य कठिनाइयोंके सामने भी उसकी शक्तियाँ जवाब दे देती हैं। उसे कहीं आनन्द नहीं दीख पड़ता। उसे किसी भी वस्तुसे प्रसन्नता नहीं हो सकती। उसका व्यवहार और आचरण कटु और सहानुभूतिशून्य होता है। उसका जीवन भार है। ऐसे मनुष्यसे उसके परिवारको और मित्रोंको सभीको कष्ट होता है। इस परिवारमें पारस्परिक मनोमालिन्य, असहिष्णुता, कलह और विवाद अपना डेरा डाल देते हैं। इस मनुष्यसे लोग दूर रहना चाहते हैं। यह मनुष्य मित्रमण्डलीमें भी बैठनेके योग्य नहीं है। यह दूसरोंको अपनी उपस्थितिसे कोई आनन्द नहीं प्रदान कर सकता और न दूसरोंके आनन्द और आह्लादसे स्वयं सुखी हो सकता है।

अब यदि इस स्थान पर हम लोग अपनी कल्पनाशक्तिसे काम लें और उपर्युक्त दो प्रकारके मनुष्योंसे बने हुए दो भिन्न समाजोंकी कल्पना करें तो स्पष्ट ही दीख पड़ेगा कि प्रथम प्रकारके मनुष्योंसे बने हुए समाजमें ही सबसे अधिक वैयक्तिक तथा सामूहिक कल्याण-मङ्गल और सुख-आनन्दकी उपलब्धि होगी। इसके विरुद्ध दूसरे प्रकारसे बने हुए मनुष्य-समाजका जीवित रहना भी असम्भव है। क्योंकि वंशानुक्रमके नियमोंके अनुसार बुद्धि और बलसे युक्त पिता माताकी सन्तान भी बुद्धि और बलसे युक्त होती है और क्षीण, दुर्बल तथा रोगग्रस्त माता पिताकी सन्तान भी बलहीन, रुग्ण और लघुजीवी होती है। अनन्त सम्पत्ति और अपरिमित धनसे भी अधिक मूल्यवान् जो वस्तु माता पिता अपनी सन्तानको दे जा सकते हैं वह आरोग्य और बलवान् शारीरिक संगठन है। विचार कर देखनेसे स्पष्ट होता है कि पुत्र पौत्र केवल पिता माताके संचित धन और सम्पत्तिके ही नहीं, वरन् उनके स्वास्थ्य और आरोग्य, उनके दिल और मिजाजके भी उत्तराधिकारी होते हैं। साधारणतः यद्यपि हमलोग माता पिता या पुत्र पुत्रीके रूप-सादृश्यके बारेमें अकसर बातचीत किया करते हैं, तो भी हम लोग इस बातके तथ्यको अच्छी तरह हृदयंगम नहीं करते। माता पिताके अच्छे और बुरे स्वभावका, अच्छे और बुरे स्वास्थ्यका असर भावी सन्तानोंपर सदाके लिए पड़ता है। विचार कर देखनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि संसारमें दुर्बल और रोगयुक्त संतानका उत्पन्न करना हत्या करनेसे भी घोरतर पाप है। हमारे यहाँ अकसर राजालोग अपने राज्यको या उसके किसी अंशको नहीं बेच सकते। वे केवल उसकी आयका उपभोग कर सकते हैं। पिताके बाद राज्यपर पुत्रका ही अधिकार होता है। इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्यको यह समझना चाहिए कि

उसका स्वास्थ्य एक प्रकारकी थाती या धरोहर है; जिसे उन्नत करके नहीं तो कमसे कम ज्योंकी त्यों अपनी संतानोंको सौंप देना उसका कर्तव्य है।

अतएव व्यक्ति और समाजकी रक्षाके लिए इन दोनों कर्तव्योंको समान रूपसे पालनेकी आवश्यकता है। अहंवादसे व्यक्तिकी रक्षा होती है, और परार्थवादसे समाजकी। बिना दोनोंके समाजका काम नहीं चल सकता। इस लिए नीतिका काम इन दोनों कर्तव्योंके मिलानेका है; स्वार्थवाद और परार्थवादमें सहयोग पैदा करनेका है। अतः नीतिका यह आदेश है कि दूसरोंके प्रति ऐसा कोई व्यवहार कदापि न करना चाहिए जिसे तुम अपने साथ किया जाना नापसन्द करते हो।

> **यदन्यैर्विहितं नेच्छेदात्मनः कर्मपूरुषः।**
> **न तत्परेषु कुर्वीति जानन्नपि प्रियमात्मनः॥**
> **यद्यदात्मनि चेच्छेत् तत्परस्यापि चिन्तयेत्।**
>
> (—महाभारत, शा० २६०, २१-२२।)

समाजवादकी तरफ़ नीतिका भाव।

इसी सम्बन्धमें इस पर भी विचार करनेकी आवश्यकता है कि व्यक्तिवाद और समष्टिवाद (समाजवाद Socialism) की तरफ़ नीतिका क्या बर्ताव है। यथार्थमें नीतिको व्यक्तिसे ही सरोकार है। व्यक्तिगत आचारको शुद्ध उन्नत और पवित्र करनेसे सारा समाज उच्च और उन्नत हो सकता है। यह व्यक्तिको समाजके लिए बलिप्रदान करना नहीं चाहता। कोई व्यक्तिविशेष स्वेच्छापूर्वक अपने धर्मसंस्कारके अनुसार जीवन पालन करने तथा उन्नति करनेमें दूसरोंके समान

अधिकार पर आक्रमण न कर सके तथा वह अपना जीवन इस प्रकार व्यतीत करे कि जिसमें सारा समाज भरपूर हो—नैतिक आदर्श यही है। व्यक्तिके मङ्गलमें ही समाजका मङ्गल है। हर *व्यक्तिकी उन्नति उसके धर्म* या संस्कारके ही अनुसार हो सकती है। अतएव व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके छीननेसे समाज उन्नत नहीं हो सकता, वरन् वह उलटा दरिद्र होता है। क्योंकि सच्ची उन्नति वही है जिसमें हमारी सभी शक्तियाँ पूर्ण रूपसे विकसित और उन्नत हों। निसन्देह एक ऐसा समय आ सकता है कि जब किसी व्यक्ति विशेषकी इच्छा या सुखमें तथा सारे समाजकी इच्छा कामना या सुखमें कोई भेद न रहे। परन्तु समाज व्यक्तिके लिए है न कि व्यक्ति समाजके लिए। नीति व्यक्त्यात्मक है।

आनन्द-प्राप्तिकी कामना।

आनन्द ही सभी मनुष्योंका लक्ष्य है। हर मनुष्य आनन्दकी कामना करता है। क्या वह मनुष्य जो संसारको ही सब कुछ समझ कर तथा दूसरोंके आनन्द और सुखकी रत्ती भर भी परवाह न कर जिस प्रकार हो केवल अपना ही सुख साधन करता है और क्या वह मनुष्य जो संसार पर और सारे सांसारिक सुखों पर लात मार कर घोर तपस्या करता है और परलोकहीको सब कुछ समझता है—दोनों आनन्दकी अभिलाषा रखते है? आनन्दकी कामना ही मनुष्यको हर काममें प्रवृत्त करती है। अतएव *नीति-विज्ञान मनुष्यकी इस आनन्द-तृष्णाको अवज्ञाकी दृष्टिसे नहीं देख सकता। विज्ञानके द्वारा यह सिद्ध होता है कि आनन्दसे लाभ और दुःखसे हानि होती है; बल्कि उन प्राणियोंको जिनमें यह कामना पूरे तौरसे होती है, जीवन-संग्राममें विशेष सहायता मिलती है और वे प्राणी जिनमें*

यह कामना नहीं होती तथा जो सुखकी अपेक्षा दुःखको ही अधिक पसन्द करते हैं मृत्युको प्राप्त होते हैं । *

आनन्दके द्वारा जीवनका स्रोत उछल उछल कर द्रुत गतिसे प्रवाहित होने लगता है; परन्तु दुःखसे इसकी गति शिथिल हो जाती है । कार्लाइल सत्य ही कहते हैं—" वह मनुष्य जो एक बार भी पूरे दिलसे और अपने अन्तःकरणसे हँसा है, बुरा नहीं हो सकता । हँसी भी क्या ही अद्भुत वस्तु है ! हम इसके द्वारा मनुष्यके समूचे चरित्रको —उसके मनोगत भावोंको—उसके हृदयको—अक्षरोंमें लिखी हुई पुस्तकके सदृश पढ़ ले सकते हैं । × × × जो मनुष्य हँसना नहीं जानता वह छल विश्वासघात इत्यादि सभी कुछ कर सकता है । इतना ही नहीं; स्वयं उसका जीवन ही पाषण्डमय विश्वासघात है ।"+ कार्लाइलका यह कथन अक्षरशः सत्य है । क्योंकि हम आगे चल कर देखेंगे कि जो *मनुष्य अपने सुख और आनन्दकी परवाह नहीं करता—जिसे सुख और आनन्दके साथ शत्रुता है—वह दूसरोंके कल्याण मंगलका भी गला घोंट सकता है ।* हृदयके सहानुभूति-शून्य होनेके कारण वह दूसरोंके सुख दुःखको अनुभव नहीं कर सकता और इसलिए वह दूसरोंके साथ कठोर व्यवहार भी कर सकता है ।

मज़हबकी भूल ।

अतएव मज़हबोंका यह कथन कि आनन्दको विषके समान परित्याग करना चाहिए, ठीक नहीं है । आनन्दमें कोई पाप नहीं है । *आनन्दसे जीवनकी वृद्धि होती है और दुःखसे जीवनका ह्रास और नाश होता है । जीवनकी*

---

* देखो Spencer–Principles of Ethics Vol. I, Part I, the Data of Ethics esp. ch. VI—33-39 और Ethics by Dr. Saleelby P. 40.

+ Sartur Resartus.

सेवा करना और उसे पूर्ण और उन्नत बनाना, इसके सिवा नीतिका कोई दूसरा लक्ष्य नहीं है। मौनकिउर कौनव्रेने सच ही कहा है—

"आनन्द ही जीवनका उद्देश है।×× मनुष्यके लिए इससे बढ़कर और कोई उत्तम आदर्श नहीं हो सकता। × × हजारों स्वर्ग मनुष्यको आनन्द प्रदान करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकते। यह आनन्द मनुष्यकी शारीरिक, हार्दिक और मानसिक लालसाओंके पूर्ण होनेसे ही प्राप्त होता है। × × चाहे मनुष्य विषयभोगके द्वारा या जीवनोत्सर्गके द्वारा इसे उपलब्ध करना चाहता हो, आनन्द ही उसकी एक कामना है। आनन्दकी ही खोजमें पतङ्ग दीपककी आगमें जल मरता है। आनन्दकी ही खोजमें तपस्वी अपनी कन्दरामें प्राणत्याग करता है।* आनन्दकी ही खोजमें शराबी शराबके कारण और कामान्ध पुरुष अपनी अनिवार्य्य काम-तृष्णाके द्वारा अपनी जान देता है। × × इन सबोंमें ही प्रत्येकके मध्य एक उच्च अभिलाषा, स्वतन्त्रताकी अभिलाषा, सम्पूर्ण जीवन प्राप्त करनेकी अभिलाषा विद्यमान है—एक नियन्त्रित शक्ति सौन्दर्यके स्वातन्त्र्यमें फट पड़ना चाहती है। यदि ये सर्व पतङ्ग अग्निके रंगीन चित्रसे यही आनन्द प्राप्त कर सकते—बिना राखका ढेर हुए भी सुखकी उपलब्धि कर सकते—तो उनकी यह बावली इच्छा दुःखसे शून्य और स्वच्छ होती।

"इसलिए हर मनुष्यको आनन्द प्राप्त करना चाहिए और हर मनुष्य निःसन्देह इसे प्राप्त करता यदि जीवनका मार्ग आत्मोत्सर्गके भ्रम

---

* **सर्वाणि भूतानि सुखे रमन्ते, सर्वाणि दुःखस्य भृशं त्रसन्ते।**
(–महा० शां० २३१,२७)

अर्थात् सभी प्राणी आनन्दसे सुखी होते हैं और दुःखसे असीम भय करते हैं

प्रमादोंसे भरा न होता—यदि लोग मिथ्या शिक्षाओंके कारण आनन्दसे भय न खाते ! क्या दूसरोंको आनन्दित बनाना हमारा कर्तव्य है ? क्या हमें दूसरोंको सुख प्रदान करना चाहिए ? हम दूसरोंको ऐसी वस्तु क्यों दें जिससे हम स्वयं वंचित रहना चाहते हैं, जिसे हम स्वयं बुरा समझते हैं तथा जिससे हम स्वयं घृणा करते हैं ? कैसी मूर्खता है ! हमें आनन्दकी चाह रखनी चाहिए। हमें इसकी उपलब्धि करनी चाहिए और यदि हम ऐसा करेंगे तो हम देखेंगे कि हमें अपने आनन्दके वितरण करनेमें—अपने आनन्दमें दूसरोंको भागी बनानेमें—बड़ा सुख प्राप्त होता है।

" नीतिका उद्देश यही है कि वह मनुष्यको अपने सुखकी चाहमें इस प्रकार प्रवृत्त करे कि जिसमें उसका अपना भी हित और पूर्ण विकास हो और दूसरोंका कोई अहित न हो। " *

" आनन्दकी जड़ धर्ममें है और धर्मका आनन्दके साथ बहुत बड़ा लगाव है। वह उसका चिर संगी है। स्मरण रक्खो कि दोनों एक दूसरेके साथ इस प्रकार बँधे हुए हैं जिसतरह बदली समुद्रके साथ।"

"मनुष्यको केवल धर्ममें ही न लगा रहना चाहिए और न सुख और लाभको ही अपनी कामनाका अन्तिम सोपान समझना चाहिए। मनुष्यको इन तीनोंकी फिक्र सदा समान रूपसे करनी चाहिए।"

(—महा० वनपर्व ३३,२८–३८)

---

* Quoted in " The Task of Rationalism in Retrospect and Prospect " by John Russel (M. A. p. 26 Gonway Memorial Lectures for 1920.

"जो वस्तु सत्य, सुन्दर, पवित्र, धर्ममय और निर्दोष है वह आनन्द है," वह आनन्दप्रद भी अवश्य होती है। अतएव सदाचारका भी उद्देश जीवोंको सुखी बनाना ही है। मज़हबी सदाचारशास्त्र, तथा अवैज्ञानिक सदाचारशास्त्रके पण्डितोंके कुछ दलका यह मत है कि सदाचार या दुराचार सुख दुःखसे स्वतंत्र हैं। केवल ईश्वरकी आज्ञाओंहीका नाम सदाचार है तथा सदाचार और दुराचारके परखनेके लिए—यह निर्णय करनेके लिए कि कौन काम सदाचारके और कौन काम दुराचारके अन्तर्गत हैं—सुख दुःखकी तराजूकी ज़रूरत नहीं है। कुछ लोग सदाचारको ईश्वरकी आज्ञा तो नहीं समझते परन्तु उसे सुख दुःखसे स्वतंत्र ही मानते हैं। उनका कहना है कि सदाचार अन्तःकरणकी भाषा है। सदाचारको सुख और दुःखसे कोई सरोकार नहीं है। आगेके अध्यायोंके पढ़नेसे स्पष्ट हो जायगा कि सदाचारको ईश्वरकी आज्ञा या अन्तःकरणकी भाषा समझना कितनी बड़ी भूल है। यदि सदाचार ईश्वरकी आज्ञा है तो सदाचारको ईश्वरकी आज्ञा माननेवाले सभी मनुष्यसमूह एक ही कामको बुरा और एक ही कामको भला क्यों नहीं समझते? आज्ञाओंको स्पष्ट और साफ़ होना चाहिए। जिस कामको मानव-समाजका एक अंश सदाचार समझता है, दूसरा अंश उसी कामकी गणना सदाचारमें नहीं करता। पुनः यदि सदाचार अन्तःकरणकी भाषा है तो प्रत्येक अन्तःकरण एक ही तरहसे क्यों नहीं बोलता? एक अन्तःकरणकी आवाज़ दूसरे अन्तःकरणकी आवाज़से क्यों नहीं मिलती? फ़ीजियन मनुष्य नर-

सदाचारका लक्ष्य और आनन्दके साथ उसका सम्बन्ध।

सदाचारसम्बन्धी अवैज्ञानिक मतका खण्डन।

हत्या करना बड़े गर्वकी बात अनुमान करता है। उसका अन्तःकरण उसे हत्या करनेसे तनिक भी नहीं रोकता। टर्कोमैन जातिका आदमी चोरी करनेको बड़ी प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखता है। इस समाजमें चोरों-को बहुत सम्मान प्राप्त है। हम जिस प्रकार प्रयाग, काशी, बद्री या रामेश्वर इत्यादि तीर्थोंकी यात्रा करते हैं उसी प्रकार टर्कोमैन जातिका आदमी बड़े बड़े और प्रसिद्ध डाकुओंकी कब्रकी जियारत करनेको जाया करता है—मानों डाकुओंकी कब्र ही उसका तीर्थस्थान है ! परन्तु यहाँ इन बातोंपर ठहरनेकी आवश्यकता नहीं है; इन्हें आगेके लिए छोड़ देना चाहिए।

स्पष्ट ही है कि जिन कामोंसे जीवोंको सुख और आनन्द हो वह सदाचार और जिन कामोंसे जीवोंको दुःख और शोक हो वह दुराचारके अन्दर शामिल है। अनुमान करो कि कुछ मनुष्योंके शरीरमें छुरी भोंकनेसे उन्हें आनन्द प्राप्त होता है और उनके हाथ पैर इत्यादि अवयवोंको काट डालनेसे तो वे हर्षसे विह्वल हो जाते है। अनुमान करो कि किसीका धन चुरा लेनेसे उसे बड़ा लाभ होता है तथा उसके घरमें खानेपीनेकी उत्तमसे उत्तम सामग्रियोंकी वर्षा होने लगती है। अनुमान करो कि कुछ मनुष्योंके घरोंमें आग लगा देनेसे उनके घर दीप्तमान-रत्न-जटित सोनेके घरोंमे परिवर्तित हो जाते हैं। तो क्या ये काम जिनको मानव-जातिका बहुत बड़ा अंश अत्यन्त बुरा समझता है, अब भी बुरे समझे जायँगे ? क्या हत्या चोरी इत्यादि अब भी दुराचार अनुमान किये जायँगे ? उलटा क्या ये सब काम सदाचारके अन्तर्गत नहीं गिने जाने लगेंगे ? पुन अनुमान करो कि किसी रुग्ण पुरुषकी सेवा शुश्रूषा करनेसे, और ओषधि देनेसे उसे बहुत तकलीफ होती है। अनुमान करो कि किसी मातृ-पितृ-

हीन बच्चेकी रक्षा करनेसे उस बच्चेको बहुत कष्ट होता है, वरन् उस बच्चेको बिना अन्न जल इत्यादिके अकेले छोड़ देनेसे ही उसे बहुत आनन्द होता है। तो क्या इस अवस्थामें भी अनाथोंकी रक्षा करना उत्तम समझा जायगा? क्या अनाथालयोंका खोलना बहुत बड़ा पाप न होगा?

आनन्द ही—केवल एक व्यक्तिका नहीं—वरन् सभीका आनन्द—जो बिना किसीको कष्ट दिये प्राप्त होता है—नीतिका लक्ष्य है। आनन्द-कामनासे ही मनुष्य कामोंमें प्रवृत्त होता है। यही सबोंका ध्येय है—केवल उन्हें इसके प्राप्त करनेका ढंग मालूम नहीं है। आह, कौनवेके शब्दोंमें हम आनन्दरूपी दीपक पर जलकर मरनेवाले पतंग यदि राखके ढेर हुए बिना, इस आनन्दकी उपलब्धि कर सकते तो क्या ही अच्छी बात होती! नीतिविज्ञान हमें ऐसे ही उपाय बतलानेकी चेष्टा करता है।

मज़हबकी भूल केवल इतनी ही है कि वह सभी सांसारिक आनन्दोंको बुरा समझता है और सभीसे बलात्कार स्वार्थत्याग कराना चाहता है। परन्तु वैज्ञानिक नीति-शास्त्र आत्मरक्षा और समाजरक्षा दोनों पर समान ज़ोर देता है। क्योंकि बिना आत्मरक्षाके समाजरक्षा संभव नहीं। वैज्ञानिक नीतिशास्त्रको आनन्दसे द्वेष नहीं है। इसका तात्पर्य्य यह नहीं कि वैज्ञानिक नीतिशास्त्रमें आत्म-बलिदान, आत्मोत्सर्ग या निस्वार्थताको कोई स्थान नहीं है। वैज्ञानिक नीतिशास्त्र इन वस्तुओंके महत्त्वको पूर्ण रूपसे स्वीकार करता है। उसका उद्देश यही है कि वह आत्मरक्षाके महत्त्वको भी—जिसे मज़हब एकदम स्वीकार नहीं करता—पूर्ण रूपसे व्यक्त कर सके।

चौथा अध्याय ।

सदाचारका स्वभाव और विकास ।

१ नीतिका स्वरूप ।

नीति सम्बन्धात्मक है।

किसी एक सुनसान जनशून्य टापू पर एक अकेला मनुष्य, जहाँ उसके कार्य्योंका प्रभाव उसके सिवाय किसी अन्य व्यक्ति पर नहीं पड़ सकता, बुद्धिमान् हो सकता है, किन्तु सच्चरित्र नहीं । वह मनुष्य अज्ञानी कहला सकता है, पर अपराधी कदापि नहीं । हम उसके साथ कोई नैतिक विशेषण नहीं जोड़ सकते । हम उसे सच्चरित्र या दुश्चरित्र, अच्छा या बुरा—यदि इन शब्दोंका नैतिक अर्थ लिया जाय—कदापि नहीं कह सकते । अत एव नीति और नैतिक सम्बन्धके पैदा होनेके लिए कमसे कम दो व्यक्तियों-की आवश्यकता है । उदाहरणार्थ, सर्वप्रधान गुण सचाईका अस्तित्व ही नहीं हो सकता यदि ऐसा कोई मनुष्य न रहे जिसके साथ हम बात करें, या असत्-व्यवहार करें । ऐसी हालतमें सच्चे झूठे इत्यादि शब्दोंका कोई अर्थ ही नहीं, क्योंकि हम किसके साथ सच और किसके साथ झूठ बोलेंगे । इन शब्दोंके उपयुक्त होनेके लिए कमसे कम एक और मनुष्यकी आवश्यकता है । इसी प्रकार कोई मनुष्य हत्या या चोरीका मुजरिम नहीं हो सकता, यदि अन्य कोई मनुष्य रहे ही नहीं जिसकी वह हत्या कर सके या जिसकी चीज़ चुरा सके । इसी प्रकार हमारे धोखेबाज़ और फ़रेबी कहलानेके लिए अन्य व्यक्तियोंकी भी आवश्यकता है

जिन्हें हम धोखा दे सकें या जिनके साथ हम फ़रेब कर सकें। इससे यह सिद्ध होता है कि नीतिशास्त्र और आचार-सम्बन्धी सभी गुण सम्बन्धात्मक हैं। जहाँ हमारे कार्य्योंका प्रभाव केवल हमारे ही ऊपर समाप्त हो जाता है वहाँ सदाचरण और दुराचरणका अस्तित्व नहीं है। किन्तु जहाँ हमारे कार्य्योंका नतीजा बाहर भी प्रस्फुटित होता है, जहाँ हमारे कार्य्योंसे केवल हमारा ही नहीं, वरन् दूसरोंका भी हित अहित और मङ्गल अमङ्गल होता है वहीं सदाचारकी उत्पत्ति होती है। नहीं तो ये शब्द एकदम निरर्थक हैं। अतः यह पूर्णतः स्पष्ट होता है कि नीति (Ethics) सम्बन्धात्मक (Relative) है। यदि हम और सब कर्तव्योंको छोड़कर केवल ईश्वरके प्रति हमारा जो कर्तव्य है उसीको स्मरण करें तो यहाँ भी दो व्यक्तियोंकी—हमारी और एक सृष्टिके बनानेवाले दूसरे महान् व्यक्ति ईश्वरकी–आवश्यकता होती है।*

---

* परन्तु यहाँ पर इतना स्मरण रखना चाहिए कि नैतिक आचार—अर्थात् नैतिक दृष्टिसे अच्छे और बुरे काम—साधारण आचारके एक अंश हैं और बिना पूर्णका ज्ञान प्राप्त किये खण्डका ज्ञान प्राप्त करना असम्भव है। इसलिए नीति-विज्ञानके विद्यार्थीको साधारण आचारके अध्ययनकी भी बड़ी आवश्यकता है। पुनः साधारण आचरणसे नैतिक आचारका पृथक्करण भी सहज नहीं है। बाज़ बाज़ दफ़ा तो यह कहना ही कठिन प्रतीत होता है कि किसी मनुष्यके किसी कामसे केवल उसकी ही हानि या लाभ होता है या उसका प्रभाव दूसरों पर भी पड़ता है। क्योंकि समाज ज्यों ज्यों और जितना ही अधिक पेचीदा होता जाता है उतना ही अधिक प्रत्येक मनुष्यके कामका असर सारे समाज पर पड़ता है और शायद आधुनिक समाजमें मनुष्यके विरल ही काम ऐसे होंगे कि जिनका प्रभाव केवल मात्र उनके ही ऊपर पड़ता हो और अन्य मनुष्योंको सूक्ष्म रूपसे भी न स्पर्श करता हो। पूर्व अध्यायमें आत्म-रक्षा पर ज़ोर देते हुए इस बातका किंचित् स्पष्टीकरण किया गया है। प्रत्येक मनुष्यका वैयक्तिक कल्याण मङ्गल अन्य सबोंके कल्याण मङ्गलके साथ आबद्ध है। हमारे

पुनः जिन व्यक्तियोंके बीच नैतिक सम्बन्ध पैदा होता है उन्हें चैतन्य होना चाहिए। यानी *उनमें दुःख सुख अनुभव करनेकी शक्ति होनी चाहिए।* नीतिका यह बहुत ही स्पष्ट स्वरूप है। इस पर और अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं। हमें अपने थाली लोटे या कटोरेसे कोई नैतिक सम्बन्ध नहीं है। परन्तु हम अपनी गौ या कुत्ते या घोड़ेसे यह नाता नहीं तोड़ सकते। हम अपने बर्तनोंको चकनाचूर कर डाल सकते हैं। हम अपने वस्त्रों जूतों इत्यादिको जीर्ण विदीर्ण कर डाल सकते हैं। हम अपने घर-द्वारको भस्मीभूत कर डाल सकते हैं। ऐसा करनेसे हमारी मूर्खता भले ही स्पष्ट हो, परन्तु हम किसी नैतिक अपराधके मुजरिम कदापि नहीं कहला सकते। परन्तु नैतिक कलङ्कका टीका लगाये बिना हम अपने

चैतन्य जीवोंके मध्य ही नैतिक सम्बन्ध पैदा होता है।

बलवान् और हृष्ट पुष्ट होनेसे दूसरोंका भी नफा है, क्योंकि इससे वस्तुओंका मूल्य घटता है (?)। हमारे रोगमुक्त रहनेसे अन्य लोगोंको भी लाभ होता है, क्यों कि स्वयं उनके बीमार पड़नेकी सम्भावना कम हो जाती है। हमारी बुद्धिके बढ़नेसे दूसरोंको भी फायदा है, क्योंकि नित्य प्रति लोगोंकी मूर्खता और अज्ञानतासे उन्हे स्वयं कुछ न कुछ गैर सुभीता अवश्य होता है। पुनः अन्य मनुष्योंको छोड़कर यदि हम अपनी वर्तमान और भावी संततिके साथ अपने सम्बन्धको स्मरण करें तो शायद हमारा कोई भी कार्य नीतिके क्षेत्रसे बाहर नहीं कहा जा सके। यह पूर्व अध्यायमें ही वर्णन किया जा चुका है। यदि सदाचारकी वह परिभाषा जो हमने सातवें अध्यायमें दी है ठीक मानी जाय—अर्थात् *संख्या और श्रेष्ठता दोनोंके लिहाजसे जीवनको बढ़ाना और पूर्ण करना यदि यही सदाचार माना जाय*—तो मनुष्यका ऐसा कोई काम न रह जाय जो नीति-विज्ञानके क्षेत्रसे बाहर समझा जा सके; परन्तु नीतिका प्रधान स्वरूप वही है जो ऊपर दिया गया है। इसीलिए हमने भी इसी पर अधिक जोर दिया है।

घरेलू जानवरोंके साथ कदापि कठोर और मनमाना व्यवहार नहीं कर सकते। इस लिए यह सिद्ध होता है कि नीतिकी जड़ चेतनतामें है। एक बार दो चैतन्य जीवोंका आपसमें सम्बन्ध होनेसे ही नीतिका आविर्भाव होता है। *जिस जीवमें जितनी अधिक चेतनता होगी—जितना अधिक सुख दुःख अनुभव करनेकी शक्ति होगी—उतना ही अधिक उसके साथ हमारा कर्तव्य भी होगा।* एक पत्थरके टुकड़ेके साथ हमारा जो कर्तव्य है उससे अधिक हमारा कर्तव्य एक वृक्षके साथ है और वृक्षके साथ हमारा जो कर्तव्य है उससे अधिक हम पशु पक्षियोंके सुख दुःखके जिम्मेवार हैं। इसी प्रकार हमारी सबसे बड़ी जिम्मेदारी मनुष्यके साथ है। *वैज्ञानिक सदाचारशास्त्र इस नीतिका समर्थन नहीं कर सकता कि चीटियोंको चीनी खिलाना और मनुष्यकी हत्या करना।* जैसा कि आगे चल कर स्पष्ट होगा वैज्ञानिक नीतिशास्त्र प्रकृतिके साथ चलना चाहता है—प्रकृतिकी सहायता करना चाहता है—और प्रकृति सब जीवोंकी समान परवाह नहीं करती।

नीति एक विकसित वस्तु है और मजहबसे स्वतंत्र है।

अब दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि हमारी सदाचार-बुद्धिकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई, हमने सत्यका महत्त्व कहाँसे सीखा, यह आदेश कि " साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप " हमें किसने बतलाया, हमें लैङ्गिक स्वच्छताकी शिक्षा किसने दी। इत्यादि। और स्थानोंकी तरह विकासशास्त्र यहाँ भी हमारी मददको आ पहुँचता है। वह बतलाता है कि हमारी सदाचार-बुद्धि हममें कहीं बाहरसे नहीं आई है। हमें ईश्वर या किसी देवता या किसी पवित्र धर्मग्रन्थने सच्चरित्र होनेकी प्राथमिक शिक्षा नहीं दी है; हाँ एक बार इस बुद्धिके पैदा होने पर पीछे इसकी कुछ सहायता अवश्य की

है। विकास-शास्त्रकी रूसे यह अभ्रान्त सिद्ध होता है कि हमारे शरीर और अवस्थाकी तरह हमारी सदाचार-बुद्धिका भी विकास हुआ है। इसका मूल भी हमारे पशुपूर्वजोंमें ही था जो समय पाकर इस प्रकार फूला फला और भविष्यमें और भी फूले फलेगा। इसका बीज हममें कहीं बाहरसे आरोपित नहीं हुआ और न क्रिस्तान बाइबलके अनुसार किसी एक खास दिनको खुदाने एक तख़्ती पर लिख कर सारे नैतिक सिद्धान्तोंको हमारे हवाले कर दिया था। सभी विकासित वस्तुओंकी तरह हमारी सदाचार-बुद्धिका भी विकास हुआ है, इसकी भी उन्नति हुई है, इसमें भी परिवर्तन हुआ है और इसका भी रूप बदला है, एवं भविष्यमें भी बदलता रहेगा। हृदयके फैलनेके साथ हमारी सदाचार-बुद्धिका भी प्रसार हो रहा है।

हर युगकी सदाचार-बुद्धि दूसरे युगकी सदाचार-बुद्धिसे भिन्न होती है।

यह कहना फ़जूल न होगा कि हर युगकी आचार-बुद्धि दूसरे युगकी आचार-बुद्धिसे भिन्न होती है। एक ज़माना था जब हम अकुण्ठित कंठसे चीत्कार कर कहते थे कि—

**"ढोल गँवार शूद्र पशु नारी,
ये सब ताड़नके अधिकारी।"**

परन्तु आज हम स्त्रीशिक्षा तथा नीच जातियोंकी, नहीं नहीं अछूत पेरियों तककी, शिक्षा और उन्नतिके लिए क्या इस प्रकार व्यस्त हैं? जातियाँ एक समय स्वयं ईश्वरके शरीरसे बनी थीं, स्वयं ईश्वरने ही सभी जातियोंके कार्य्य निर्द्धारित कर दिये थे और उसीने हमें शूद्रोंके साथ पशु पक्षियोंसे भी बुरा सलूक करनेका अधिकार दिया था; परन्तु आज हम जातिको वेदविरुद्ध क्यों बतलाते हैं, और अपने प्यारे सिद्धान्तोंके सिद्ध करनेके लिए शब्दोंके अर्थोंको इतना क्यों तोड़ मरोड़ रहे हैं एवं अपना मग्ज़ ख़राब कर रहे हैं?

किसान-विद्रोह (Peasant Revolt) के समयमें मार्टिन लूथर (क्रिश्चियानिटीके प्रोटेस्टैण्ट सम्प्रदायके संस्थापक) ने जमीन्दारोंको आज्ञा दी थी कि "इन किसानोंका मूलोच्छेद करो, इनके शरीरमें तलवार भोंक दो, इनके बदनको टुकड़े टुकड़े कर डालो और पागल कुत्तोंके साथ जो व्यवहार किया जाता है वही इनके साथ करो, इनके सिरका भेजा निकाल कर खण्ड खण्ड कर डालो।" लूथरने ऐसा क्यों कहा था? इसीलिए कि विद्रोह करना किसानोंके लिए उचित न था, और जमीन्दारोंकी आज्ञाका पालन करना उनका साधारण कर्तव्य था। "स्वयं ईश्वरने ही समाजमें उनका स्थान निर्धारित कर दिया था और कृतकार्य्य होनेके लिए उनकी कोशिश मानों ईश्वरको झूठा बनानेकी कोशिश थी।*"

पुराने समयकी क्रिश्चियानिटी गुलामीकी प्रथाको किस निगाहसे देखती थी यह आगेकी कथासे (जिसे स्पेन्सरने अपने Social Statics † नामी ग्रन्थके एकसौ तीसवें पृष्ठमें उल्लेख किया है) पूर्णतः स्पष्ट होता है। कर्नल डी ओयाली (D' oyley)ने—जो इँग्लैण्डकी ओरसे जमैकाके प्रथम गवर्नर थे—हुक्म दिया कि मेरी पलटनमें बाइबलकी १७०१ प्रतियाँ बाँटी जायँ। इसके कुछ समय पहले हब्शियोंकी शिकार करनेके निमित्त जौन ह्वाय (John Hoy) जमैकामें १५ कुत्ते लाया था। उपर्युक्त आज्ञाके पास करनेके तीन ही चार दिनके पश्चात् डी ओयालीने यह हुक्म दिया कि सरकारी महसूलमेंसे जौन ह्वायको इन कुत्तोंका मूल्य दे दिया जाय। इसका क्या कारण था? और कुछ नहीं, केवल यही कि गुलामी बुरी न

---

* Christianity and Civilisation P. III.

† Watts R. P. A. cheat Reprints.

समझी जाती थी—यह साधारण बात मानी जाती थी । मनुष्यका अन्तःकरण अभी इतना संक्षोभ्य और उन्नत न हुआ था कि वह जान सके कि सभी आदमियोंके सदृश गुलामोंके भी शरीर है और सभी आदमियोंके समान भृत्यवर्ग भी सुख दुःख अनुभव करते हैं ! परन्तु उसी योरोपसे आज गुलामीकी प्रथा उठ गई है, उसी योरोपमें आज स्वतंत्रता और मनुष्यके समान अधिकारोंकी धूम है और क्रिश्चियानिटी कहती है कि मेरे ही प्रभावसे यह सब हो रहा है !

मज़हबके द्वारा नीतिकी उत्पत्ति नहीं हुई है, वरन् नीतिके कारण मज़हब शुद्ध उन्नत और पवित्र हुआ है । समय समय पर मज़हबके अन्दर ही पवित्रात्मा सुधारकोंका जन्म होता है जो प्रचलित स्थूल विश्वासोंको परिवर्तित कर मज़हबको पवित्र और नीति-मय बनाते हैं । इस समयके सभ्य आदमीके मज़हबमें तथा प्राचीन मज़हबमें या जंगली या बर्बर जातियोंके मज़हबमें कितना अंतर है, यह इतिहासके प्रेमियों पर विदित है ।

हमारी सदाचार-बुद्धि हमारी परिस्थितिके अधीन है ।

हमारी सदाचार-बुद्धि एक विकसित वस्तु है, जिसका विकास वंशानुक्रम और परिस्थितिके नियमों द्वारा होता है । इसी लिए जाति, देश और कालके भेदसे इसके इतने रूपान्तर हुए हैं और हैं, इसी लिए प्रत्येक मनुष्यका धर्म और अधर्म उसके देश और कालके अधीन होता है । जो कर्म एक देशमें अत्यन्त धार्मिक है वही दूसरे देशमें घोर निन्दनीय समझा जाता है । एक देशमें चचेर भाई बहन आपसमें वैवाहिक सम्बन्ध कर सकते हैं, परन्तु दूसरे देशमें यह बहुत बड़ा पाप प्रतीत होता है । एक देशमें लोग अपनी सालीसे शादी कर सकते हैं, पर दूसरे देशमें यह बहुत बुरा माना जाता है । एक देशमें लोगोंकी केवल एक शादी

हो सकती है, पर दूसरे देशमें अनेक होती हैं । एक देशमें विधवा-विवाह अति उत्तम और दूसरेमें अति घृणित माना जाता है । केवल विवाहमें ही नहीं, नीतिके हर एक विभागमें यही बात है । यदि किसी ईसाईको गोमांसका एक टुकड़ा मिल जाय और यदि वह उसे अपने तथा दूसरेकी प्राणरक्षाके काममें न लावे तो वह समझेगा कि उसने बड़ा भारी पाप—महान् दुष्कर्म—किया । परन्तु यदि किसी हिन्दूसे यह काम हो जाय तो वह इसे आत्मघातसे भी बड़ा भारी पातक समझेगा । ये सब बातें सामयिक शिक्षा और संसर्गके फल हैं । पिछली शताब्दीमें भारतवर्षमें लुटेरोंके कई समुदाय थे जिनको ठग कहते थे । वे राह चलते हुए पथिकोंको मार कर उनका द्रव्य लूट लेनेहीमें अपना धर्म समझते थे । वे जितने ही अधिक मनुष्योंकी हिंसा करते थे समझते थे कि उन्होंने उतना ही अधिक धर्मका काम किया है । एक ठग अत्यन्त ही दुःखित होकर अपना मनस्ताप इस प्रकार प्रकट करता था—" मैंने उतने आदमियोंको नहीं लूटा और न गला घोंट कर उतने आदमियोंको मारा जितना कि मेरे पिताने लूटा मारा था । इसलिए मेर अन्तःकरणमें वेदना हो रही है, मुझे हार्दिक दुःख हो रहा है ! ! " *

उदाहरण—विवाह-सम्बन्धका विकास ।

इसी प्रकार लैङ्गिक स्वच्छताके सम्बन्धमें भी मनुष्यके विचारोंने पलटा खाया है । प्रत्येक देश और प्रत्येक युगके लोग इसके सम्बन्धमें भिन्न भिन्न धारणा रखते आये हैं । प्राचीन समयके और कुछ जातियोंके इस समयके भी स्त्री-पुरुष सम्बन्धको देख सुन कर हमें रोमांच हो आता है और अवाक् होना पड़ता है । हमारे क्रोध और घृणाकी कोई सीमा

---

* Descent of man; Murray (1909) P. 180

नहीं रहती । अधिक दूर जानेकी आवश्यकता नहीं । क्या आज कलका हिन्दू नियोगको * उसी दृष्टिसे देखेगा जिस दृष्टिसे उसे प्राचीन हिन्दू देखते थे ? सभी बातोंमें अपने मज़हबके गुलाम हिन्दू इस सम्बन्धमें अपने मज़हबको अक्षरश: क्यों नहीं मानते ? पुन: प्राचीन समयमें एक पुरुषके साथ बहुतसी स्त्रियोंके विवाह करनेकी प्रथा थी; परन्तु बहुविवाह पर लोगोंके आज क्या विचार हैं ?

इतना ही नहीं, समाज-विज्ञानके मनन करनेसे यह स्पष्ट होता है कि किसी समयमें समस्त मनुष्यजातिके मध्य पुरुष और स्त्रियोंके बीच अभेद संमिश्रण (Promiscuity) की प्रथा थी। एक पुरुषके लिए एक या एकसे अधिक स्त्री (Polygamy) की प्रथा तब तक जारी न हुई थी । उस समय सम्पूर्ण स्वच्छन्दता थी, कोई बन्धन न गढ़े गये थे । उस अवस्थामें पुरुष-स्त्रीका लैङ्गिक सम्बन्ध पशुओंसे ऊँचा न था । हेरोडोटस कहता है कि अगाथिर्सस (सीथियन) जातिमें प्रचलित रीतिके अनुसार प्रत्येक पुरुषको प्रत्येक स्त्री पर समान अधिकार रहता है । उनका ख्याल है कि इस प्रकार वे लोग आपसमें एक दूसरेके भाई होंगे । आयर्लैण्डकी केल्टिक जातिके बारेमें स्ट्रैबो लिखता है कि वे सभी स्त्रियोंसे---अपनी माँ और बहनसे भी—संसर्ग रखते हैं। इसमें लज्जा या शर्म कुछ भी नहीं। प्लेटोके कथनानुसार सीक्रोप्सके पूर्व ग्रीस निवासियोंकी भी यही हालत था। चीनमें फूबीके राजत्व-काल तक समस्त पुरुषोंका समस्त स्त्रियों पर समान अधिकार

* नियोगकी प्रथा प्राचीन स्पार्टामें (और शायद समस्त ग्रीसमें भी) प्रचलित थी। स्पार्टा (Sparta) में यह नियम जारी था कि बुड्ढे और दुर्बल मनुष्य अपनी स्त्रियोंको बलवान् पुरुषोंको दे डालें ताकि वे लोग देशके लिए बलवान सिपाही उत्पन्न करें। (Leckey History of European Morals watts (1911) Vol. II P. 122)

था। कोई स्त्री किसी पुरुषविशेषके अधिकारमें न रहता थी। स्ट्रैबो और भी लिखता है कि फेलिक्स अरेबियाके लोग अपनी माँसे भी संसर्ग रखते हैं। हमारा महाभारत कहता है कि "स्त्रियाँ स्वतंत्र थीं और वे उच्छृंखलता और स्वच्छन्दताके साथ विचरण करती थीं। यौवनके आवेगमें वे अक्सर सतीत्व-पथसे भ्रष्ट भी हो जातीं थीं; परन्तु दोषी नहीं समझी जाती थीं। ऋषि उद्दालकके पुत्र श्वेतकेतुको यह प्रथा बहुत बुरी लगी और उन्होंने यह नियम बनाया कि स्त्री अपने पतिके साथ और पति अपनी स्त्रीके साथ सत्यशीलतासे रहे"। मेजर रौसकिंग कहते हैं कि कौरम्बा जातिमें स्त्री-पुरुषोंका अभेद समागम प्रचलित है। कुछ लोग कहते हैं कि हम लोगोंका त्योहार होली, इसी अभेद समागमका अन्तिम निश्वास है।* आस्ट्रेलियामें लड़कियोंका दश वर्षकी ही आयुसे चौदह पन्द्रह वर्षके लड़कोंके साथ समागम शुरू हो जाता है और इसके लिए उनपर कोई नाराज नहीं होता। इसी अभेद संमिश्रणसे एक और प्रथाकी उत्पत्ति हुई है जो हमें अत्यन्त ही जघन्य और अश्लील प्रतीत होती है। प्रथम प्रथम कोई स्त्री किसी एक पुरुषकी निजी सम्पत्ति न थी। परन्तु बहुत दिनों तक यह अवस्था क़ायम न रह सकी। पुरुषोंके हृदयमें अन्य वस्तुओंके समान स्त्रियोंको भी अपनी निजी सम्पत्ति बनानेकी इच्छा हुई और उन्होंने एक या एकसे अधिक स्त्रियों पर अपना अधिकार जमाना आरम्भ किया। प्रचलित प्रथाके विरुद्ध समाजको यह काम बहुत बुरा लगा; परन्तु साथ ही साथ उसने देखा कि वह इस नये वेगके रोकनेमें नितान्त अशक्त है। अतएव यह तसफ़िया हुआ कि स्त्रीको

---

* Bulletin of the Indian Rationalistic Society Vol. I pp. 77-78। डाक्टर सुबोधकुमार बसुका यह लेख पढ़ने ही योग्य है।

पूर्णतः एक पुरुषके अधीन होनेके पूर्व एक बार वेश्याका काम करना पड़ेगा। हेरोडोटस कहता है कि बैबिलोनमें यह रिवाज था कि प्रत्येक स्त्रीको जीवनमें एक बार व्हीनसके मन्दिरमें बैठना और किसी अपरिचित आदमीके साथ प्रेमसहवास करना पड़ता था। एक बार मन्दिरमें बैठने पर, जबतक कोई अपरिचित आदमी उसकी गोदमें चाँदीका एक टुकड़ा न डाल दे और मन्दिरके बाहर उसके साथ संभोग न कर ले तब तक वह स्त्री अपने घर वापस न आ सकती थी। चाँदी देने वाला उस स्त्रीको आशीर्वाद देता था कि व्हीनस (Venus) उस पर कृपा करेगी। वह चाँदीका टुकड़ा अत्यन्त छोटा हो सकता था, परन्तु स्त्री उसे अस्वीकार नहीं कर सकती थी, क्योंकि वह बहुत ही पवित्र समझा जाता था। जो पुरुष प्रथम प्रथम इस टुकड़ेको फेंकता था, स्त्री निःशब्द उसके पीछे हो लेती थी। वह किसी पुरुषको अस्वीकार नहीं कर सकती थी। इस कार्य्यके उपरान्त वह देवीके प्रति अपने कर्तव्यसे छुटकारा पाती और तब घर आती। इसके बाद अधिकसे अधिक द्रव्य देने पर भी वह कभी परपुरुषके पास नहीं जा सकती थी। स्ट्रैबो कहता है कि अर्मीनियन जाति अपनी क्वाँरी लड़कियोंको अनेइटिस (Anaitis) देवीको समर्पण कर आती है और मन्दिरमें बहुत दिनों तक वेश्याओंके समान जीवन बिताने पर भी उन लड़कियोंको पति प्राप्त करनेमें कठिनाई नहीं पड़ती। एक प्राचीन चीनी परिव्राजकके कथनानुसार कम्बोडियाकी अवस्था भी कुछ इसी तरहकी थी। प्राचीन ग्रीसमें भी मज़हबी वेश्याओंकी भरमार थी। हमारे यहाँ भी देव-दासियोंकी कमी न थी। कुछ वैष्णव सम्प्रदायोंके व्यभिचार तो मशहूर ही हैं। प्राचीन रोममें 'स्त्रीधन-' शून्य लड़की बड़ी ही अवज्ञाकी दृष्टिसे देखी जाती थी। अतएव युवतियाँ

विवाहके पूर्व अपने शरीर (वेश्यावृति) के द्वारा कुछ रुपया उपार्जन कर लिया करती थीं। परन्तु इस कार्य्यसे उनके विवाहमें कोई बाधा न पड़ती थी।

इन सब अवस्थाओंके अतिक्रमण करनेके पश्चात् मनुष्यसमाजमें वैवाहिक प्रथाकी उत्पत्ति हुई। परन्तु आदि अवस्थाओंमें रिश्ते और नातेका कोई ख़याल नहीं किया जाता था। हर्न कहता है कि चियेवे जातिके लोग अक्सर अपनी बहनों और बेटियोंके साथ भी लैंगिक सम्बन्ध रखते हैं। लैंग्सफोर्डने *कैमैग्मट* जातिके बारेमें भी यही कहा है। *कूकी* जातिमें प्रत्येक पुरुषकी शादी प्रत्येक स्त्रीके साथ हो सकती है, केवल माँ बेटेके ब्याहका निषेध है। जस्टिन टर्ट्रलियन कहता है कि प्राचीन फारसमें वहाँका मज़हब माँ बेटेके सम्बन्धकी भी अनुमति देता था।

लैङ्गिक स्वच्छताके सम्बन्धमें मनुष्यके विचार-वैचित्र्यके और भी बहुतसे नमूने मिल सकते हैं। पर्य्यटन-कारियोंने अपनी पुस्तकोंमें ऐसी बहुतसी जातियोंका वर्णन किया है जो मेहमानकी सेवामें अपनी पत्नियों और बेटियोंको भी उपस्थित करती हैं। अपने यहाँके प्रचलित आतिथ्यके नियमोंके अनुसार वे ऐसा करनेके लिए बाध्य हैं। यह स्वागतका एक अंश है। किसी स्त्रीके समर्पण किये जाने पर यदि कोई उसे अस्वीकार कर दे तो इसे किचनूक जातिके लोग बड़ा भारी अपमान समझते हैं। इस जातिमें तथा अन्य रेड इण्डियन जातियोंमें अविवाहिता स्त्रियाँ वेश्याओंके सदृश अनेक पुरुषोंके साथ संसर्ग रखती हैं। यह सर्वथा बुरा या अनुचित नहीं समझा जाता, यहाँ तक कि अपने आत्मीय लोगोंकी अनुमतिसे स्त्रियाँ स्वयं परपुरुषोंके पास जाती हैं और उनसे प्रेमकी

भिक्षा माँगती हैं। चुकची जातिके लोग भ्रमणकारियोंके सामने अपनी स्त्री और बेटीतकको उपस्थित करते हैं और यदि उन्हें अस्वीकार कर दिया जाय, तो इसे वे अपना अक्षम्य अपमान समझते हैं। सीयूक्स जातिके बारेमें भी यही बात लिखी गई है। कमैस्कडेल अलीटस तथा उत्तरी एशियाकी कई जातियोंका भी यही नियम है। दक्षिण अमेरिकाकी जंगली जातियोंके बारेमें लिखा गया है कि वे स्त्रियोंके सतीत्वकी तनिक भी परवाह नहीं करतीं। एस्किमो जातिमें दो मित्र अकसर दो एक रात्रिके लिए अपनी स्त्रियोंको अदल-बदल कर लिया करते हैं और यह मित्रताकी पराकाष्ठा समझी जाती है! चिपेवन जातिके यहाँ भी ठीक ऐसी ही बात है। कैलमैक और करगीज जातिके बारेमें लिखा गया है कि वे अपनी स्त्रियोंको प्रसन्नतापूर्वक अपने मित्रों और परिचितोंकी सेवामें भेजा करते हैं तथा एक मित्र अपने दूसरे मित्रको अपनी स्त्रीके साथ हार्दिकता बढ़ानेमें प्रोत्साहित करता है। डकोटा लोग विवाहके पूर्व स्त्रियोंके सतीत्वकी रत्ती भर भी परवाह नहीं करते। प्राचीन नाइकेर-गुआमें एक वार्षिक त्योहारके दिन सभी स्त्रियाँ पूर्णतया स्वतंत्र हो जाती थीं और वे जिस पुरुषको चाहतीं उसके साथ संसर्ग कर सकती थीं। इनके यहाँ कुमारियोंके लिए तो कोई रोक-टोक थी ही नहीं। वे वेश्यावृत्तिके द्वारा समुचित धन कमाकर अपना विवाह करती थीं। मौंगोलकारेन और डोडा लोगोंके मध्य परपुरुषसंगति एकदम बुरी नहीं समझी जाती, और न इसके छिपानेका प्रयत्न ही किया जाता है। रेडकारेन लोग स्त्री पुरुषके भेद-भावरहित समागमका समर्थन करते हैं और कहते हैं कि यह तो उनके यहाँकी पुरानी चाल है। 'हाइलैंडस ऑफ इथियोपिया' नामकी पुस्तकमें हैरिस लिखते हैं कि सतीत्वकी यहाँ तनिक भी परवाह नहीं की जाती और स्त्रीके निकाल ले

जानेके लिए यहाँ कानूनन अधिकसे अधिक पाँच आना जुर्माना है। अपर कौंगो पर बसनेवाली जातियोंके बारेमें लिखा गया है कि विवाहके पूर्व पिता और भाई प्रत्येक कुमारीको केवल दो गज कपड़ेके लिए किसी पुरुषके हवाले कर देते हैं और इससे वह स्त्री बुरी नहीं समझी जाती और न इसके कारण उसके विवाहमें ही कोई अड़चन उपस्थित होती है। पील्यू द्वीपवालोंकी भी यही अवस्था है। टहीटी, मैकरोने-शिया और कैण्ड्रोन द्वीपकी जातियोंका भी यही वृत्तान्त है। टैहिटि-यनोंके बारेमें कुकने लिखा है कि हम लोग जिस प्रकार किसी अव-सर पर बहुतसे लोगोंके मध्य बैठकर भोजन करते हैं, उसी प्रकार ये लोग खुले मैदानमें लोगोंकी दृष्टिके सामने अपनी कामाग्निको शान्त किया करते हैं। वोटियाक लोगोंके मध्य किसी कुमारीके पीछे यदि नवयुव-कोंका दल नहीं चला करता तो यह उसके लिए बड़े अपमानकी बात समझी जाती है। कुमारावस्थाहीमें स्त्रियोंका माता बन जाना उनके यहाँ बड़े सौभाग्य और सम्मानकी बात है। इससे उसके पिताको अधिक धन मिलता है और वह पति भी धनाढय प्राप्त करती है। मध्य अमेरिकाकी प्राचीन चिपचा जातिका वृत्तान्त यों है कि यदि विवाहके पश्चात् किसी पुरुषको यह माछूम होता था कि उसकी स्त्रीका किसी पुरुषके साथ समागम नहीं हुआ है तो वह अपने भाग्यको कोसने लगता था और एक भी पुरुषका चित्ताकर्षण न कर सकनेके कारण अपनी स्त्रीको अत्यन्त तुच्छ अनुमान करता था। प्राचीन जापानियोंके बारेमें डिकसनने लिखा है कि पुत्रियाँ अपने पिताकी आर्थिक अवस्थाको सुधारनेके लिए अपने शरीरको बेचा करती थीं और इस तरह अपने पिताको सहायता पहुँचा कर जब वे घर लौटती थीं तब तनिक भी अवज्ञाकी दृष्टिसे नहीं देखी जाती थीं, वरन्

पितृ-प्रेमके कारण उनका सम्मान बढ़ जाता था। वर्तमान रूसमें हाल तक कुमारी स्त्री पूर्णतया अपने ज़मीन्दारके अधीन होती थी।

बहुविवाहके सम्बन्धमें भी लोगोंके विचारोंमें बड़ी विचित्रता दृष्टि-गोचर होती है। बेंचुआना जातिके बारेमें लिखा गया है कि वे एक पुरुषकी एक ही स्त्रीकी प्रथाको समझनेमें भी असमर्थ हुए, कल्पना करना तो दूर रहा। अरबकी कुछ जातियोंने भी इस प्रथाको एकदम असम्भव समझा। मकोलोलो स्त्रियोंने जब यह सुना कि इंग्लैण्डमें एक पुरुषके एक ही स्त्री होती है तो वे स्तंभित हो गईं। अधिक स्त्रियोंको रखना वहाँ सम्मानकी बात समझी जाती है। आफ्रिकाकी कुछ जातियोंके सम्बन्धमें रीडने लिखा है कि यदि कोई विवाहित पुरुष एक और स्त्रीका भार वहन कर सकता है तो उसकी पत्नी उसे एक और विवाह करनेके लिए सदा तंग करती रहती है; यहा तक कि विवश होकर उसे विवाह करना ही पड़ता है और यदि वह विवाह करना अस्वीकार करता है तो उसकी स्त्री 'कृपण' कहकर उसका तिरस्कार करती है। अरोकेनियन स्त्रियोंका भी यही वृत्तान्त है।

मैं समाजशास्त्र पर पुस्तक लिखने नहीं बैठा हूँ, इसलिए मुझे समाजशास्त्रके जटिल आर विवादग्रस्त प्रश्नोंके स्पर्श करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। पूर्व कालमें स्त्रीपुरुषके मध्य अभेद समागमकी प्रथा प्रचलित थी या उस समय भी किसी न किसी प्रकारका वैवा-हिक बन्धन विद्यमान था, ये सब बातें हमें समाजशास्त्रवेत्ता-ओंको झगड़नेके लिए छोड़ देनी चाहिए। बात चाहे जो हो, यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि पूर्वकालमें आज कलकी सी

लैङ्गिक स्वच्छता न थी। इन उदाहरणोंसे यह पूर्णतः प्रमाणित हो जाता है कि नीति सम्बन्धात्मक है तथा अन्य वस्तुओंकी तरह हमारी आचार-बुद्धि भी एक धीरे धीरे विकसित हुई वस्तु है।

उदाहरण—भ्रूणहत्या और बाल-हत्या।

और और बातोंमें भी मनुष्यके विचारोंमें इसी प्रकार आश्चर्य्यजनक परिवर्तन हुए हैं। इसके भी दो एक उदाहरणों पर दृष्टि डाल लीजिए। भ्रूणहत्या—गर्भ नष्ट करना—हमारे देशमें अन्यन्त ही बुरा माना जाता है। परन्तु क्या यह प्रत्येक देश और प्रत्येक समयमें ऐसा ही माना जाता था? ग्रीसमें अरिस्टोटल केवल इसकी अनुमति ही नहीं देता बल्कि यहाँ तक कहता है कि आबादीके एक निर्दिष्ट संख्यासे अधिक बढ़ जाने पर नियम द्वारा लोगोंसे ज़बरदस्ती इस कामको कराया जाना चाहिए। रोममें भी यह दोप पूर्ण रूपसे फैला हुआ था। सिर्फ इन्द्रियपरता या दारिद्रहीके कारण ऐसा नहीं किया जाता था, बल्कि अपने सौन्दर्य्यको बचाये रखनेके हेतु स्त्रियाँ अक्सर प्रसवकार्य्यकी अपेक्षा भ्रूणहत्याको अच्छा समझती थीं। यह नैतिक व्याधि वहाँ इतने प्रबल रूपसे फैली हुई थी कि कुछ लोगोंकी जीविका इस काममें सहायता पहुँचानेसे ही चलती थी। वहाँ ऐसी स्त्रियाँ विरल थीं जिन्होंने जीवनमें एक बार भी इस दुष्कर्मको न किया हो। यह कर्म करके वे बड़ी भारी प्रशंसाकी भागिनी होती थीं।*

इसी प्रकार बाल-हत्याका रिवाज भी अनेक देशोंमें प्रचालित रहा है। स्पार्टामें दुर्बल बालकोंको उनके माता पिता अकसर मरनेके लिए

---

* देखो Leckey–History of European Morals Vol. II. pp. 8-15.

किसी एक स्थान पर रख आया करते थे । लाइकर्गस और सोलनके कानून तो मशहूर ही हैं ।

नीतिकी नीव बहुत गहरी और मजबूत चट्टानोंसे बनी हुई है। यह बालूकी भीत नहीं है। इसकी स्थिति उन विचारों और अनुभवों पर है जो कि विकसित होते होते सभ्य मनुष्यका सहज स्वभाव बन गये हैं। सदाचारको उसी प्रकार किसीने पैदा नहीं किया है जिस प्रकार पाशव, मानव या वनस्पति संसारको पैदा किया है। आज भी यदि हम देखना चाहें तो स्वयं अपनी आँखोंसे देख सकते हैं कि नीति धीरे धीरे और किन किन अवस्थाओंमेंसे होकर विकसित हुई है। आज भी हमें बहुत सी जातियाँ ऐसी मिलेंगी जो नीतिमें एकदम कोरी हैं और बहुत सी ऐसी हैं जिनका नैतिक बचपन अबतक समाप्त नहीं हुआ है।

नीतिकी नीव।

आप एक बहुत साधारणसा उदाहरण ले लीजिए—हत्यासे घृणा। आप यह कहेंगे कि इस प्रवृत्तिको ईश्वरने सभी मनुष्यों और सभी जातियोंके हृदयस्थ किया है, कोई भी मनुष्य या जाति आपको ऐसी न मिलेगी जो इस प्रवृत्तिसे विहीन हो। परन्तु ऐसा नहीं है। ऐसी अनेकानेक जातियाँ आजतक विद्यमान हैं जो अबतक रक्तपात करना ज़रा भी बुरा नहीं समझतीं। डियाक युवती उस चाहनेवालेको अवज्ञाकी दृष्टिसे देखती है जिसने कोई सर न काटा हो। अमेरिकन रेड इण्डियन रमणी अपने प्रेमीकी बहादुरीकी परख उसकी झोपड़ीमें लटकते हुए सिरोंके द्वारा करती है और जिसने जितने ही फ़रेब और धोखेसे वे सिर प्राप्त हुए हों वह प्रेमी उतना ही प्रतिष्ठित समझा जाता है।

सदाचारकी उत्पत्ति मज़हबके द्वारा नहीं हुई है, वरन् यह पूर्णतः विकसित वस्तु है—जैसे हत्यासे घृणा।

इजरेलके पुजारियों और पैगम्बरोंने 'अगोग'के टुकड़े टुकड़े करना जिहोवा (Jehovah) के प्रति अपना कर्त्तव्य माना था और हिब्रू स्त्रियोंमें 'जेल'की प्रतिष्ठा इस कारण हुई थी कि उसने एक सोये हुए मनुष्यके सिरमें—जिसने कि उसके घरमें आश्रय ग्रहण किया था—छुरा भोंका था। 'ईश्वरके प्यारे मनुष्य' डेविड-ने केवल एक जघन्य जनाके छिपानेके लिए निर्दयता एवं छल-कपट-पूर्ण अनेकानेक हत्यायें की थीं। इन स्थानों पर ईश्वर द्वारा दिया हुआ आदेश—'तू हत्या मत करना'—न जाने किस कौनेमें जा छिपा था! असंख्यों जङ्गली मनुष्योंने कैदियों और अपरिचित लोगोंको बिना किसी पसोपेश, अनुताप या पश्चात्तापके भक्षण कर डाला है। पर असंख्यों ब्राह्मण और बौद्ध—जिन्होंने कि मोज़ेज़ (Moses) या मोज़ेज़-प्राप्त तख्ती पर लिखे हुए आदेशोंके बारेमें कभी सुना तक नहीं—हत्यासे यहाँ तक भागते हैं कि कीट पतङ्गतककी जान लेना भी उन्हें असह्य है। * "पश्चिम आफ्रिकावाले अधिकांश लोग नर-मांस-भक्षक हैं और उनके बीच मारना या मारा जाना दैनिक जीवनकी एक साधारण घटना समझी जाती है।+" फीजियन मनुष्य नरहत्याको तनिक भी बुरा नहीं समझता—यहाँतक कि जबतक वह किसीकी हत्या नहीं कर लेता तबतक बच्चा रहता है। आफ्रिकाके कुछ अंशोंमें जंगली जातियाँ अभीतक किसी राजा या सरदारके मरने पर उसकी स्त्रियों, गुलामों या नोकरोंको मार डाला करती हैं ताकि

---

* Laing—Problems of the Future P. 97.

+ Lyal—Asiatic Studies, quoted in from May H. Kingsley's "Travels in West Africa."

वे परलोकमें उसका साथ दें और उसकी सेवा करें । डहौमीमें लोग अकसर अभीतक इसी लिए मारे जाते हैं कि जिसमें उनकी आत्मायें वर्तमान बादशाहका सम्वाद उस बादशाहके किसी मृत पूर्व-पुरुषके पास पहुँचा दें और वहाँसे जवाब ले आवें । इन लोगोंके यहाँ प्रति वर्ष कुछ लोग इसलिए मार डाले जाते हैं कि जिसमें मृत बाद-शाहको प्रति वर्ष नये नये अनुचर प्राप्त होते रहें । ये लोग अपनी झोप-ड़ियोंको मनुष्यकी खोपड़ियोंसे सजाते हैं और उन खोपड़ियोंको प्राप्त करनेके लिए युद्ध किया करते हैं । स्पष्ट ही है कि इन हत्याओंके पीछे मजहबका किंचित् समर्थन अवश्य मौजूद है । प्राचीन मेक्सिकोमें देवताओंकी वेदियों पर हज़ारों मनुष्योंका बलिप्रदान होता था और वहाँ लड़ाइयोंके आरम्भ करनेका कारण देवताओंकी भूख ही बतलाई जाती थी । भूखे देवताओंकी जठराग्निको शांत करनेहीके लिए लड़ाइयाँ छेड़ी जाती थीं । नर-बलिदानकी प्रथा व्यापक रूप-से प्राचीन फिनिशियनों, सिथियनों, यूनानियों, रोमनों, असीरियनों और यहूदियों प्रभृतिमें फैली हुई थी ।

बुशमैन जातिके सम्बन्धमें लिविंगस्टोन लिखता है–" एक बुश-मैन अग्निके समीप बैठ कर अपनी शूरताकी व्याख्या कर रहा था । उसने पाँच बुशमैनोंकी हत्या की थी—जिनमें दो स्त्रियाँ, एक पुरुष और दो बच्चे थे । मैंने कहा–' तुम भी कितने बड़े दुरात्मा हो जो अपनी निज जातिकी स्त्रियों और बच्चोंकी हत्या करके गर्व कर रहे हो ! ईश्वर तुम्हें क्या कहेगा, तुम उसे क्या उत्तर दोगे ! ' उसने उत्तर दिया कि 'ईश्वर यही कहेगा कि मैं बड़ा चालाक आदमी था ' । यहाँ पर ईश्वरसे उस मनुष्यका तात्पर्य उसके मृत सरदारसे था ।" विल्सन और फ़ोल्किनने अपने युगैण्डाके

वृत्तान्तमें इस तरह लिखा है—"यूगैण्डाके बादशाहका एक जवान अनुचर था। वह एक सरदारका पुत्र था और मेरे पास राजभवनसे सम्वाद लाया करता था। एक दिन सुबहको वह बहुत खुश खुश मेरे पास आया और कहने लगा कि मैंने अभी अभी अपने पिताका वध किया है। जब मैंने उससे इसका कारण पूछा तब उसने उत्तर दिया कि मैं पिताकी अधीनतामें काम करते करते ऊब गया था और मेरी इच्छा स्वयं सरदार बननेकी थी। अतएव मैंने बादशाहसे सलाह ली तो उसने कहा कि तुम अपने पिताको मार डालो और स्वयं सरदार बन जाओ। इसी लिए मैंने ऐसा किया।" कूकी जातिके लोगोंका अनुमान है कि जो मनुष्य सबसे अधिक शत्रुओंकी हत्या करेगा वही स्वर्गका भागी होगा और स्वर्गमें उसके हाथों मारे गये लोग उसकी सेवा करेंगे। पंजाबके उत्तर-पश्चिम किनारे पर बसनेवाली कुछ जातियोंमें कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं जिसने अपने हाथोंको नर-रक्तसे कलुषित न किया हो। वहाँका प्रत्येक आदमी अपने हाथों मारे गये लोगोंकी संख्याको याद रखता है। कैलेफोर्नियामें भी एक समय ऐसा ही होता था। जंगली जातियोंके लोग अपने वृद्ध पिता माता और सम्बन्धियोंको अक्सर मार डालते हैं। वेण्ड लोग अपने बूढ़े बाप मा और नातेदारोंको —जो काम करने और लड़नेके योग्य नहीं रहते—या तो मारकर खा डालते हैं और या उन्हें जीवित गाड़ देते हैं। अनेक जंगली जातियोंका यही वृत्तान्त है। वेट प्रदेशमें कोई बूढ़ा सरदार यदि जीवित ही न गाड़ दिया जाय तो यह उसके लिए बड़े अपमानकी बात समझी जाती है। फ़िजीकी सदाचारबुद्धि भी एक समय इसी तरहकी थी। अपनी माताको जीवित गाड़नेके समय फ़िजी द्वीपका एक मनुष्य कहता था कि " माताके प्रेमके कारण ही

मैं ऐसा कर रहा हूँ और मेरे सिवा अन्य कोई आदमी इस पवित्र कामको नहीं कर सकता है।" वह उसकी माता थी और वह उसका पुत्र था, इस लिए अपनी माताको जीवित गाड़ देना उसका धर्म था। इन लोगोंका विश्वास है कि परलोकमें मनुष्योंका जीवन उसी अवस्थासे प्रारम्भ होता है कि जिस अवस्थामें वे यहाँ मरते हैं। अतएव इसमें कोई सन्देह ही नहीं है कि जिस कामको हम लोग घोरतम पाप समझते हैं वही काम बहुत सी जगहोंमें धर्मकार्य अनुमान किया जाता है। ये काम केवल प्रसन्नतापूर्वक किये ही नहीं जाते, बल्कि इनके नहीं करनेसे उन लोगोंको दारुण आत्मग्लानि होती है। नर-हत्या एक समय किस दृष्टिसे देखी जाती थी इसका पता वरगिल्ड (Wergild) संस्थासे—जो प्रायः समस्त योरोपमें एक समय प्रचलित थी—पूरे तौर पर चल जाता है। प्राचीन यूनानमें भी यही प्रथा थी। इस प्रथाके अनुसार मनुष्यके जीवन या मरण पर ज़ोर नहीं दिया जाता था, वरन् किसी मनुष्यके मरनेसे उसके परिवार या वंशको जो हानि होती थी केवल उसी पर लक्ष्य रक्खा जाता था। किसी व्यक्तिकी हत्या करना समस्त राष्ट्रके प्रति अपराध नहीं अनुमान किया जाता था। हत्याका बदला लेना ही मृत पुरुषके सम्बन्धियोंका काम था। अर्थ-दण्ड लेकर भी वे संतुष्ट हो सकते थे। परन्तु प्रत्येक मनुष्यका मूल्य समान न होता था। हर मनुष्यकी श्रेणी या समाजमें उसके स्थानके अनुसार उसकी हत्याके लिए अर्थदण्ड भी कानूनके द्वारा निश्चित किया हुआ था। गरज यह कि मानव-जीवन एक पवित्र वस्तु है, इस विचारने तबतक मनुष्यके मस्तिष्कमें जन्म-ग्रहण नहीं किया था। परन्तु आज सभीके जीवनकी समान परवाह की जाती है और सभी हत्याओंके लिए एक ही दण्ड है।

उदाहरण-सहानुभूति-का प्रसार।

मानव-समाज पर दृष्टिपात करनेसे विदित होता है कि मनुष्यने अपनी सहृदयता और समवेदनाके भावोंको भी बहुत कठिनाइयोंसे और अनेक दिनोंके बाद प्राप्त किया है। कारेन्स जातिके बारेमें मेसन कहता है कि एक बूढ़ी स्त्री अपनी जीर्ण कुटीमें मरणासन्न हो रही थी। उसके पुत्र और पौत्र यद्यपि बहुत दूरपर न थे, तथापि बुलाने पर कोई उसके समीप न जाता था। एक और जंगली जातिकी स्त्रीका वृत्तान्त है कि उसने अपने बीमार पतिके लिए एक मुर्गी-के जबह करनेसे एकदम इन्कार कर दिया। उत्तरमें उसने साफ़ साफ़ कह दिया कि उसका पति तो मरेगा ही, पर साथ ही साथ उसकी मुर्गी भी जाती रहेगी! हब्शी जातिकी कई उपजा-तियोंके बारेमें भी ऐसी ही बातें लिखी गई हैं। यद्यपि वे कठोर स्वभावके नहीं हैं और मारकाटसे उन्हें प्रेम नहीं है, तथापि उनके हृदयमें करुणा, दया, या अनुकम्पाका कोई भी भाव नहीं है। किसी मनुष्य या पशुको घोर यंत्रणा या कष्टमें लोटते हुए देख कर उन्हें असीम आनन्द होता है। अशाण्टी लोगोंके यहाँ तो यह कहावत ही प्रचलित है कि "यदि किसी दूसरे मनुष्यको कष्ट हो रहा है तो समझो कि एक लकड़ीके टुकड़ेको कष्ट हो रहा है। दूसरोंके दुःख-से तुम्हें मतलब? तुम वृथा चिन्तित मत होओ।" उमारा जाति-के बारेमें बौन कहता है—"यह तो सभी कोई जानते हैं कि दूसरी जातियोंमें बूढ़े और बेकार लोग मरनेके लिए छोड़ दिये जाते हैं; परन्तु यह तो विश्वासकी सीमाहीसे बाहर है कि कोई माता अपने बीमार बच्चेकी झोपड़ी पर दो एक आँटी घास डालनेसे भी इन्कार करेगी और शीत और गर्मीसे उसकी रक्षा न करेगी।" ये

लोग बीमार आदमीको झोपड़ीसे अलग और अग्निसे दूर ठंढेमें फेंक देते हैं, ताकि उसकी मृत्यु शीघ्र हो जाय। मारुट्रज जातिके बारेमें कहा गया है कि रक्तपात इन लोगोंको इतना प्रिय है कि मनुष्यकी यन्त्रणाको देख कर इनके आनन्दकी कोई सीमा नहीं रहती। उत्तरी अमेरिकाकी जंगली जातियोंका वृतान्त है कि वे अपने नव युवकोंका अनुशासन उन्हें कठिन यंत्रणा देकर किया करते हैं। इस जातिकी स्त्रियाँ और बच्चे भी दूसरोंको कष्ट देकर आनन्दित होते हैं।

उदाहरण—चोरी और डकैतीसे घृणा।

प्रत्येक समय और देशके मानव-समाजोंके अवलोकनसे पता लगता है कि चोरी और डकैतीके बारेमें भी मनुष्यके विचार सदा एक तरहके नहीं रहे हैं। कोमिञ्चा लोगोंमें सबसे बड़े चोरका सबसे अधिक सम्मान होता है। पटेगोनियनोंकी भी यही हालत है। पूर्वीय आफ्रिकामें पशुओंका चोराया जाना तनिक भी बुरा नहीं समझा जाता। बहुत सी जंगली जातियाँ—जो अपनी जातिकी सीमाके मध्य चोरी या डकैती नहीं करतीं—दूसरी जातिके लोगोंका वस्तुओंका चोराना या बलात् अपहरण करना प्रशंसनीय काम समझती हैं। बदीऊन लोग एक अपरिचित आश्रितकी रक्षा अपना प्राणतक देकर करते हैं, परन्तु उस मनुष्यके उनकी कुटीसे बाहर होते ही और अपनी सफ़रमें कुछ दूर आगे बढ़ते ही उसे लूट लेते हैं और यदि इसमें उसकी हत्या तककी भी सम्भावना हो तौभी वे इस कामसे बाज़ नहीं आते। इउरोराई जातिके सरदारके बारेमें लिखा गया है कि जब तक कोई मेहमान उसकी बस्तीमें रहता है तब तक वह उसका पूरा सत्कार करता है, परन्तु बस्तीसे बाहर निकलते ही उसको लूट लेता है। फ़िजियनोंके बारेमें लिखा गया है कि वह आदमी—जो अपने घरसे कुछ

ही गज़की दूरी पर किसी मनुष्यकी जान एक सामान्य छुरी या कुल्हाड़ीके लिए ले सकता है—उसी मनुष्यके घरमें प्रवेश करते ही अर्थात् चौखट पार करते ही उसकी रक्षा अपना प्राण देकर भी करनेको तैयार हो जाता है। टोका जातिमें छिपकर चोरी निस्सन्देह बुरी बात समझी जाती है, परन्तु रक्तपात करके ज़बरदस्ती दूसरोंसे वस्तुओंका छीन लेना सम्मानकी बात है। मर्वोंकी सभामें एक बार जब ओडनोन्हन यह उपदेश दे रहा था कि तुम लोगोंको लूट मारके हमले बन्द करना चाहिए, तो एक मनुष्य क्रोधसे चिल्ला उठा—"या अल्लाह, तो फिर हम लोगोंका जीवन ही किस प्रकार कट सकता है!" सीमान्त पर बसनेवाली पठान जातिकी कुछ मातायें ईश्वरसे सदा यह प्रार्थना किया करती हैं कि उनके पुत्र विख्यात लुटेरे हों। अफरीदी माताओंकी भी यही प्रार्थना होती है। टर्कोमैन जातिके यहाँ प्रसिद्ध डाकू और लुटेरा साधु और सन्त बनता है और लोग उसकी क़ब्रको तीर्थस्थान समझ कर वहाँ जियारतके लिए जाया करते हैं। कूकी जातिमें कौशलसे धन चोरानेवाले प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। इस विद्याकी वहाँ बहुत चाह है। अंगमी जातिके बारेमें भी लिखा है कि ये लोग पक्के चोर होते हैं। प्राचीन स्पार्टन लोगोंके सदृश उन्हें भी चोरीमें प्रवीण होनेका गर्व है। चोरी करते समय पकड़े जाने पर ही चोर अवज्ञाकी दृष्टिसे देखा जाता है। चिनूक जातिका वृत्तान्त भी ठीक इसी तरहका है। वगैण्डा, फ़ीजियन, और मैंगोलियन जातियोंके बारेमें भी यही बातें लिखीं गई हैं। बलूचिस्तानमें एक प्रसिद्ध प्रचलित पदका तात्पर्य्य यह है कि जो मनुष्य चोरी और हत्या करता है वह अपनी सात पीढ़ी तकके पूर्वजोंको स्वर्ग भेजता है। वहाँ एक कहावत भी है कि जो आदमी चोरी और डकैती नहीं करता उस आदमी पर ईश्वर कदापि प्रसन्न नहीं हो सकता।

उदाहरण-मनुष्यकी न्याय-बुद्धि-का विकास।

सहानुभूतिके सदृश न्यायबुद्धि भी सदाचारका एक प्रधान अंग है। परन्तु अद्य पर्य्यन्त इसके सम्बन्धमें भी मनुष्यके विचार बड़े विचित्र दीख पड़ते हैं। जंगली जातियोंकी न्यायबुद्धिके अनुसार एक जातिका कोई मनुष्य यदि दूसरी जातिके किसी मनुष्यके हाथों मारा जाता है तो हत्या करनेवाले मनुष्यके सिवा उस दूसरी जातिके अन्य किसी मनुष्यके मार डालनेसे भी जंगली जातियोंकी न्याय-बुद्धि सन्तुष्ट हो सकती है। उस दूसरी जातिके किसी मनुष्यको अवश्य मारा जाना चाहिए। चाहे हत्या करनेवाला मनुष्य मारा जाय या किसी निर्दोष व्यक्तिकी ही हत्या क्यों न हो—जंगली जातिके मनुष्योंका अन्तःकरण इसमें कोई भेद अनुमान नहीं करता। फिलिपाइन टापूकी जंगली जातियोंका वृत्तान्त है कि वे अन्तर्जातीय हत्याका हिसाब बराबर रक्खा करती हैं। जैसे किसी एक जातिके मनुष्योंके द्वारा किसी दूसरी जातिके चार मनुष्य मारे गये तो दूसरी जातिके लोग इसे सदा याद रक्खेंगे। अब यदि हम मान लें कि इन्होंने पहली जातिके केवल तीन ही मनुष्योंकी हत्या की है तो ये पहली जातिके एक और अधिक मनुष्यकी जान लेना अपना कर्तव्य समझेंगे। बदला लेनेके लिए सबकी जान बराबर नहीं समझी जाती। क्वीअंगनीज़ जातिके बारेमें ब्लुमेण्ट्रिटने लिखा है कि "इस जातिके मध्य रक्तका बदला रक्तसे लेना अति पवित्र कर्तव्य समझा जाता है। यदि किसी दूसरी जातिके किसी साधारण मनुष्यके द्वारा इस जातिके किसी साधारण मनुष्यकी हत्या होती है तो हिसाब बहुत सुगमतासे साफ़ हो जाता है, अर्थात् उस दूसरी जातिके किसी साधारण मनुष्यकी जान ले ली जाती है; परन्तु यदि किसी जातिकी उच्च श्रेणी-

का कोई मनुष्य मारा जाता है तो इसका बदला दूसरी जातिके किसी साधारण मनुष्यके मारनेसे नहीं चुक सकता। बदलेमें साधारण मनुष्यका मारना या कुत्तेका मारना समान समझा जाता है। हत्या करनेवालेके मारनेसे भी इनकी न्याय-बुद्धिकी संतुष्टि नहीं हो सकती। इसलिए जबतक हत्या करनेवाले मनुष्यके कुलका कोई आदमी उच्च श्रेणीमें शामिल नहीं कर लिया जाता है तब तक मृत मनुष्यके कुलके लोगोंको प्रतीक्षा करनी पड़ती है। इसलिए अकसर बहुत वर्षोंतक मृत मनुष्यके कुलका बदला रुका रहता है। बदला लेनेवाले लोग प्रत्येक अवस्थामें मनुष्यको मारकर उसके सिरको काट लेते हैं और उसे अपने साथ घर लाकर इस बातका त्योहार मनाते हैं और फिर उस खोपड़ीको झोपड़ीके सामने लटका देते हैं। अरेबियन जातियोंके बारेमें भी लिखा है कि खूनका बदला लेनेका अधिकार क्रमशः एक पीढ़ीसे आगन्तुक पीढ़ियोंको प्राप्त होता है। शायद ईसाइयोंकी बाइबुलकी न्यायप्रियता भी इसी तरहकी है। आज्ञाका उल्लंघन करनेके कारण ईश्वर आदमसे बदला तो लेता ही है, परन्तु इतनेहीसे उसकी संतुष्टि नहीं होती। वह आदमके वंशमात्रको शाप देता है और मानव-समाजमें अनेक व्याधियों इत्यादिको फैलाकर तथा उन्हें नरकमें भेज कर उनसे बदला लेता है और आगे अनन्त समय तक लेता ही रहेगा। अतएव जंगली मनुष्योंकी न्याय-बुद्धिके सदृश ही बाईबुलका भी न्याय है। उसके अनुसार भी यह आवश्यक नहीं है कि अपराधके लिए अपराधीहीको दण्ड दिया जाय। आधुनिक आस्ट्रेलियनोंका न्यायविधान यह है कि यदि किसी अपराधीका पता न लग सके तो उसके समस्त सम्बन्धियोंको मार डालना चाहिए। बाइबुलकी न्यायबुद्धि इससे भी बढ़ी चढ़ी मालूम होती है।

हमारी सदाचार-बुद्धि भी उन्हीं प्रवृत्तियोंसे उन्नत हुई है जिनको हमने अपने पशु पूर्वजोंसे प्राप्त किया है। ✱ इसकी जड़ हमारे सामाजिक नातोंमें है और इसकी उत्पत्ति हमारी सामाजिक प्रवृत्तिकी उत्पत्तिके साथ ही हुई है। नीतिने उसी दिन जन्म ग्रहण किया जिस दिन समाजने। साधारण कल्याण मङ्गल प्राप्त करनेके लिए हम जिस दिन समाजमें सम्बद्ध हुए उसी दिन हमने धर्म और अधर्म इत्यादि शब्दोंका आविष्कार किया। उन कार्य्योंको जिनसे समाजको लाभ पहुँचे हमने अच्छा, प्रशंसनीय और धार्मिक कहा और जिनसे समाजको नुकसान हुआ बुरा, निन्दनीय और पापपूर्ण कहा। अतएव समाजरक्षा ही सभी नीतियोंका लक्ष्य था। पहले पहल आदमीकी सहानुभूति उसके कुटुम्बके साथ हुई, पश्चात् वह मातृभूमिके प्रेममें परिवर्त्तित हुई और अन्तमें—जैसा कि भारतवर्षमें हुआ—यह विश्व-व्यापिनी हुई। केवल मनुष्य ही हमारी सहानुभूतिका भागी नहीं हुआ वरन् कीट पतंग तक भी हुए।

सदाचारकी उत्पत्ति।

इसी लिए मैं कह चुका हूँ कि नीति सम्बन्धात्मक है। प्रत्येक युग और प्रत्येक देशके लोगोंकी पड़तालके लिए नैतिक नियमकी कोई एक साधारण कसौटी विद्यमान नहीं है। *मनुष्यका धर्मशास्त्र और उसका अन्तःकरण भी समाजके साथ साथ उन्नति करता है।* जिन कामोंको सभ्यताकी प्रथम सीढ़ी पर वह अति उत्तम और पवित्र समझता है कुछ दिन पीछे उन्हींको वह अवज्ञाकी दृष्टि-से देखने लगता है, यद्यपि पुरानी चालें बहुत समय तक मनुष्यका

उन्नतिमें बाधा—मनुष्य प्राचीनको सहजमें ही नहीं छोड़ता।

✱ देखो अध्याय पाँचवाँ।

पिण्ड नहीं छोड़तीं। प्राचीन नवीनसे सहजहीमें नहीं बदला जाता। *इसी लिए बहुत समय पीछे तक, उन्नत अवस्थामें भी, पुरानी बातोंका अवशेष रह जाता है, यद्यपि वे एकदम खोखली और मृतप्राय हो जाती हैं और उनसे हमारा कोई लाभ नहीं होता, बल्कि वे हमारे चरित्र और हृदय पर बहुत बुरा प्रभाव डालती हैं।* हमारे खाद्याखाद्यके नियमोंके और कुछ दिनों और महीनोंके पवित्र इत्यादि समझनेके भी यही कारण हैं। इसी कारण किसी शूद्र द्वारा छुई हुई वस्तु खा लेनेको हम नरहत्यासे भी बुरा समझते हैं। इसीलिए गो-हत्या नरहत्यासे भी घृणित समझी जाती है। मुसलमानोंके वहाबी सम्प्रदायमें जना और हत्या तम्बाकू पीलेनेकी अपेक्षा साधारण दोष माने जाते हैं। साइबेरियाके समीप रहनेवाले रूसके कुछ धार्मिक सम्प्रदायोंका भी यही हाल है। वे समझते हैं कि सभी पापोंका प्रायश्चित्त हो सकता है, परन्तु तम्बाकू पी लेनेका कोई भी प्रायश्चित्त नहीं है। "जंगली जातियोंमें अपनी जातिके भीतरकी किसी कुमारीसे विवाह कर लेना, किसी मनुष्यकी हत्या करनेसे भी निषिद्ध समझा जाता है। इसी लिए हमारे यहाँ किसी स्त्रीका सतीत्वभञ्जन क्षमा किया जा सकता है, पर नीच-कुलोत्पन्ना रमणीसे विवाह करना कदापि क्षम्य नहीं है। इसीलिए विवाहका बन्धन ढीला होना उतना बुरा नहीं माना जाता जितना कि फैशनका।"* इसी लिए हम झूठ बोलनेको उतना बुरा नहीं समझते जितना कि तामचीन और एनामेलके बर्त्तनोंमें भोजन करनेको। हम झूठ बोल कर, चोरी कर, जना कर, पाखण्डी बन कर, मुकद्दमे लड़ कर, छल और धोखेसे दूसरोंका सर्वमोचन करके भी पण्डित नहीं महात्मा तक

---

* Samuel Laing-Problems of the Future, and A modern Zoroastrian P. 79. Watts, R. P. A. cheap Reprints Series.

कहला सकते हैं, समाजके उच्चतम आसन पर आरूढ़ रह सकते हैं और आदर या सम्मानके साथ देखे जा सकते हैं, पर भोजन-सम्बन्धी नियमोंको तोड़ कर कदापि नहीं, चाहे हम हज़ारों सत्कर्म ही क्यों न करते रहे हों। यथार्थ दुष्कर्मके लिए हमारे यहाँ कोई जाति और समाजसे बाहर नहीं निकाला जाता।

वंशानुक्रमके नियमों द्वारा सदाचार और सामाजिक प्रवृत्ति दृढ़ होती है।

सभी नैतिक नियमोंकी उन्नति वंशानुक्रम (heridity), परिस्थिति, (environment) तथा प्राकृतिक चुनाव (Natural Selection) के नियमों द्वारा हुई है। *इसका सबसे साधारण नमूना हमें सभी सामाजिक जानवरों —चींटी और मधुमक्खियोंसे लेकर मनुष्य तक की—उस प्रवृत्तिमें मिलेगा जो एक घोंसले तथा एक छत्ते और एक समूहके निवासियोंकी हत्याका निषेध करती है और जो सबको साधारण भलाईके हेतु काम करनेके लिए उत्तेजित करती है।* जिन जीवोंमें यह प्रवृत्ति अधिक बलवती होगी वे जीवनसंग्राममें उतने ही सफल और दीर्घजीवी होंगे और प्रत्येक पहली पीढ़ी आगन्तुक पीढ़ियोंमें पारम्परिक नियमोंके द्वारा इस प्रवृत्तिको मज़बूत करेगी। माता पितासे केवल हमें अपना रूपरंग मात्र ही नहीं प्राप्त होता, वरन गुण अवगुण और चाल ढाल भी प्राप्त होती है। *

---

* "Man Versus the State" नामी हर्बर्ट स्पेन्सरकी एक पुस्तकमें इसका एक बहुत ज्वलन्त उदाहरण दिया है। अपर हडसन पर बसे हुए एक छोटे शहरमें-जहाँ और जगहोंकी अपेक्षा अपराध और दारिद्रकी मात्र ज्यादा है—एक स्त्री रहती थी जिसका नाम मार्गेट था। यह कुलटा एक बड़ी सन्ततिकी माता हुई। शहरके कागजों और दफ्तरोंसे यह मालूम हुआ कि अनेक पगलों, सिड़ियों, उन्मत्तों, नशेबाजों मूढ़ों और वेश्याओं इत्यादिके अतिरिक्त उसकी सन्ततिमेंसे दो सौको सज़ा मिली थी।

पुनः इस प्रवृत्तिको हमारी परिस्थितिसे भी बड़ी सहायता मिलती है। हम जैसे वायुमण्डलमें और जैसे संसर्गमें रहेंगे हमारी आचारबुद्धि भी वैसी ही होगी। यह स्वयं स्पष्ट है। बल्कि ज्ञानयुक्त मनुष्योंके ऊपर वंशानुक्रमकी अपेक्षा परिस्थितिका ही अधिक प्रभाव पड़ता है। क्या हम कह सकते हैं कि हमारे बच्चोंकी आचारबुद्धि एक ही तरहकी रहेगी चाहे वे इंग्लैण्डमें पालित हों या भारतवर्षमें, अमेरिकामें या असभ्य जंगलियोंके बीच? चाहे वे साधुओंकी संगतिमें रहें या दुश्चरित्रोंकी? बुरी परिस्थितिमें नैतिक जीवन कदापि निर्वाह नहीं किया जा सकता। अच्छेसे अच्छा मनुष्य भी यदि असभ्य और जंगलियोंके मध्य रख दिया जाय, तो और किसी कारणसे न भी सही, परन्तु कमसे कम आत्मरक्षाके लिए तो उसे छल पाषण्ड इत्यादिका आश्रय ग्रहण करना ही पड़ेगा।

परिस्थितिका प्रभाव।

उपर्युक्त प्रमाणों और उदाहरणोंसे यह सिद्ध होता है कि *सदाचारकी उत्पत्ति मनुष्यके अनुभव और तजुर्बेसे हुई। हत्यासे समाजको नुकसानी होती है, मनुष्यने यह उसी प्रकार जाना जिस प्रकार उसे यह मालूम हुआ कि आदमी पानीमें डूबता है और आगमें जलता है।*

सदाचारकी उत्पत्ति मनुष्यके अनुभवसे हुई है।

मलागासी जातिके मध्य हत्या, चोरी और व्यभिचारके लिए नियम बने हैं। किसी मनुष्यके पिता-माताको कोसनेके लिए वहाँ अर्थ-दण्डकी प्रथा है। वह निष्प्रयोजन कसमें भी नहीं खाया करते। अपने नियमोंके सम्बन्धमें पूछे जानेपर उन्होंने उत्तरमें कहा कि "ये नियम उचित और सुखकारक हैं और इनके पालनेमें ही सुभीता है। यदि ये नियम न होते तो हम लोग एक साथ रह ही क्यों कर सकते

थे।" ओटाहिटन जातिके बारेमें कुक लिखता है कि "ये लोग भले और बुरे कामोंके भेदको पहचानते हैं। इनका अन्तःकरण इस पहचानमें इनकी सहायता करता है। जब कभी ये दूसरोंके प्रति ऐसा काम करते हैं जिसे स्वयं अपनी प्रति किया जाना पसन्द नहीं करते तब स्वयं अपनी निन्दा करने लगते हैं।"

यथार्थ विकास और उन्नति बौद्धिक ही है।

प्राणिशास्त्रके सभी विद्यार्थी स्वीकार करेंगे कि *यथार्थ विकास और उन्नति बौद्धिक ही है। विकासके पथ पर जीव जितना ही अधिक अग्रसर होता है उतना ही अधिक उसके काम विचार-पूर्ण होते हैं, अर्थात् उसके काम उद्देशहीन नहीं होते। दूसरे शब्दोंमें उसका ध्येय स्पष्ट होता है और वह जो कुछ करता है इसी ध्येयके साधनके लिए।* यह हो सकता है कि वह कामोंको प्रत्येक बार ज्ञानतः न करे परन्तु *उसके काम निरुद्देश नहीं होते। निम्न श्रेणीके जीवोंकी अपेक्षा उसके कामोंमें उद्देश-साधनका अधिक सामर्थ्य और क्षमता होती है। बहुतसे निम्न श्रेणीके जीवोंका शरीर-संचालन उतना ही उद्देश-हीन होता है जितना कि किसी उन्माद-पीड़ित मनुष्यका हाथ पैर पटकना।* इन्फ्यूज़ोरीयम (Infusorium) जातिके जीवाणु (Protozoa) सदा तैरते ही रहते हैं, परन्तु उनके निरन्तर गतिशील रहनेका कोई अभिप्राय नहीं होता। वे अन्य किसी जीवका पीछा करनेके लिए या अन्य किसी जीवसे बचनेके लिए नहीं तैरते रहते। उनका सदा गतिशील रहना पूर्णतः *निरुद्देश* होता है। *ज्ञानतः और स्पष्ट उद्देश पर लक्ष्य न रखकर* जब कभी तैरते तैरते वे किसी

विकासके साथ साथ जीवोंके कामोंका उद्देश और लक्ष्य स्पष्ट होता है और उनके कामोंमें उद्देश-प्राप्तिकी अधिक क्षमता होती है।

खाद्य पदार्थके समीप पहुँच जाते हैं तो उसे ग्रास कर लेते हैं और जब कभी वे स्वयं अन्य जीवोंके पास पहुँच जाते हैं तो उनके द्वारा स्वयं कवलित हो जाते हैं। इन क्षुद्र जीवोंमेंसे—जिनकी आयु अधिकसे अधिक कई घण्टोंकी होती है—ज्ञानेन्द्रियोंके एकदम अनुन्नत रहनेके कारण, सैकड़े निन्नानवे इस पूर्ण आयुको भी प्राप्त नहीं कर सकते। भोजन न प्राप्त कर सकने या अन्य जीवों द्वारा कवलित हो जानेके कारण इनकी अकालमृत्यु हो जाती है। *ध्येय और आचारमें साफ़ सम्बन्ध न होनेके कारण* यह स्पष्ट ही है कि जीवनका क़ायम रहना *अनुकूल बाह्य घटनाओं* पर ही निर्भर है। अब यदि हम जल-जीवोंहीमेंसे एक दूसरे-प्रकारके जीवों—रौटिफ़र (Rotifer)—को लें, तो हम देखेंगे कि यद्यपि ये जीव भी अपने विकासमें बहुत पीछे हैं, तथापि पूर्वोक्त जीवोंकी अपेक्षा कहीं अधिक उन्नति कर चुके हैं। इनके शरीरके पिछले भागमें रोयें होते हैं जो पहियेके सदृश घूमते हैं और जिनके द्वारा ये अन्य जीवोंको पकड़कर अपने उदरस्थ कर लेते हैं। अपनी दुमके द्वारा ये अन्य-वस्तुओंमें लटक जा सकते हैं तथा अपने अवयवों और समस्त शरीरको सिकोड़ कर विपदसे अपनी रक्षा भी करते हैं। इन जीवोंमें *ज्ञानेन्द्रियों*की किंचित् उन्नति हो चुकी है। *उद्देश और कार्य्यके मध्य एक प्रकारसे कुछ सम्बन्धके स्थापित हो जानेके कारण* इन जीवोंका जीवन पूर्वोक्त जीवोंके सदृश *पूर्णतः बाह्य घटनाओं पर निर्भर नहीं है*, क्योंकि ये जीव *किंचित् ज्ञानतः* अपना भोजन पकड़ते हैं और आपत्तियोंसे अपनी रक्षा करते हैं, यद्यपि इनकी यह शक्ति अभी बहुत ही न्यून है। परन्तु इन जीवों और पूर्वोक्त जीवोंके बीचका अन्तर स्पष्ट है। इसीलिए इनकी आयु भी अपेक्षाकृत बड़ी होती है। इस

अन्तरको एक और उदाहरणके द्वारा स्पष्ट करना अच्छा होगा। हम मोलस्का (Mollusca) जातिकी दो उपजातियों—असीडीयन (Ascidian) और सेफ़ोलोपोडा (Cephalopoda)—की तुलना करें। इनमेंसे पहले जीवोंका जीवन पूर्णतः बाह्य घटनाओंके अधीन है। पानीका झकोरा इन्हें सदा इधर उधर लिये फिरता है। इनका जलमें रहना भी इनकी इच्छाके ऊपर निर्भर नहीं है। हो सकता है कि लहरों द्वारा ये जलमें ही इधर उधर घुमाये जाते रहें, परन्तु यह भी सम्भव है कि इन ही लहरों द्वारा जलसे एकदम निर्वासित भी हो जायँ और किनारेपर अपनी जान खोयें। अन्य जीवोंसे ये अपनी रक्षा भी नहीं कर सकते और *दैवयोगसे ही* अन्य समुद्रीय जीवोंके उदरस्थ होनेसे बचते हैं। अतएव यह स्पष्ट ही है कि इनके कामोंमें उद्देशसाधनका सामर्थ्य नहीं है। परन्तु सफ़ोलोपोडा जातिके जीव उनसे बहुत कुछ उन्नत हैं। ये *ज्ञानतः* शिकार पकड़ते हैं तथा शत्रुओंसे अपनी रक्षा भी कर सकते हैं। रीढ-युक्त (Vertiberate) जीवोंकी तुलनासे भी यही बातें दृष्टिगोचर होती हैं। मछली खोराककी तलाशमें जलमें इधर उधर घूमती रहती है और अपनी दृक्-शक्ति या घ्राणशक्तिके द्वारा बहुत नजदीकसे ही खोराकका पता लगा सकती है तथा किसी बड़ी मछलीके समीप आते ही बड़े वेगसे भागती है। यद्यपि मछलीने कार्य्य और उद्देशके बीच सम्बन्ध स्थापित कर लिया है तथापि यह सम्बन्ध अभीतक घनिष्ट नहीं हुआ है। यह सम्बन्ध बहुत सधारण दर्जेका है। परन्तु जब हम एक बहुत उन्नत जीवको लेते हैं तो देखते हैं कि उसमें कार्य्य और उद्देशके बीचका यह सम्बन्ध बहुत दृढ़ हो गया है। हाथी अपनी घ्राणशक्ति या दृक्-शक्तिके द्वारा बहुत दूरसे ही खोराकका पता लगा लेता

है। भागनेकी ज़रूरत होने पर वह बहुत तेज़ीसे भाग भी सकता है। पुनः रक्षाके लिए उसे हर समय भागनेकी ज़रूरत भी नहीं रहती है। वह दाँत, सूँड़ और भारी पैरोंके द्वारा शत्रुओं पर हमला भी कर सकता है और उनसे प्राण भी बचा सकता है। उसकी बुद्धिका विकास बहुत कुछ हो चुका है। वह सारे कामोंको ज्ञानपूर्वक करता है। सरस फलोंसे लदे हुए वृक्षोंकी डालोंको तोड़ता है तथा खाद्य और अखाद्य वनस्पतियोंको पहचानता है, ठंढकके लिए जलमें घुसता है, सूँड़से अपने शरीर पर जल डालता है, वृक्षकी डाल तोड़कर उससे पंखेका काम लेता है—उससे मक्खियोंको भगाता है और आवाज़ देकर अपने झुण्डको विपदकी सूचना भी देता है। अतएव यह निर्विवाद है कि हाथीका जीवन बाह्य घटनाओं पर औरोंकी अपेक्षा कहीं कम अवलम्बित है। अब यदि हम मनुष्यके आचरणको देखें तो यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि *मनुष्यके कार्य्य और उद्देशमें घनिष्ठतम सम्बन्ध स्थापित हो गया है।* मछलीके इस क्षणके भ्रमणका उसके पहलेके भ्रमणसे कोई सरोकार नहीं है और न उसके आजके भ्रमणका भविष्यके भ्रमणसे कोई सरोकार होगा। परन्तु असभ्यसे असभ्य मनुष्यके आचरणमें भी *पूर्वापरका सम्बन्ध बहुत कुछ स्थापित हो गया है।* वह अपने अनुभवोंको याद रखता है और उनसे काम लेता है। युद्धमें कष्ट होने या हार होनेसे वह अस्त्रोंका आविष्कार करता है, जलसे पार होनेकी असुविधाओंको स्मरण रख कर नौकायें बनाता है तथा शीत और गर्मीसे कष्ट प्राप्त करनेके कारण झोपड़ियाँ बनाता है। उसके कामोंमें *निश्चितता, विवेचना और बुद्धिमत्ताका बहुत कुछ समावेश हो चुका है। इसी लिए जीवनसंग्राममें मनुष्यको सबसे अधिक शिष्टता प्राप्त हुई है।*

नीची श्रेणी और ऊँची श्रेणीके जीवोंकी तुलनासे ऊपर जो निष्कर्ष निकला है वही निष्कर्ष मनुष्योंकी **सभ्य और असभ्य जातियोंकी तुलनासे** भी निकलता है। यदि भोजनहीके सम्बन्धमें विचार किया जाय तो विदित होगा कि जंगली मनुष्यका जीवन सभ्य मनुष्यकी अपेक्षा बाह्य घटनाओं पर कहीं अधिक निर्भर है। जंगली मनुष्यको शिकार बहुत मुश्किलसे प्राप्त होता है। वह नित्य, नियमित रूपसे ज़रूरतके समय भोजन नहीं प्राप्त कर सकता। कल भोजन मिलेगा या नहीं, इसे वह निश्चित रूपसे नहीं कह सकता। अतएव भोजन मिलने पर वह ज़रूरतसे कहीं अधिक परिमाणमें भोजन कर लेता है, क्योंकि कलका तो कोई ठिकाना ही नहीं है; हो सकता है कि कई दिनों तक लगातार उपवास करना पड़े। याकूट जातिके एक पाँच वर्षके बच्चेके सम्बन्धमें लिखा है कि वह तीन मोमबत्तियाँ, कई सेर मक्खन और पीले साबुनका एक बड़ा टुकड़ा फ़ौरन भक्षण कर गया! याकूट और टॉगीज़ जातिके वयःप्राप्त लोग प्रतिदिन बीस सेरसे भी अधिक मांस चट कर डालते हैं! परन्तु सभ्य मनुष्य नियमित रूपसे और आवश्यकताके अनुसार अपेक्षातः कहीं अल्प परिमाणमें भोजन करता है। उसकी खाद्य वस्तुओंका चुनाव भी उत्तम होता है। अपने भोजनके लिए वह सम्यक् रूपसे बाह्य घटनाओंके अधीन नहीं है। वह कृषिविद्या जानता है और प्राप्त हुए भोजनको भविष्यके लिए भी संचित रख सकता है। उसके भोजन तरह तरहके, सुस्वादु और स्वच्छ होते हैं। उसके वस्त्र जल वायुके अनुकूल होते हैं और वह ज़रूरतके अनुसार अपने वस्त्र बदलता रहता है। इसी प्रकार सभ्य और जंगली मनुष्योंके घरोंमें भी अन्तर है। भेद केवल मकानकी सुन्दरताहीमें नहीं है, वरन् सभ्य मनुष्यके भवन जल वायु और ज़रूरतोंके अनुकूल होते हैं। सभ्य

और असभ्य मनुष्यके दैनिक जीवन और काम धन्धों पर दृष्टिपात करनेसे तो आकाश पातालका अन्तर दीख पड़ता है। क्षणमात्रके लिए भी यदि हम व्यवसाय, राजनीति या सभ्य जीवनकी अन्य जटिलताओंको स्मरण करेंगे तो कहना पड़ेगा कि *सभ्य मनुष्यके कार्य्य और उद्देशमें घनिष्ठतम सम्बन्ध स्थापित हो गया है*। दूसरे शब्दोंमें सभ्य मनुष्यके कार्यों द्वारा कहीं अधिक उद्देशकी प्राप्त होती है और वह किसी कामको निष्प्रयोजन नहीं करता। अन्य जीवोंकी अपेक्षा *बाह्य जगतसे सभ्य मनुष्यका बहुत कुछ सम्बन्ध-विच्छेद हो चुका है। मनुष्य सोलह आने बाह्य जगतकी घटनाओंके अधीन नहीं है*। **वंशवृद्धि या समाज-रक्षाके** सम्बन्धमें भी विचार करनेसे यही स्पष्ट होता है कि जीवकी उन्नतिके साथ साथ उसकी यह शक्ति भी बढ़ती है। मछलियाँ करोड़ों अण्डे देती हैं जिन्हें अन्य क्षुधातुर मछलियाँ बड़े वेगसे भक्षण करजाती हैं। इनमेंसे कुछ अण्डोंके बचने ही पर मीन-वंशका जारी रहना सम्भव है। यहाँ कार्य्य और उद्देशमें एकदम समायोग नहीं स्थापित हुआ है। पर इन मछलियोंसे वे मछलियाँ कहीं श्रेष्ठ हैं जो अपने अण्डकोपमें ही अपने अण्डोंको से लेती हैं या जिनके मध्य नर अण्डोंकी रक्षा करता है। यहाँ कार्य्य और उद्देशके मध्य किंचित् समायोग स्पष्ट दीख पड़ता है। इनके बाद हम देखते हैं कि पक्षी घोंसले बनाते और अण्डे सेते हैं। इस विषयकी विवेचना सातवें अध्यायमें की जा चुकी है, इस लिए अब यहाँ लिखनेकी जरूरत नहीं जान पड़ती।

आचार और उद्देशके समायोगका ही नाम सदाचार है।

सदाचारके द्वारा ही मनुष्यने इतनी उन्नति की है। सदाचारके ऊपर ही सभी उन्नति निर्भर है और सदाचार-नियमोंके या दूसरे शब्दोंमें जीवन-नियमोंके पालनसे ही मनुष्य उन्नति कर सकता है। सदाचारके द्वारा ही कार्य्य और उद्देशमें समायोग स्थापित होता है। वैज्ञानिक *दृष्टिसे जिस आचारका लक्ष्य और उद्देश स्पष्ट हो तथा*

जिसके द्वारा उद्देश-प्राप्तिकी सबसे अधिक सम्भावना हो वही सदाचार है। एक सच्चरित्र आदमीका समस्त जीवन नैयमिक रूपसे संचालित होता है। *उसके किसी काममें उच्छृंखलता नहीं होती।* उसके सभी काम *शृंखलाबद्ध और सूत्र-ग्रथित* होते हैं *और उनमें विधान, व्यवस्था और नैयमिकताकी बू आती है,* यहाँतक कि किसी दी हुई अवस्थामें हम उसके कामोंको *अग्रिम बतला सकते हैं। उसके आचरणोंमें पूर्वापरका सम्बन्ध है।* किसी साधारण आदमीने जो सदा सत्य पथ पर नहीं चलता, यदि किसीसे रुपये उधार लिये हैं तो हम नहीं कह सकते कि वह रुपये वापस करेगा या नहीं, या उन रुपयोंको वसूल करनेके लिए नालिश करनेकी आवश्यकता होगी या नहीं। यदि उसने किसीसे स्थान-विशेष या समय-विशेष पर उपस्थित होनेका वादा किया है तो हम नहीं कह सकते कि वह अपने वादेको पूरा करेगा या नहीं। हम नही कह सकते कि किसी अवसर पर वह सत्य बोलेगा या झूठ। परन्तु सच्चरित्र आदमीके सभी काम नैयमिक होते हैं। उसके कामोंमें पूर्वापरका सम्बन्ध है, इसलिए अवस्था-विशेषमें हम उसके कामोंको अग्रिम बतला दे सकते हैं। एक पूर्णतया सच्चरित्र आदमीके कारोबारमें *गणितविद्याके अंकोंकीसी यथार्थता विद्यमान* रहती है। वह अपने वादोंको सम्यक् रूपसे पूरा करता है। यदि उसने किसीके साथ कोई समझौता किया है तो वह उसे अक्षर अक्षर पूरा करता है। यदि उसने किसीको कोई वचन दिया है तो वह उसका रत्ती रत्ती पालन करता है और यदि उसने कारोबारके सम्बन्धमें किसी तरहका क़ौल क़रार किया है तो वह हर तरहसे उसका पालन करता है। वह जब कभी बोलता है तो सत्य ही बोलता है। यदि उसने विवाह किया है तो वह पिता और पतिके सभी कर्तव्योंको पालन करता है। एक शब्दमें उसके सभी काम

व्यूहके मध्य सिपाहियोंके सदृश कठिन अनुशासनके अन्दर रहते हैं। असंयमित या विचार-हीन आचरणका ही नाम दुराचार है।

विकासके साथ साथ जीवोंके आचरणमें विविधताका भी समावेश होता है।

एक बात और है। *विकासके साथ जीवोंके आचरण केवल संयमित और नियमित ही नहीं होते, वरन् विभिन्न भी होते हैं। उनमें नानात्व और बहुविधता आ जाती है।* ऊपर असभ्य मनुष्यके जीवनकी एकरूपता और सभ्य मनुष्यके जीवनकी विविधताके सम्बन्धमें अनेक बातें कही जा चुकी हैं। यह विविधता सभ्य मनुष्यके जीवनमें पराकाष्ठा पर पहुँच गई है, क्योंकि उसका सुख दु:ख, मंगल अमंगल, समाजके साथ आबद्ध है। वह केवल ऐसे ही कामोंको नही करता जिनका सरोकार उसके वैयक्तिक जीवनसे हो, वरन् ऐसे कामोंको भी करता है जिससे समस्त समाज या समस्त मानव जातिका भी लगाव होता है। यह स्पष्ट ही है कि उस आदमीके सभी आचरण, जो केवल अपनी ही वयक्तिक आवश्यकताओंको पूरा करता है, सदा एक ही तरहके होंगे। परन्तु उस आदमीके आचरण, जो केवल अपनी ही नहीं वरन् अपनी स्त्री और बच्चोंकी भी फिक्र रखता है, स्वभावत: भिन्न होंगे। पुन: एक देश-भक्तके आचरणमें उक्त मनुष्यके आचरणसे भी अधिक विविधता पाई जायगी। यदि अपने वैयक्तिक हितके साथ साथ मनुष्य अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व तथा अपने नागरिक उत्तरदायित्वको भी स्मरण रक्खेगा तो स्वभावत: उसे बहुत तरहके काम करने पड़ेंगे। उसे शिक्षासम्बन्धी, राजनीति-सम्बन्धी, और व्यवसायसम्बन्धी इत्यादि सभी बातोंमें भाग लेना पड़ेगा। संक्षेपमें विकासके साथ साथ जीवनके काम केवल संयमित और नियमित ही नहीं होते, वरन् *जटिल और विभिन्न* भी हो जाते हैं। इसीलिए ऊपर कहा गया है कि यथार्थ उन्नति

बौद्धिक ही है तथा सदाचारकी उत्पत्ति मनुष्यके अनुभव और तजुर्बेसे हुई है। इसीलिए *बुद्धिकी महत्ता पर जोर देना वैज्ञानिक नीति-शास्त्रका एक प्रधान काम है। जिस कामको प्राणिसंसार अज्ञानपूर्वक, विना ध्येयको स्मरण रक्खे, प्रायः निरुद्देशताके साथ—या ज्ञानके धीमे प्रकाशके द्वारा करता आया है, मनुष्यके लिए उचित है कि वह उस कामको पूर्ण साहस, उत्साह, और वैज्ञानिक कौशलके साथ सम्पन्न करे।* ज्ञानसे युक्त होने पर वह अँधेरेमें न टटोलता फिरे। उद्देशको जान लेने पर वह बुद्धि-ग्राह्य और उपयुक्त साधनोंसे उसके प्राप्त करनेकी चेष्टा करे। *जीवनके इतिहास पर नजर डालनेसे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि यथार्थ सदाचार भी यही है।*

हमारे अधिकार और कर्त्तव्य-के भावोंमें उलट फेर।

अधिकार और कर्त्तव्य एक ही सिक्केके उलटे और सीधे पृष्ठ हैं। प्रथम प्रथम बल और अधिकारमें कोई भेद न था। जो बलवान् था वही अधिकारी भी था। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की कहावत चरितार्थ होती थी। धीर धीरे यह सिलसिला परिवर्त्तित होने लगा। अन्तमें ज्ञान, सहृदयता, सहानुभूति, दया एवं इन्साफ़के भावोंके बढ़नेसे अधिकारकी स्थिति केवल बल पर न रही, वरन् दुर्बलोंकी दुर्बलता पर, और आश्रयहीनोंकी आश्रयहीनता पर हो गई। हम यह समझने लगे—यद्यपि अबतक हम लोगोंने इसे पूर्णरूपसे हृदयंगम नहीं किया है—कि जो सबसे अधिक बलवान् हैं, जिनका सबसे अधिक अधिकार है उन पर सबसे अधिक कर्त्तव्यका बोझ है। पहले जिनके ऊपर हम जुल्म करते थे अब उनका अधिकार मानने लगे हैं। इसके कुछ उदाहरण देख लीजिए। *

---

* इस विषयकी विशेष आलोचना करना चाहें तो पाठक केरिडनकी The Darkness, the Dawn and the Day नामक पुस्तकको देख सकते हैं।

कुछ उदाहरण–१ स्त्रियोंके साथ व्यवहार।

सबसे पहले आप स्त्री पुरुषके भेदको लें। यह भेद सभी ऊँचे जानवरोंमें विद्यमान है। पुरुष बल और पराक्रमसे युक्त है, स्त्री अबला, कोमल और दुर्बल है। प्राचीन पुरुषने स्त्रीवर्ग पर उसकी कमजोरीके कारण अपना साधारण और स्वाभाविक आधिपत्य जमाया था। वह उनको यदि लड़ाईमें गिरफ्तार करता तो जीवनपर्य्यन्त अपनी लौंडी बना कर रखता था। पुराने ज़मानेमें एक परिवार और दूसरे परिवारके बीच बहुतसी लड़ाइयोंका उद्देश केवल स्त्री-प्राप्ति ही होता था। इससे उन्हें दोहरा फ़ायदा होता था। प्रथम तो उनकी संख्या बढ़ती और दूसरे उनके द्वारा पैदा हुए बच्चोंसे उनके परिवारका गौरव बढ़ता। प्राचीन रोमके इतिहासमें स्त्रियोंके इस प्रकार गिरफ्तार किये जानेके अनेकों उदाहरण हैं। प्राचीन रोमकी जनसंख्या इसी प्रकार बढ़ी थी। स्त्री-हरण तथा स्वयम्वरसे स्त्रियोंके ज़बरदस्ती छीन लानेके अनेकों उदाहरण हमारे इतिहासमें भी विद्यमान हैं। पैशाच, आसुर और गान्धर्व विवाह हमारे यहाँ भी प्रचलित थे। यह उस समयकी बात है जब विवाहकी प्रथा उन्नत और पवित्र नहीं हुई थी। स्त्रियाँ उस समय सम्पूर्णतः अधिकारविहीन थीं। पुरुषवर्गके जूठेसे उनकी उदरपूर्ति होती थी। निजजनित संतति पर भी उन्हें कोई अधिकार नहीं था। घरमें उनका स्थान गाय भैंस इत्यादि पालतू जानवरोंसे ऊँचा नहीं था। इन जानवरोंके समान ही वे पुरुषवर्गकी सम्पत्ति थीं। उन्नत समाजमें इन बातोंका अवशेष अब भी बहुत कुछ मिलता है।* ज़रा सोचनेसे

---

* मनुस्मृतिके इस प्रसिद्ध श्लोकको स्मरण कीजिए–

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्रीस्वातंत्र्यमर्हति॥–मनु० ९, ३

आपको अनेकों उदाहरण मिल सकेंगे। असभ्य जातियोंके इतिहासमें आपको ऐसे अनेकानेक उदाहरण मिलेंगे जहाँ पुरुषोंके मरनेके बाद धन सम्पत्तिके साथ साथ उनकी स्त्रियाँ भी उनके साथ जीती गाड़ दी गई थीं या बलिदान कर दी गई थीं। स्त्रियोंके सम्बन्धमें एक समय मनुष्यके विचार कहाँ तक नीचे और अश्लील थे यह आपको केवल इन दो शब्दोंके अर्थ पर ध्यान देनेहीसे अच्छी तरह स्पष्ट हो जायगा। १—'ज़न' यह फ़ारसीका शब्द है। 'ज़द' मस्दरसे 'अमर' है। अर्थ है मार। यानी सिवाय ताड़न प्रताड़नके स्त्रियोंके साथ और कोई उत्तम व्यवहार मुनासिब नहीं। २—'औरत' इस अरबीके शब्दका अर्थ है गुह्यस्थान। अर्थात् स्त्रियाँ केवल अपने गुह्य स्थानके नामसे पुकारी जाती थीं।

चियेवयन, कूकी, टूपी, पटैगोनियन तथा अन्य बहुतसी जातियोंमें भारी काम धंदा स्त्रियोंहीके मत्थे रहता है। कष्ट-साध्य कामोंको स्त्रियाँ ही करती हैं। पुरुषोंका काम लड़ने और शिकार करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। आफ्रिकामें भी ऐसे ही प्रमाण मिलते हैं। वहाँ स्त्रियाँ ही घर बनाती हैं, खेत जोतती हैं और अनाज उपजाती हैं। जलावन और पानी लाना, तथा भोजन पकाना भी उनहीके मत्थे है। कठिनसे कठिन परिश्रम-साध्य कामोंमें भी पुरुष स्त्रियोंकी मदद नहीं करते। एक काफ़िर पुरुषने एक बार कहा था कि "मेरी स्त्री मेरे बैलके तुल्य है, अतएव उसे बैलहीके सदृश कठिन परिश्रम करना पड़ेगा।" अमारा जातिके बारेमें ऐण्डरसनने लिखा है कि इस जातिके पुरुषवर्ग एकदम आलसी होते हैं। जो काम स्त्रियाँ नहीं करती हैं वह गुलामोंके सुपुर्द किया जाता है। कौंगोपर बसनेवाली जातियोंके बारेमें लिखा है कि कृषिकार्य्य सोलहों आने स्त्रियों और गुलामोंके जिम्मे ही रहता है। राजाकी

पुत्रियाँ और पुत्र-वधुयें भी खेतीका काम करती हैं। पेरुविन जातिके सम्बन्धमें लिखा है कि परिश्रम करना स्त्रियोंहीका काम है। जमीन जोतना, बीज बोना, फ़सल काटना यह सब स्त्रियोंहीका काम है। उनके पति घरमें बैठकर, सीने पिरोने, बेल बूटे काढ़ने, कपड़े बुनने तथा अन्य स्त्रियोचित कामोंको करते रहते हैं। लोकमतके अनुसार कठिनसे कठिन कामोंमें—अत्यन्त दुःखमें भी—पुरुषवर्ग स्त्रियोंकी सहायता नहीं कर सकते। ऐसा करनेसे उनकी बड़ी बदनामी होती है। डकोटा जातिके बारेमें लिखा है कि "लड़ाईके समय—वाग्युद्धमें—एक स्त्री दूसरी स्त्रीसे कहती है—तुच्छ स्त्री, मैंने तेरे पतिको आग लगानेके लिए झोपड़ीमें लकड़ी ले जाते हुए देखा है। तू कहाँ थी जो तेरे पतिको स्त्री बनना पड़ा!" ये जातियाँ इस व्यंगको सबसे बुरी गाली अनुमान करती हैं। अब यदि हम वर्तमान समयमें अपने समाजके मध्य स्त्रियोंके स्थानको स्मरण करेंगे तथा इस सम्बन्धमें इन जंगलियोंके विचारोंसे अपने विचारोंकी तुलना करेंगे तो हमें अपने और इन जंगलियोंके मध्य बहुत कुछ सादृश्य दीख पड़ेगा। परन्तु यहाँ पर हम इस विषयके अन्दर प्रवेश करना आवश्यक नहीं समझते। एस्किमो जातिके मध्य स्त्रियाँ बहुत भारी भारी पत्थर ढोते हुए देखी गई थीं। कुछ पत्थर इतने भारी थे कि जिनसे उनके शरीरतकके टेढ़े होनेकी सम्भावना थी। परन्तु पुरुषवर्ग समीपमें ही खड़े खड़े चुपचाप उदासीनताके साथ तमाशा देख रहा था और इनकी सहायतामें वह एक उँगली तक हिलाना निष्प्रयोजन समझता था। अपनी स्त्रीको मार कर खाजानेका फ़िजियन मनुष्योंको पूरा अख्तियार है। फ्यूजियनों और आस्ट्रेलियनोंके मध्य, स्त्रियाँ भोजनके लिए बध की जाती हैं। इन उदाहरणोंके पश्चात् स्त्रियोंके गाय बैलके

सदृश खरीदे और बेचे जानेकी तो बात ही चलाना व्यर्थ है। यह प्रथा अनेक जातियों और देशोंमें प्रचलित है।

परन्तु सौभाग्यसे मनुष्यमें वे भाव विद्यमान थे जो दया, सहृदयता और इन्साफ़के स्वरूपमें प्रकाशित होते हैं। बुद्धि ज्ञान एवं अनुमानके बढ़ने पर, स्त्रियोंकी दुर्बलता, उनकी तकलीफ़ें और उन पर किये गये अत्याचारोंको देख कर पुरुषोंके हृदयमें एक अदृश्य यन्त्रणा हुई, दया और सहानुभूतिका संचार हुआ, जिससे उन्होंने अपने कठोर व्यवहारको कोमल बनाया। यथासमय यह भाव और भी उन्नत हो गया, यहाँ तक कि आज स्त्रियोंके अधिकार और पुरुषोंके कर्तव्यकी घोषणा उच्च स्वरसे हो रही है। परन्तु कुछ ही समय पहले केवल पुरुषोंहीके अधिकारका डंका पिट रहा था। अधिकार और कर्तव्यका यह उलट फेर अभीतक समाप्त नहीं हुआ है। हम अभीतक स्त्रियोंके साथ हार्दिक सहानुभूति नहीं रखते और न उनका यथार्थ सम्मान ही करते हैं, तौभी पहलेकी अपेक्षा उनका भाग्य एकदम पलट गया है। निःसंदेह एक युगान्तरसा प्रतीत होता है।

२ पिता-पुत्रका सम्बन्ध।

दूसरा उदाहरण पितापुत्रके सम्बन्धका है। प्राचीन असभ्यावस्थामें पिता पुत्रसे अच्छा भोजन करता था। पुत्रपौत्रोंपर पिताको स्वाभाविक अधिकार प्राप्त था। पिता शासन-कर्त्ता और पुत्रवर्ग शासित होते थे। वह आज्ञा देता था और वे उसे पालन करते थे।वह राजा और हाकिम,पुत्रवर्ग उसकी रियाया—उसकी प्रजा। प्राचीन समयका राजा खानदानका सरदार, पिता या पूर्वज ही हुआ करता था। राजनीतिसे यह निर्विवाद सिद्ध है कि राज्य या शासनपद्धतिका अंकुर यही था। यहाँ भी वही युगान्तर हुआ है जो हम पहले देख चुके हैं। स्थानाभावके कारण मैं इस

पर सविस्तर विचार नहीं करना चाहता। Fustel De Coulanqes की The Ancient City नामक पुस्तकमें प्राचीन ग्रीस और रोममें पुत्र पर पिताको क्या क्या अधिकार प्राप्त थे, उनकी पूरी सूची दी है। पाठकवर्ग चाहें तो उसे देख सकते हैं। रोमनसमाजमें पिता पुत्र या पुत्रियोंको प्राणदण्ड तक दे सकता था। यही बात प्राचीन यहूदी समाजमें भी थी। बाइबुलके ओल्ड टेसटामेण्टसे भी यही बातें टपकती हैं। स्पेन्सर कहता है * कि चीनमें स्त्रीके लिए अपने पति पर कोई अभियोग लगाना अक्षमणीय दोष है और पिताकी आज्ञा भंग करना वैसा ही घोर पातक समझा जाता है जैसा कि हत्या करना। प्राचीन समयमें पिता पुत्रका क्या सम्बन्ध था तथा पिता पुत्रके साथ क्या व्यवहार रखते थे, इसके कुछ प्रमाण हमें जंगली जातियोंसे भी प्राप्त होते हैं। फिउजिअन और निउगैनाकी जातियाँ अपने बच्चोंको अक्सर दूसरी जातियोंके हाथ बेच डालती हैं। आस्ट्रेलियन अपने बीमार बच्चोंको निःसहाय छोड़ देते हैं। अक्सर बच्चोंकी चर्बी और मांसको वे अपनी वंसियोंमें गूँथते हैं।

बुशमैन लोग अपने बच्चोंको बिना किसी अनुताप या पश्चात्तापके मार डालते हैं। हौटेण्टौट लोग अकसर अपने बच्चोंको जीवित गाड़ देते हैं। प्राचीन समयमें समग्र बच्चोंकी हत्या होती थी। प्राचीन यूनान और रोमकी बातें तो मशहूर ही हैं। टयूटन और केल्ट जातियाँ भी ऐसा ही करती थीं। उस युगके लिए बच्चोंका बेचा और खरीदा जाना साधारण बात था। प्रायः सभी असभ्य जातियोंमें यह प्रथा अद्यपर्य्यन्त प्रचलित है। बाइबुलके पूर्वभागसे विदित होता है कि यह प्रथा प्राचीन यहूदी जातिमें भी पूरे तौरसे प्रचलित थी। गरज यह कि उस समय पुत्रोंको कोई अधिकार न थे। प्राचीन रोमका पेट्रिया पोटेस्टास (Patria Potes-

tas कुलपतिका अधिकार) मशहूर ही है। वहाँ पुत्र पिताकी आज्ञा या इच्छाके विना विवाह तक नही कर सकता था और न वह कानूनन किसी सम्पत्तिका स्वामी हो सकता था *। विप्लवके पूर्व तक आधुनिक फ्रांसमें भी पुत्र पुत्रियोंके साथ गुलामोंका सा व्यवहार किया जाता था। क्रुद्ध हो जानेपर पिता अपने वय:प्राप्त पुत्रोंको भी कारागार भेज सकता था और अपनी पुत्रियोंको बलात् स्त्रियोंके मठोंमें कैद कर सकता था। अर्थात् उन्हें अधिकार था कि वे अपनी पुत्रियोंको सांसारिक सुखोंसे वंचित रख कर उन्हें आजन्मके लिए जोगिन बना दें।

पुत्र पुत्रियोंके प्रति पितावर्गके कठोर आचरणोंके कुछ उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं। उनके साथ ही मातापिताके प्रति पुत्रोंके कठोर आचरणके भी बहुतसे उदाहरण प्राप्त होते हैं। बूढ़े माता-पिताको मार डालने या जीवित गाड़ दिये जानेके सम्बन्धमें हम पहले ही कह चुके हैं। फिजीमें लड़कोंको प्रथम पाठ यही सिखलाया जाता है कि वे अपनी माताओंको पीटा करें। हैटेण्टॉट जातिके बालक अपनी माताओंको बड़े बड़े डण्डोंसे पीटा करते हैं और इस तरह अपनी माताओंके पीटनेको वे अपनी मानरक्षा अनुमान करते हैं। इसे वह पुरुषार्थ और साहसका काम समझते हैं। अपनी माताके द्वारा कुछ ताड़न प्रताड़न होनेपर जुलू जातिके बालकको अपनी माताके मार डालनेतकका

---

* अपने भारतीय समाजकी हालत जाननेके लिए मनुस्मृतिका यही श्लोक पर्य्याप्त होगा:—

भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाऽधनाः स्मृताः।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम्॥ —मनु ८, ४१६।

अर्थात् मनुके अनुसार स्त्री पुत्र भी गुलामों और अन्य वस्तुओंके सदृश कुल-पतिकी सम्पत्ति हैं। उन्हें स्वयं कोई स्वत्व प्राप्त नहीं है, वे किसी सम्पत्तिके स्वामी नहीं हो सकते। उनकी कुल-सम्पत्ति कुलपतिकी ही सम्पत्ति है।

जातिमें अपनी मातासे क्रुद्ध हो जानेपर एक पुत्र यह कहते हुए सुना गया था—"मेरी माँ बहुत बकती है। वह जबतक जीवित है, तब तक मुझे जरा भी चैन नहीं मिल सकता। मैं उसे अवश्य बेच डालूँगा—चाहे मुझे पाँच रुपयेसे अधिक या एक घण्टे-के अतिरिक्त और कुछ भी न मिले।" वे केवल ऐसा कहते ही नहीं, वरन् करते भी हैं। माताओंके साथ पुत्रोंका यह व्यवहार तो समझमें भी आ सकता है, क्योंकि असभ्य समाजमें स्त्रियोंका स्थान पशुओं और गुलामोंसे किसी भी प्रकार ऊँचा नहीं है; परन्तु असभ्य समाजमें पिताके साथ भी पुत्रोंका वर्ताव अच्छा नहीं दीख पड़ता। वधून जातिके मध्य नित्य प्रति ही वयःप्राप्त पुत्रोंका पिताओंके साथ झगड़ा हुआ करता है। पूर्व आफ्रिकाकी जंगली जातियोंके बारेमें वर्टन कहता है कि शैशवावस्थाके समाप्त हो जाते ही पिता और पुत्र परस्पर के शत्रु हो जाते हैं। निष्कर्ष यही है कि मनुष्यके इतिहासमें किसी समय माता-पिता और सन्तानोंके मध्यका सम्बन्ध किसी भी प्रकार पशुओंसे उन्नत न था।

अब अधिक उदाहरण देनेका स्थान नहीं है। पाठकवर्ग यदि विचारेंगे तो नैतिक बुद्धिके इस प्रकार पलटा खानेके उन्हें दैनिक जीवनमें ही अनेकों उदाहरण मिल जावेंगे। इस प्रकार पहले बड़े छोटोंके ऊपर, धनवान् धनहीनोंके ऊपर, मालिक भृत्योंके ऊपर, उच्चकुलोत्पन्न नीचे कुल वालों पर, और ब्राह्मण अन्त्यज जातियों पर अपना साधारण आधिपत्य मानते थे; परन्तु उपर्युक्त भावोंके प्रभावसे यहाँ भी हेर फेर उपस्थित हुआ है और इससे हम भावी युगमें बल पराक्रम और असमानताजनित अन्य सभी अनुचित अधिकारोंके मिट जानेकी प्रतीक्षा कर सकते हैं।

सारांश यह है कि मनुष्य अकेले स्वेच्छाचारी स्वार्थपूर्ण स्वतंत्र जन्तुसे धीरे धीरे एक सहृदय और सामाजिक जानवर बन रहा है। एकान्तवासीसे वह सहवासीमें परिवर्तित हो रहा है। यह परिवर्तन सम्पूर्णताकी ओर जितना ही अग्रसर होगा उतना ही मनुष्यका सामाजिक स्वभाव, उसकी सहृदयता और सहयोगी शक्तियाँ हमेशा इस्तेमाल किये जानेके कारण मजबूत होती जायँगी और उसका स्वतंत्र स्वार्थपूर्ण स्वभाव काममें नहीं लाये जानेके कारण लुप्त होता जायगा। परन्तु ये कुप्रवृत्तियाँ अभीतक पूर्णरूपसे जीवित हैं और कौन कह सकता है कि मनुष्य यदि चेष्टा और सुधार द्वारा इन्हें न उखाड़ फेंके तो और कितने दिन तक जीवित रहेंगी।

मनुष्यने अपने स्वेच्छाचारी और स्वार्थपूर्ण स्वभावको अब भी सर्वथा नहीं छोड़ दिया है।

बहुत उन्नतसे उन्नत जातियोंके बारेमें भी हम यह कदापि नहीं कह सकते कि उन्होंने अपने प्राचीन स्वतंत्र, असामाजिक, स्वार्थपूर्ण स्वभावको एकदम परित्याग कर डाला है। हमारे यहाँ चिकित्सालय, अनाथालय, विद्यालय, आदि भले ही स्थापित हों और मातृपितृ-हीन बच्चों, दुर्बलों, असमर्थों, निःसहायोंके पालन पोषणका भले ही कुछ प्रबन्ध हो, परन्तु युद्धक्षेत्रका भयंकर चित्र अभी तक हमारी आँखोंके सामने नाचा करता है। हम अभीतक देखते हैं कि निर्दयतामें मनुष्य पशुओंसे भी कहाँ तक अधिक बढ़ सकता है। हम देखते हैं कि अपनी बुद्धि और ज्ञानके द्वारा उसने हिंसाके क्या क्या यन्त्र निकाले हैं। हम देखते हैं कि अपनी हिंसक और लोभी प्रवृत्तियोंके छिपानेके लिए उसने 'स्वदेशप्रेम' इत्यादि कैसे कैसे अनोखे शब्दोंका आविष्कार कर रक्खा है। हम अबतक युद्धको और युद्धमें मरनेको आदरणीय समझते

हैं। निःसन्देह अवसर आ पड़ने पर मजबूरीकी हालतमें लड़ाईसे भागना बड़ा अधर्म और कापुरुषता है, पर लडाईके लिए लड़ाई किसी प्रकार भी आदरकी वस्तु नहीं हो सकती। आश्चर्य्य है कि हत्या या ज़ना करनेवाला एक व्यक्ति तो समाजद्वारा दण्ड पावे और लड़ाईमें सारा समाज उन्हीं सब कार्य्योंको प्रसन्नतापूर्वक करे! हम अब-तक देखते हैं कि बलवान् अबल पर, पुरुष स्त्री पर, पिता पुत्र पर, बड़ा छोटे पर, ब्राह्मण शूद्र पर, अमीर ग़रीब पर, और मालिक नौकर पर अत्याचार कर रहे हैं। हम अब तक देखते हैं कि स्वार्थवश होकर मनुष्य अबतक किन किन धोखेबाजियोंका और किन किन चालाकियोंका आश्रय लेता है एवं कितने बड़े बड़े अपराध कर डालता है।

पाँचवाँ अध्याय।

पशु-संसारमें सदाचारकी झलक।

इस बातको प्राणिविद्याके सभी ज्ञाता जानते हैं कि ऐसे भी अनेक प्रकारके जीव हैं, जो सामाजिक हैं और यह स्पष्ट है कि सहानुभूतिके विना सामाजिकता नहीं हो सकती तथा इस सहानुभूतिमें ही सदाचारकी जड़ है। अत: जानवरोंकी सामाजिकताको देख कर हमें मानना पड़ता है कि उनमें भी सदाचारका अंकुर विद्यमान है। सामाजिक जानवर अपनी जातिके जानवरोंके साथ रहनेमें सुखी होते हैं, संगियोंके प्रति सहृदयता दिखलाते हैं और अपने जातिवालोंकी मदत भी करते हैं।

जानवरोंकी सामाजिकता अकसर इस हदतक पहुँच जाती है कि कभी कभी हम कई उपजातियों (Species) को भी एक साथ रहते हुए पाते हैं। डारविन कहते हैं कि अमेरिकामें बन्दरोंकी कई उपजातियाँ—जिनका जातिविभेद एकदम स्पष्ट है—साथ रहती हैं। काग, साधारण कौवे और मैना पक्षियोंके झुण्ड भी एक साथ ही निवास करते हुए देखे गये हैं। मनुष्य कुत्तोंको पालता और प्यार करता है, पर कुत्ते भी क्या अपने स्वामीके साथ कम स्नेह दिखलाते हैं? एक कुत्ता अपने मालिकके साथ चुपचाप घंटों तक सन्तुष्ट बैठा रहेगा, चाहे उसकी ओर कुछ भी ध्यान न दिया जाय; पर यदि वह अपने स्वामीसे विलग अकेला हो, तो दस मिनट भी चुप नहीं रह सकता और कातर स्वरसे भूकने लगता है। इसी तरह यदि

मालिक कहीं जा रहा हो और अपने कुत्तेको साथ न ले जाय, तो उसे बहुत दुःख होता है और वह संग चलनेके लिए ऊधम मचाने लगाता है। लेखकने स्वयं देखा है कि दो शामिल रहनेवाली गायोंमेंसे एकके हटाये जाने पर दूसरी अश्रुपात करने लगी और कुछ देरके लिए उसने घास खाना छोड़ दिया। जंगली घोड़े और हाथी झुण्डोंमें रहा करते हैं। पालतू घोड़े और हाथी अपने साईसों और महावतोंको अच्छी तरह पहिचानते हैं और उनके प्रति सहानुभूति दिखलाते हैं। इनको तो जाने दीजिए, कृमियों तककी कई जातियाँ सामाजिक जीवन निर्वाह करतीं हैं। इस विषयमें मधुमक्खियों और भौंरोंका तो नाम लेना ही पर्य्याप्त होगा। श्वेत चीटियों और टरमाइट जातिके कीड़ोंमें श्रम-विभागकी भी छाया दीख पड़ती है। इनमें सिपाही और मजदूर सभी मौजूद हैं। सौवा जातिकी चीटियोंमें घरमें काम करनेवालों और बाहर काम करनेवालोंका विभाग पाया जाता है। बाज़ जातिकी चीटियाँ अन्य जातिकी चीटियोंको गुलाम बना कर रखतीं है। जिस प्रकार हम गाय, बैल, कुत्ते आदि पालते हैं, उसी प्रकार कई जातियोंकी चीटियाँ, अन्य कीड़ोंको पालती हैं। इसी लिए सर जौन लबकने कहा है कि ऐसी अनेक जातिकी चीटियाँ हैं जिनमें पालतू पशुओंकी संख्या मनुष्योंसे भी अधिक पाई जाती है। यद्यपि अभी इनमें भाषाकी उत्पत्ति नहीं हुई है, तथापि ये सङ्केतोंसे ही भाषाका काम निकाल लेती हैं। इनमें पृथ्वी खोदने, सड़क बनाने और भवन निर्माण करनेकी कला भी प्रचलित है। टकीने कौंगोमें चीटियोंका एक गाँव देखा था जो वहाँके मनुष्योंके गाँवोंसे भी अधिक नियमपूर्वक और सुन्दरताके साथ बना हुआ था। शिवन्फ़ कहता है कि टरमाईट जातिकी चीटियोंके अन्त-

भौंम नगरके भाण्डागारों, कमरों, मार्गों और पुलों आदिका वर्णन करनेके लिए एक बृहत् पुस्तककी आवश्यकता होगी ।* बहुतसे पक्षी और दूध पिलानेवाले जानवर अकसर अपने गरोहके इर्द गिर्द अपनेमेंसे ही कुछ ऐसे पहरेदारोंको खड़ा कर देते हैं जो झुण्डको आपत्ति और विघ्नकी चेतावनी देते रहते हैं । प्रायः बन्दरोंके झुंडका एक सरदार हुआ करता है । सामाजिक जानवर अकसर एक दूसरेकी सेवा और मदद भी करते हैं । किसी साथीको खुजली हो जाने पर यह देखा गया है कि घोड़े उसके बदनको आहिस्ता आहिस्ता दाँतोंसे खुजलाते हैं और गायें जीभसे चाटती हैं । बन्दर एक दूसरेके शरीरसे जूँ निकालते हैं । ब्रहेमने लिखा है कि बन्दरोंका एक झुंड एक दफ़ा किसी कंटकाकीर्ण झाड़ीके मध्यसे निकला और इससे उनके शरीरमें कुछ काँटे चुभ गये । तब उन्होंने परस्पर एक दूसरेकी शरण ली । प्रत्येक बन्दरने पेड़की एक डाल पर लेटना आरम्भ किया और दूसरे बन्दरने एक एक करके बड़ी सावधानीसे प्रत्येकके शरीरसे काँटे निकालनेका काम जारी कर दिया । बहुतसे शिकारी जानवर मिलजुल कर शिकार करते हैं और शिकार पकड़नेमें अपने साथियोंकी सहायता करते हैं । हवासिल(Pelican)का झुण्ड एक साथ शिकार करता है । बबून पत्थरोंको हटा कर कीड़े खोजते हैं और यदि कभी उन्हें बहुतसे कीड़े मिल जाते हैं तो वे उन्हें अपने साथियोंमें बाँट कर भक्षण करते हैं । अमेरिकामें जंगली बैलोंकी एक ऐसी जाति है जो किसी आपत्तिके आ पड़ने पर गायों और बछड़ोंको बीचमें रख कर उन्हें चारों ओरसे घेर लेती है और बाहरसे जी जान लड़ाकर उनकी रक्षा करती है । इस देशके महिषकुल (भैंसों) का भी यही हाल है । बाघ या अन्य किसी

---

* See Spencer-Principles of Sociology Vol. I Prat 1-3

हिंसक जानवरके पहुँचने पर वे एक प्रकारकी व्यूहरचना करते हैं और अपने झुंडमेंसे प्रत्येकको आपत्तिसे बचाते हैं। अबीसीनियामें ब्रहेमने देखा था कि बबूनों (बन्दरों) का एक झुण्ड किसी तराई-को पार कर रहा था। कुछ बन्दर तो पहाड़ पर चढ़ चुके थे और कुछ तराईहीमें थे। उन पर कुत्तोंने आक्रमण किया। इस पर पहाड़ पर चढ़े हुए नर बन्दर तुरंत नीचे उतर आये और मुँह फाड़ फाड़ कर दाँत पीसते और चिल्लाते हुए कुत्तों पर ऐसे वेगसे टूट पड़े कि कुत्तोंको चम्पत होते ही बना। इस पर कुत्ते फिर ललकारे गये, पर तब तक बन्दर पहाड़ पर चढ़ गये थे, केवल एक छः महीनेका बच्चा ही तराईमें रह गया था। वह मददके लिए बड़े जोरसे चिल्लाने लगा और जान बचानेके निमित्त एक चट्टान पर चढ़ गया। कुत्तोंने उसे घेर लिया और वे उसे पकड़ना ही चाहते थे कि पहाड़ परसे एक बहुत बड़ा नर बन्दर उतरा और बच्चेको पुचकार कर साथ ले चलता बना। कुत्ते देखते ही रह गये, उनसे कुछ न बन आया। ब्रहेमने एक और भी दृश्य देखा था। एक बाज़ बन्दरके एक बच्चेको पकड़े हुए था, परन्तु वह पेड़की डालसे बहुत मजबूतीके साथ हुआ चिमटा हुआ था और इस कारण बाज़ उसे ले जानेमें समर्थ न होता था। इसी समय झुण्डके सारे बन्दर चिल्लाते हुए बड़े वेगसे झपटे और बाज़को घेरकर उन्होंने उसके इतने पर उखाड़ डाले कि उसे प्राण बचाकर भाग जाना कठिन हो गया।

इतना ही नहीं, मनुष्यके सिवा अन्य जीवोंमें हमें सहृदयताकी भी झलक दिख पड़ती है। कप्तान स्टैन्सबरीने अमेरिकाकी एक खारी झीलमें एक बहुत वृद्ध और अन्धे हवासिलको देखा था जिसे उसके साथी भोजन कराया करते थे और इस कारण वह खूब

हृष्ट पुष्ट था। मिस्टर ब्लिथने देखा था कि कुछ कौवे अपने दो तीन अन्धे साथियोंको भोजन कराते थे। डारविनने मुर्गोंके सम्बन्धमें भी यही बात सुनी थी। कप्तान स्टैन्सबरीहीने लिखा है कि एक झरनेकी तेज़ धारामें एक हवासिलके बच्चेके बह जाने पर आधे दर्जन हवासिलोंने उसे बाहर निकालनेमें सहायता दी थी। डारविनने स्वयं एक ऐसे कुत्तेको देखा था जो एक टोकरीमें पड़ी हुई बीमार बिल्लीके समीपसे उसके मुँहको दो एक बार चाटे बिना कभी आता जाता न था। यदि मालिक पर कोई आघात करना चाहता है तो स्वामिभक्त कुत्ता उस आदमी पर तत्क्षण आक्रमण कर बैठता है। कुत्तेके इस आचरणको हम क्या कहेंगे? क्या इसमेंसे सहानुभूतिकी गन्ध नहीं आ रही है? एक स्त्रीके पास एक छोटासा कुत्ता था। एक आदमीने झूटमूठ केवल परीक्षाके हेतु उसे यह दिखलाना चाहा कि वह उसकी मालकिन पर आघात करना चाहता है और इसलिए उसने अपना हाथ उठाया। यह देखते ही कुत्ता फौरन कूद पड़ा और उस आदमीसे बदला लेनेके लिए तत्पर हो गया। इसके बाद जब वह आदमी वहाँसे हट गया तब कुत्ता अपनी स्वामिनीकी गोदमें जा बैठा और अपनी दुम हिलाकर तथा अन्य प्रकारसे उसे दिलासा देने लगा और प्रेम प्रकट करने लगा। यह दृश्य देखकर लोगोंका हृदय द्रवीभूत हो गया। कई वर्ष व्यतीत हुए कि एक चिड़ियाखानेके एक नौकरने मुझे अपनी गर्दन परका ताज़ा ज़ख्म दिखलाया और एक बड़े और भयानक बबून (बन्दर) की ओर इशारा करके बतलाया कि इसीने यह ज़ख्म किया है। बबूनके साथ एक छोटासा बन्दर भी रहता था जो उससे बहुत भय खाता था और उसके डरसे सदा ही सिटपिटाया रहता था; परन्तु वह इस आदमीका परम मित्र था। अपने मित्रको

जोखिममें पड़ा देख कर वह उसकी जान बचानेके लिए उतारू हो गया और चीखता हुआ बबूनको दाँतोंसे काटने लगा। आखिर इसी छोटे बन्दरकी सहायताके द्वारा वह आदमी किसी प्रकार वहाँसे निकल भागा और मुश्किलसे अपना प्राण बचा सका।

जानवरोंमें बड़ोंका आदर करने और नेताकी आज्ञामें चलनेकी प्रवृत्ति भी पाई जाती है। अबीसीनियाके बबून जब कभी किसी बागको लूटना चाहते हैं तो चुपचाप अपने नेताके पीछे चलते हैं और यदि कोई अबुद्धिमान् नौजवान बन्दर असावधानताके कारण जरा भी शोर गुल करता है तो उसे बूढ़े बन्दर तमाचा लगाकर ठीक कर देते है और इस प्रकार उसे चुप रहने तथा आज्ञा पालन करनेकी शिक्षा देते हैं। क्या इससे यह साफ़ तौरपर प्रकट नहीं होता कि उनमें मनुष्य-समाजका अंकुर यहा हा था? हाथी दलदलमें फँस जाने पर जिस वस्तुको पाते है उसे ही अपने घुटनेके नीचे रखकर दबा लेते हैं ताकि वे दलदलमें और भी गहरे न धँस जायँ। अपनी पीठपर बैठे हुए सवारोंके साथ भा वे यही बर्ताव करते हैं, अर्थात् उन्हें भी सूँड़से पकड़कर नीचे दबा लेते हैं; परन्तु अपने महावतके साथ ऐसा कदापि नहीं करते। * ऐसी विपत्तिके समय भी महावतके प्रति हाथी सरीखे भारी जानवरकी यह दृढ़ भक्ति और सत्यशीलता कम सराहनीय नहीं है।

स्पेन्सर के 'प्रिन्सिपल्स आफ़ एथिक्स' नामक ग्रन्थकी दूसरी जिल्दके परिशिष्ट 'डी' में, मिस्टर टामन जोन्सके कई अत्यन्त ही बहुमूल्य और पूर्णतः वैज्ञानिक ढंगसे किये गये अन्वेषणोंका वर्णन है। अन्वेषण इतने अच्छे हैं कि उनमेंसे दो एकके उल्लेख करनेके लाभको मैं संवरण

* See the Descent of Man, Part v, Chh. iii, iv, v.

नहीं कर सकता। मिस्टर जोन्सके 'पंच' नामक कुत्तेके आचरणसे यह पूरे तौर पर स्पष्ट होजाता है कि जानवरोंमें भी दया, न्याय, सहृदयता तथा दूसरोंको कष्ट न देनेके भाव कहाँ तक विद्यमान रह सकते हैं। इस कुत्तेके सम्बन्धमें मिस्टर जोन्स लिखते हैं कि मेरा कुत्ता किसी जीवित वस्तु-को नहीं काटता। जब मैं उसकी पीठके चमड़ेमें तेज़ चाकूकी नोक भोंकता हूँ, तो वह मेरे हाथको अपने मसूढ़ोंके बीच पकड़ लेता है। यदि वह चाहे तो अपने कल्लेसे मेरी कलाईको दबाकर मांस क्या हड्डी तकको चबा जाय; परन्तु नहीं, मैं उसे चाहे कितना भी तंग क्यों न करूँ, कितने ही जोरसे चाकू क्यों न भोंकता जाऊँ, वह कदापि अपना मुख बन्द नहीं करता। वह मेरी कलाईको इतने जोरसे भी नहीं पकड़ता कि उसपर उसके दाँतोंके निशान पड़ जायँ। इस कुत्तेकी आचार-बुद्धिके सम्बन्धमें मिस्टर जोन्सने एक और भी बड़ी आश्चर्य्यजनक बात लिखी है। वे कहते हैं कि मैं लँगड़ा हूँ और बिना छड़ीकी सहायताके नहीं चल सकता। मेरा कुत्ता मेरी जरूरतोंको यहाँ तक समझता है कि जब मैं उसे किसी मामूली लकड़ी या छड़ीसे तंग करता हूँ तो वह उसे तो अपने दाँतोंसे दबा कर तोड़ देता है, परन्तु जब मैं उसे अपने आधार-दण्ड या टहलनेकी छड़ी-से तंग करता हूँ तो वह उसे पकड़ तो अवश्य लेता है परन्तु तोड़ता नहीं है—तोड़ना तो दूर रहा उस पर उसके दाँतोंके निशान तक नहीं पाये जाते।

मिस्टर जोन्स किस वैज्ञानिक चतुरतासे परीक्षा करते थे और इसलिए उनके निष्कर्ष कहाँ तक मान्य हैं—यह मैं उन्हींके शब्दोंमें प्रकट कर देना चाहता हूँ। वे पूछते हैं कि पंच मुझे क्यों नहीं काटता? उत्तरमें कहा जा सकता है कि वह मुझसे बहुत डरता है—

भयके कारण ही उसे काटनेकी हिम्मत नहीं होती। परन्तु जिन लोगोंने पंचके साथ मेरी मित्रता देखी है वे इसे कदापि स्वीकार नहीं कर सकते। कुत्तेको मुझसे इतनी प्रीति है कि यदि उसे कभी अपने बदनसे कोई कीड़ा या काँटा निकलवाना होता है या दरवाजा खोलवाना होता है, तो वह फौरन मेरे पास चला आता है, चाहे मैं कैसा ही जरूरी काम क्यों न कर रहा हूँ। यदि वह देखता है कि मैं अपनी डेस्कके समीप बैठकर कुछ लिखने पढ़नेका काम कर रहा हूँ, तो पास आकर खड़ा हो जाता है और अपने आगेके दाहिने पैरको मेरी बाजूपर रखकर अपने बायें पैरसे मेरे कन्धेको खुजलाना आरम्भ करता है। जब तक मैं उसकी ज़रूरतको रफ़ा न कर डालूँ तब तक वह बराबर ऐसा ही किया करता है। क्या यह भयका लक्षण है? फिर भी यह कहा जासकता है कि उसे मुझपर इतना विश्वास है कि वह हृदयसे यही समझता है कि मैं उसे कदापि दुःख नहीं दे सकता। साथ ही आप यह भी कह सकते हैं कि जब यह कुत्ता केवल एक ही वर्षका था तब एक शिकारीके फ़ैरसे घायल हो गया था और मैंने इसके शरीरसे ३० छर्रे निकाले थे। अतः इस शस्त्रक्रियाको स्मरण करके कुत्ता शायद यह समझता हो कि मेरा चाकू गड़ाना सर्वथा निष्प्रयोजन नहीं है—यह भी हितहीके लिए होगा; परन्तु उक्त सब कारणोंमेंसे एक भी ठीक नहीं है। भयकी तो बात ही चलाना व्यर्थ है। यदि दूसरे कारणको सत्य माना माना जाय, तो कुत्ता जब अन्य छड़ियोंको अपने दाँतोंसे तोड़ मरोड़ डालता है, तब मेरे आधार-दंड पर अपने दाँत तक भी क्यों नहीं गड़ाता? कहा जा सकता है कि इसका कारण दुर्बलता और कायरता है और इसीसे अन्य कुत्तों द्वारा काटे जाने पर

भी वह प्रतीकारकी चेष्टा नहीं करता है। परन्तु यदि कायरता ही उसके प्रतीकार न करनेका कारण होती तो वह निस्संदेह अन्य कुत्तोंके समीप आने पर या भूकने पर भागनेकी चेष्टा करता। परन्तु न तो वह भागता ही है और न जवाबमें भूकना ही बन्द करता है। मैं अनेक बार चेष्टा करता हूँ कि पंचको किसी प्रकार भगा दूँ ताकि वह जख्मी न हो सके; परन्तु वह डटा ही रहता है और इसलिए अक्सर बहुत ज़ख्मी हो जाया करता है। एक दिन मैं पंचके साथ एक बहुत ही तंग गलीसे होकर गुज़र रहा था कि एक बहुत बड़े कुत्तेने उसपर हमला किया और उसे इतने जोरसे काटा कि उसके मुँहसे रक्त बहने लगा। यह पहला ही मौका था, जब मैंने पंचको हमलेका प्रतिरोध करते देखा। परन्तु पंचने बदलेमें उस कुत्तेको काटा नहीं, बल्कि एक बढ़िया वैज्ञानिक रीतिसे और बिना रक्त बहाये अपनी रक्षा की। पंचने उस कुत्तेके एक पिछले पैरको बड़ी मजबूतीसे पकड़ लिया और उसे ज़मीनसे इतना ऊपर उठा दिया कि कुत्ता लड़खड़ा गया। यदि पंच चाहता तो उसे पृथ्वीपर पटक देता और बहुत आसानीसे बदला वसूल कर लेता; परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। दूसरा कुत्ता थोड़ी देर तक चुप चाप खड़ा रहा। वह भली भाति समझ रहा था कि मैंने ज़रासा भी इधर उधर किया कि गिर पडूँगा और तब सर्वथा अपने शत्रुके अधीन हो जाऊँगा। पंच उस कुत्तेके पैरको सिर्फ़ पकड़े हुए था, काट नहीं रहा था; इसलिए उसे कोई तकलीफ़ नहीं हो रही थी। अन्ततः उस कुत्तेने अपने सिरको पीछे घुमाकर पंचको काटना चाहा। परन्तु पंचने उसके इस प्रयत्नको विफल कर दिया। उसने कुत्तेके पैरको ज़मीनसे और भी ऊपर उठा दिया और उस पैरको कुत्तेके मुँहकी तरफ़ उलटा ले गया जिससे कि पंचके शरीर और

कुत्तेके मुँहके मध्य पूर्ववत् अन्तर बना रहे। कुत्ता जितना ही अपने मुँहको काटनेके लिए घुमाना चाहता, पंच उतना ही उसके पैरको दूसरी ओर ले जाता। इसी प्रकार दोनों कुत्ते एक वृत्तमें लगभग दो मिनट तक नाचते रहे। इसके बाद एक गाड़ीको आती हुई देखकर मैंने विवश होकर उन्हें छुड़ाकर अलग अलग कर दिया। मिस्टर जोन्सने इस तरहकी सैकड़ों घटनायें अपनी आँखोंसे देखकर लिखी हैं। तब क्या इसे कायरताका लक्षण कह सकते हैं? उक्त सब बातोंसे यह साफ़ सिद्ध होता है कि जानवरोंमें भी निस्स्वार्थता, न्यायपरता और सहृदयताके कुछ अंश विद्यमान हैं।

इस बातका तो बहुतोंने अनुभव किया होगा कि चलते चलते, टमटम या गाड़ीमें जुते हुए घोड़े बीचमें आजानेवाले बच्चों या मनुष्योंको स्वयं बचा जाया करते हैं। इस सम्बन्धमें मिस्टर जोन्सने एक बड़ा ही विस्मयोत्पादक उदाहरण दिया है। मिस्टर जोन्सके घरमें उनकी एक नातेदार स्त्री भी निवास करती थी और वह कभी कभी मिस्टर जोन्सके घोड़ेको चलाया करती थी। परन्तु वह इतनी बहरी थी कि पीछेसे आनेवाली गाड़ियोंके शब्दोंको बिल्कुल नहीं सुन सकती थी और इसलिए वह रासको इधर उधर कस कर घोड़ेको दाहिने या बायें नहीं मोड़ सकती थी। मिस्टर जोन्सने कई मर्तबे परीक्षा करके देखा कि रास जब स्वयं उनके हाथोंमें रहती थी, तब घोड़ा बायें मुड़नेके लिए रासके बायें कसे जानेकी प्रतीक्षा करता था, किन्तु जब उनकी नातेदार स्त्री घोड़ेको हाँकती तो घोड़ा पीछेसे किसी गाड़ीके आनेका शब्द सुनकर स्वयं ही बायें मुड़ जाता था। एक दफ़ा बहुत से लड़के एक सड़क पर खेल रहे थे और वे प्रायः सारी सड़क पर फैले हुए थे। परीक्षाके हेतु मिस्टर जोन्सने लगाम ढीली कर दी।

एक किनारे पर सिर्फ गाड़ीके पार होने भरके योग्य संकीर्ण स्थान छुटा हुआ था, जहाँ लड़के न थे। घोड़ा स्वयं मुड़ गया और अपनी चालको कम करके, बहुत होशियारीसे इस संकीर्ण स्थानसे पार हो गया और पार निकल जाने पर तेज़ीसे दौड़ने लगा। इस घोड़ेका दिल कितना नाज़ुक और प्रेममय था, इसका भी एक उदाहरण मिस्टर जोन्सने दिया है। एक दिन वे अपनी स्त्रीके साथ गाड़ीमें बैठे हुए कहीं जा रहे थे। रास्तेमें अपनी स्त्रीके साथ एक वैज्ञानिक प्रश्न पर वाद-विवाद करत करते वे इतने निमग्न हो गये कि बिना ज़रूरतके ही घोड़े पर चाबुक चलाने लगे। इसके पहले वे घोड़ेको कभी मारते नहीं थे, सिर्फ अपने शब्दोंके ही द्वारा उसकी चालको तेज़ किया करते थे। आखिर दो चाबुक खा चुकने तक तो घोड़ा चलता गया; परन्तु तीसरे चाबुकके पड़ते ही वह रुक गया। यह देख स्त्रीने मिस्टर जोन्सका ध्यान आकर्षित किया और कहा,—देखिए निष्कारण मार खानेसे प्रिन्स (घोड़ा) दुखी होकर कातरतासे आपकी ओर निहार रहा है। घर आने पर जब घोड़ा गाड़ीसे खोला गया तो रोज़के मामूलके अनुसार वह अस्तबलमें न जाकर सीधे मिस्टर जोन्सके पास चला आया और बहुत कोशिश करके उसने मिस्टर जोन्सका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। उसने अपने नथुनोंसे मिस्टर जोन्सको छुआ और तब जहाँ तक हो सका वहाँ तक अपने नथुनोंको पीड़ित स्थानके समीप तक ले जाकर पीड़ाका संकेत किया और जब तक कि मिस्टर जोन्सने इस स्थानको धुलवा नहीं दिया तब तक वह इसी तरह करता रहा। मिस्टर जोन्सकी ज़रूरतको उनका घोड़ा यहाँ तक समझता था कि वह उनके गाड़ी पर सवार हुए विना, लाख प्रयत्न करने पर भी, आगे नहीं

बढ़ता था। जब तक मिस्टर जोन्स गाड़ी पर न बैठ जाते तब तक घोड़ेका चलाया जाना असम्भव था। किन्तु यदि अन्य कोई मनुष्य छूट जाता तो घोड़ा आगे बढ़नेमें ज़रा भी आपत्ति न करता था।

मिस्टर जोन्सके ही एक और वृत्तान्तसे पता चलता है कि जानवरोंमें आज्ञाकारित्व, इन्द्रिय-दमन और आत्म-संवरण कहाँ तक हो सकता है। मिस्टर जोन्सके पास एक कुत्ती थी जो उपयुक्त ऋतुमें कुत्तोंकी प्रेम-दृष्टिसे बहुत संतुष्ट होती थी। परन्तु मिस्टर जोन्सने उसकी इस प्रवृत्तिमें बाधा डालनेका प्रयत्न किया और उसका नतीजा यह हुआ कि जब कुत्तीकी आयु चार वर्षकी हुई, तब उसने कुत्तोंकी परवा करनी ही छोड़ दी और तब उसे ऋतुकालमें भी बाँध कर रखनेकी कोई ज़रूरत न रही। यह कुत्ती १३½ वर्षकी अवस्थामें मरी और अन्त समय तक अक्षत-योनि रही। इस सम्बन्धमें मिस्टर जोन्सका एक और उदाहरण उल्लेखनीय है। उनका 'पंच'—जिसके बारेमें ऊपर अनेक बातें लिखी जा चुकी हैं—चीनी खाना बहुत पसन्द करता था। आज्ञाकारिताकी परीक्षा करनेके लिए मिस्टर जोन्सने कुत्तेको चीनी दी; परन्तु मना करते ही वह चीनीको भक्षण करते करते रुक गया—उसने चीनी परसे अपना मुँह अलग कर लिया। कभी कभी मिश्रीकी डलीको मुँहमें ले चुकने पर भी वह एक बार 'न' कहते ही उसे फेंक देता था। लेटे हुए कुत्तेके चारों तरफ़ मिश्रीकी डली रख देने पर मिस्टर जोन्सने यह अनेक बार देखा कि एक बार 'न' कर देनेपर, बिना 'हाँ' कहे वह मिश्रीकी डलीको कदापि नहीं छूता था। एक बात और थी। एक बार 'हाँ' कहने पर भी कुत्ता फ़ौरन मिश्रीकी डली-को न छूता और दोबारा हुक्मकी प्रतीक्षा करता; परन्तु एक दफ़ा भी 'न' कहते ही मिश्री खानेसे रुक जाता। शायद वह सोचता

था कि एक बार 'हाँ' करने पर भी मालिक शीघ्र ही 'न' कह बैठेंगे, इसलिए जहाँ तक हो सके बातको निश्चित कर लेना ही अच्छा है। किन्तु सबसे बड़ी आश्चार्य्य-जनक बात तो यह है कि यदि मिस्टर जोन्स मिश्रीका कोई बड़ा डला छोड़ देते तो उनका कुत्ता या कुत्ती कोइ उसे न छूती, परन्तु यदि छोटा टुकड़ा पड़ा होता तो वे रुक रुक कर उसके समीप आते और यदि मना न किये जाते तो डरते डरते खा जाते। अर्थात् वे सामान्य अपराध और बड़े अपराधके भेदको समझते थे। मनुष्योंके सदृश पशु भी अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तिको कहाँ तक दमन कर सकते हैं, यह बात उक्त उदाहरणोंसे पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है। विचारपूर्वक देखनेसे यह भी विदित हो जाता है कि मूर्खों और अकर्मण्योंसे पशु भी घृणा करते हैं। मिस्टर जोन्सकी कुत्ती जिसके सम्बन्धमें हम अभी ऊपर कुछ कह आये हैं—बड़ी तैरनेवाली थी। परन्तु उनके पास एक और कुत्ता था जो तैरनेमें इतना प्रवीण न था। एक दिन कुत्ती मालिकके साथ नौकाद्वारा जलसे पार होते समय, अपने स्वभावके अनुसार पानीमें कूद पड़ी और तैरने लगी; देखादेखी कुत्ता भी कूद पड़ा, परन्तु वह थोड़ी ही देरके बाद डूबने लगा। उसकी इस दुर्दशाको देखकर कुत्ती उसकी ओर झपटी और उसे गर्दन पकड़ कर जलसे बाहर ले आई। कुछ देरके बाद उसने उस कुत्तेको मज़बूतीके साथ पकड़कर खूब हिलाया और इस तरह कुत्तेके प्रति घृणा और अवज्ञा प्रकट की। इसके बाद भी वह सदा इस कुत्तेके साथ घृणा और लांछनाके भाव दिखलाती रही, तथा यों भी कभी कभी खेलते खेलते वह उसे गर्दन पकड़कर हिला दिया करती। कुत्तोंमें सहृदयताकी मात्रा कितनी है, मिस्टर जोन्सने इसकी भी परीक्षा की थी। उन्होंने इसी कुत्तीके सम्बन्धमें लिखा है कि वे जब

कभी अपनी बहनपर बनावटी क्रोध दिखलाकर आघात करना चाहते थे, तो वह बहनके पक्षका अवलम्बन करके इन पर टूट पड़ती थी, और जब कभी बहन इनपर आघात करना चाहती थी तो कुत्ती मिस्टर जोन्सके पक्षमें हो जाया करती थी। मिस्टर जोन्सने इस प्रकारकी परीक्षायें अनेक बार कीं और उनमें कुत्ती सदा दुर्बलोंके ही पक्षका समर्थन करती हुई देखी गई।

मिस्टर जोन्सकी परीक्षाओंसे यह भी विदित होता है कि जिस तरह मनुष्योंमें कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो वास्तवमें अपने हृदयसे तो सदाचारको पसन्द नहीं करते, परन्तु ख्याति प्राप्त करनेके लिए या समाज द्वारा अच्छे कहे जानेके अभिप्रायसे अच्छे काम किया करते हैं, साथ ही उपयुक्त अवसर मिल जाने पर और भेदके खुल जानेकी कोई सम्भावना न होने पर बुरे कामोंके करनेमें भी नहीं हिचकिचाते हैं। अर्थात् अन्तःकरणसे सदाचारी न होने भी पर जिस तरह मनुष्योंमें बाहरसे सदाचारी नज़र आनेवाले कुछ लोग विद्यमान हैं, उसी तरह कुछ जानवर भी सदाचारका ढोंग रचा करते हैं। जिस तरह सच्चे और सदाचारी जानवरोंके कुछ उदाहरण ऊपर दिये जाचुके हैं उसी तरह प्रसङ्गवश यहाँ जानवरोंके ज़ाहिरी सदाचारका भी एक उदाहरण दिया जाता है। मिस्टर जोन्सके पास जूडी नामकी एक कुत्ती थी जिसे वैज्ञानिक परीक्षा करनेके ही निमित्त उन्होंने खरीदी थी। ख़रीद कर ले आने पर मिस्टर जोन्सने इस कुत्तीके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया, उसे प्रेमके साथ खिलाया पिलाया और रक्खा; परन्तु इसका नतीजा उलटा ही हुआ। कुत्तीका स्वभाव और भी क्रूर हो गया और वह हर किसी पर टूटने लगी। एक दिन मिस्टर जोन्सने उसे अच्छी तरह पीटा। इससे उसके स्वभावमें अद्भुत परि-

वर्तन हो गया। वह मिस्टर जोन्सके साथ तो अच्छा वर्ताव करने लगी, अर्थात् उन्हें प्यार करने लगी और उनका हुक्म मानने लगी; परन्तु दूसरोंके साथ उसके व्यवहार और आचरणमें वही क्रूरता बनी रही। जूडी चोरी भी करती थी। परन्तु उसकी चोरीमें इतनी सफ़ाई थी कि वह मनुष्योंकी चतुरताको भी मात कर देती थी। मिस्टर जोन्सकी रसोई बनानेवाली दाई रसोईकी वस्तुओंको ऐसे यत्नके साथ रखती थी कि उनतक जूडीका पहुँचना असम्भव था। परन्तु जूडीने चोरीका एक अनोखा ढंग निकाल लिया। चोरी करनेके पूर्व वह अच्छी तरह सोच लिया करती थी कि उसकी चोरी किसी पर प्रकट न हो जाय। वह देख लेती थी कि सब प्रकारसे सन्नाटा है और कोई मनुष्य समीप नहीं है। स्वयं तो वह किसी तरह उन वस्तुओं तक पहुँच न सकती थी, इसलिए पहले मिस्टर जोन्सकी बिल्लियोंमेंसे एकको कुर्सी पर चढ़नेके लिए विवश करती, इसके बाद जब उसके अनुरोधसे बिल्ली कुर्सी परसे उछल कर टेबुलपर पहुँच जाती और वहाँसे मांस ले आती, तब जूडी उससे मांस छीन लेती और स्वयं भक्षण कर जाती! मिस्टर जोन्सको बड़ी कठिनतासे इस चोरीका पता चला; क्योंकि कुत्ती बड़ी होशियारीसे चोरी करती थी। पहले तो मिस्टर जोन्सने इस तमाशेको छुपकर देखा। इसके बाद उन्होंने कुत्तीके सामने प्रकट होनेका निश्चय किया। परन्तु कुत्ती भी चालाकीमें कम न थी। मिस्टर जोन्स जब जब कुत्तीके पास पहुँचते, तब तब वह गुर्राती हुई तेजीके साथ बिल्लीके पास पहुँचती और मांसको उसके पास डालकर उसपर क्रोध प्रकाश करती और उसे रगेदकर बहुत दूर भगा देती। अपने दोपको बिल्लीके मत्थे मढ़नेके लिए कुत्तीकी यह व्याकुलता क्या मनुष्योंके आचरणसे कुछ कम है? इस उदाहरणसे यह भी प्रमाणित होता है कि जानवरोंमें

भी भले बुरे कामोंकी पहचान—सदाचारकी कुछ मात्रा—अवश्य विद्यमान है। यद्यपि जूडीके आचरण बहुत ही बुरे थे; परन्तु यह निस्सन्देह है कि वह अपने मनमें चोरी करनेको अच्छा न समझती थी। अतएव सदाचारका किंचित् अङ्कुर जानवरोंमें भी जरूर विद्यमान है और इसी साधारण अंकुरसे सदाचारके विशाल वृक्षकी उत्पत्ति हुई है।

प्राय: सभी असभ्य और जंगली जातियाँ अपने छोटेसे कुल या परिवारके साथ सहानुभूति रखती हैं। सम्पूर्ण जाति या समग्र मनुष्यों-के हित अहितसे उन्हें कोई सरोकार नहीं रहता। उन्हें केवल अपनी छोटी और परिमित मण्डलीके कल्याण मङ्गलसे ही मतलब रहता है। इस छोटीसी मण्डलीके मध्य एक दूसरेके प्रति जंगलियोंका सद्व्यवहार अक-सर बहुत पवित्र और सच्चा होता है। बल्कि कुछ अंशोंमें तो सभ्य जातियाँ भी इनकी बराबरी नहीं कर सकतीं। सत्य बोलनेका महत्त्व भी ये जानते हैं, पर केवल अपनी मण्डलीहीके लोगोंके साथ सच बोलते हैं। अन्य जाति या अपरिचित लोगोंके साथ झूठ बोलनेमें या उन्हें धोखा देनेमें कोई अपराध या पाप नहीं समझते। इससे यह अच्छी तरह विदित होता है कि सामाजिक प्रवृत्तिके द्वारा और आत्म-रक्षाके लिए ही मनुष्यने पहले पहल सदाचारको सीखा है। पर-न्तु जिस प्रकार मनुष्य केवल वृष्टि और धूपसे बचनेहीके निमित्त मकान बनाना सीखता है और पहले लकड़ीके टुकड़ों और पत्तोंसे ही झोपड़ियाँ बनाता है, परन्तु पीछे इसी छोटे अंकुरसे महान् और आकाशको चूमनेवाली, नाना प्रकारकी कला, चित्रकारी इत्यादिसे सुसज्जित अट्टालिकाओंका आविर्भाव होता है, उसी प्रकार इस छोटेसे अंकुरसे समाजकी उत्पत्ति होती है और पीछे यह सदाचारसे महान्, विश्वव्यापी, सहृदयतायुक्त धर्म बन जाता है।

छठा अध्याय ।

१–सदाचार और प्राकृतिक चुनाव ।

इस विषयका थोड़ासा आभास चौथे अध्यायमें दिया जा चुका है; परन्तु विषयकी गुरुताके कारण इसपर एक स्वतंत्र अध्याय लिखनेकी आवश्यकता जान पड़ती है। पाठक देख ही चुके हैं कि सदाचारकी उन्नतिमें प्राकृतिक चुनावके नियमने कितना बड़ा भाग लिया है तथा इसके द्वारा सदाचारकी कितनी उन्नति हुई है। क्योंकि यह स्पष्ट है कि जीवन संग्राममें सदाचार-युक्त जीवों और जातियोंको सदाचारहीन जीवों और जातियोंकी अपेक्षा अधिक महत्त्व प्राप्त होता है।

मानवीय उन्नतिमें सदाचारका भाग।

डारविनने अपनी 'डिसेन्ट ऑफ मेन' या मनुष्यकी उत्पत्ति नामक पुस्तकमें यह दिखलानेकी चेष्टा की है कि मानवीय उन्नतिमें सदाचारने कहाँ तक सहायता की है। प्रत्येक मनुष्यको—जो यह सोचता है कि आचार मेरी निजकी या जाती बात है और प्रकृति केवल शारीरिक और मानसिक बलका ही ख्याल करती है—नैतिक बलका नहीं—यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। डारविनके अनुसार हर जगह मनुष्यसे लेकर छोटेसे छोटे जीवोंमें भी जीवन-कलह (Struggle for existence) विद्यमान है। जो जीव अपनेको सबसे अधिक अपनी परिस्थितियोंके अनुकूल बना

जीवन-कलहमें शारीरिक बलकी अपेक्षा नैतिक और मानसिक बलसे ही फैसला होता है।

सकता है और जीवनके नियमोंको पालन करता है वह सबसे अधिक शिष्ट या जीनेके योग्य है। वही अपनी सन्तति छोड़ जाता है। अयोग्य जीव मरणको प्राप्त हो जाते हैं। हर एक जाति उन गुणोंको —जिसके द्वारा वह दूसरी जाति (Species)से बलवती होती है— परम्परागत नियमोंके द्वारा अपने वंशजोंमें आरोपित और दृढ़ करती है।

केवल शारीरिक बलमें मनुष्य हाथी और भैंसेका सामना नहीं कर सकता, तौभी अपनी बुद्धिके कारण वह उनसे बलवान् बना हुआ है। वह भाला तलवार और बन्दूकका आविष्कार करता है और उन्हें परास्त करता है। इसी प्रकार मनुष्यकी एक जाति और दूसरी जातिके मुकाबलेमें भी शारीरिक बल उतना काम नहीं करता जितना कि मानसिक बल करता है। लड़ाईमें भी केवल उसी जातिकी विजय नहीं होती जिसकी सेना असंख्य हो या जिसकी फौज हृष्ट पुष्ट हो, वरन् उस जातिकी होती है जिसके अफसर योग्य हों और जिसके लड़ाईके तरीके उत्तम और नूतन हों। डारविन आगे बढ़ कर यह भी बतलाते हैं कि *सदाचारयुक्त होनेसे हमें जीवन-कलहमें मदद मिलती है।* इस प्रतिद्वन्द्वमें एक सदाचारयुक्त जाति दूसरी सदाचारहीन जातिको अवश्य पराजित करती है। दूसरे शब्दोंमें *सच्चरित्रोंकी मदद प्रकृति उसी प्रकार करती है जिस प्रकार मोटे शरीरवालों या अतुल मानसिक शक्तिवालोंकी।* ऐसे बहुतसे नियम हैं जिनके सहारे समाज खड़ा है और पुष्ट तथा बलवान् है। यदि कोई समाज नियमोंका उल्लंघन करेगा, यदि वह इन सर्वशक्तिमय नियमोंका कुछ भी आदर न करेगा, और संसारको केवल क्रीड़ास्थल समझेगा तो समझ लीजिए कि उस समाजको जीवनका भेद ज्ञात नहीं है और इसलिए कुछ ही समयमें उसका नाम संसार-पृष्ठ पर से एकदम उड़ जायगा।

डारविनके मत पर एक दूसरे प्रकारकी टीका।

परन्तु डारविनके मत पर लोग एक दूसरे प्रकारकी भी टीका करते हैं। अकसर कहा जाता है कि प्रकृति बलवानोंकी रक्षा करती है और दुर्बलोंको रसातल भेजती है। अतएव बलवानोंको निःसंकोच अपना हित साधना चाहिए, और दुर्बलोंको मरनेके लिए छोड़ देना चाहिए। क्योंकि प्रकृतिका यही नियम है और यही उसकी इच्छा भी है। यदि कोई मनुष्य अपनेको शिक्षित बना सके तो अच्छा है, नहीं तो उसे अशिक्षित ही छोड़ दो। यदि कोई स्त्री अपने पुरुषार्थसे अपना अधिकार प्राप्त कर सकती है तो अच्छा है, नहीं तो उसे अधिकार-हीन ही रहने दो। यदि कोई मनुष्य इतना चालाक है कि वह दूसरोंको धोखा दे सकता है, यदि वह इतना बलवान् है कि दूसरों पर अत्याचार कर सकता है तो उसे ऐसा करने दो, क्योंकि बल और बुद्धियुक्त होनेके कारण यह उसका सामान्य अधिकार है। *

उक्त टीकाका खण्डन।

परन्तु जैसा हम अभी देख चुके हैं डारविनके मतका यह अनुवाद डारविनके मतसे एकदम विरुद्ध है। निःसन्देह इस प्रकारकी सामाजिक अराजकता एक समय—संसारके आदि युगोंमें—अवश्य विद्यमान थी; क्योंकि उस समय हमारी सदसद्विवेकबुद्धि (ईमान Conscience) जागृति नहीं हुई थी। परन्तु स्मरणीय बात यह है कि वे जातियाँ—जिनमें सामाजिक सहानुभूति एकदम नहीं थी—जीती नहीं बचीं और न उन्होंने अपना कोई वंशज ही छोड़ा। वे उन श्रेष्ठ सदाचारयुक्त

---

* And they should take who have the power
And they should keep who can.

—*Wordsworth's RobRoy*

जातियोंसे—जिनकी सामाजिक प्रवृत्ति उन्नत हो चुकी थी—मुकाबला न कर सकीं और आज भी जो ऐसी जातियाँ बच रही हैं वे असभ्य जङ्गली और पशुओं जैसा जीवन व्यतीत करती हैं । उनके शरीर और देश पर आधिपत्य जमाना बलवती जातियाँ अपना अधिकार ही नहीं वरन् अपना कर्तव्य और धर्म भी समझती हैं । जिस प्रकार वनस्पति और पशु श्रेष्ठ मनुष्यके हितसाधनका यन्त्र बनते हैं, उसी प्रकार नीची जातियाँ भी ऊँची और श्रेष्ठ जातिके सुखसाधनका यन्त्र बन जाती हैं ।

सदाचारसे जीवन-संग्राममें लाभ । कुछ उदाहरण ।

यह अच्छी तरह स्पष्ट है कि जीवनसंग्राममें सदाचारयुक्त जीवोंको सदाचारहीन जीवोंकी अपेक्षा अधिक योग्यता प्राप्त होती है । एक उदाहरण लेकर देखिए । शान्त स्वभाव होना सदाचारका एक अङ्ग है । शान्त स्वभावका अर्थ चुपचाप दूसरोंका आघात सहना नहीं है, वरन् दूसरोंको निरर्थक कष्ट न देनेकी इच्छा रखना, या झगड़ालू और क्रूरस्वभावयुक्त न होना है । जाहिरा यह मालूम होगा कि जबरदस्त लोगोंकी ज़बरदस्ती उन्हें जीवनसंग्राममें सफलता प्रदान करती है । पुरानी अस्तव्यस्तताके समयमें—जब कोई सिलसिला या प्रबन्ध नहीं था, जब समाज बिल्कुल छिन्न भिन्न था, और उन समाजोंमें जिनमें अब तक भी अनियम विद्यमान है—ऐसे लोगोंको कुछ फ़ायदा पहुँच सकता है; परन्तु स्थायी व्यवसायी समाजमें सफलताके लिए यह गुण कदापि उपयुक्त नहीं है । समाजका अर्थ ही है—सम्मेलन, सहयोग, और समानता । फिर जो मनुष्य असमाजिक स्वभावका होगा, जो नियमाधीन न होना चाहेगा और अकेला सारे समाज पर अत्याचार करना चाहेगा, आप स्वयं सोच सकते हैं कि वह कहाँ तक कृत-

कार्य्य होगा? समाजकी सम्मिलित शक्तिके सामने वह अकेला क्या कर सकेगा? इस बातको आप स्वयं समझ सकते हैं कि एक शान्त अहिंसक और एक विवादी अत्याचारी निर्दयी मनुष्य, इन दोनोंमेंसे किसकी जान अधिक जोखिममें है। इसके सिवाय झगड़ालू स्वभाव-वालोंकी अपेक्षा शान्त स्वभाववाले सन्तान उत्पन्न करनेकी और अपने वंशके जारी रखनेकी योग्यता भी अधिक रखते हैं।

उदाहरण—ऐन्द्रिय संयम।

ऐन्द्रिय संयम भी सदाचारका एक अङ्ग है। असंयमी मनुष्य सोचता है कि यदि जहन्नुममें जाना होगा तो वहीं चले जायँगे यहाँ तो चैन कर लो; पर प्रकृति उसे चैन नहीं लेने देती। उसका शरीर और मन जर्जर हो जाता है, उसका अन्तःकरण उसके शरीर और मनको दग्ध किया करता है और शरीर और मनमें विकार उत्पन्न कर देता है। उसकी जवानी, स्वास्थ्य, सौंदर्य्य एवं सुख और शान्तिका प्रतिमा-विसर्जन हो जाता है। वह नाना प्रकारकी कठिन बीमारियोंका शिकार बनता है और अकालमें ही कालकवलित हो जाता है।

स्त्रियोंके प्रति सद्व्यवहार रखना भी सदाचारकी एक बड़ी आज्ञा है। यह सर्वथा स्वाभाविक है। इसमें अतिप्राकृतिक लेशमात्र भी नहीं है। प्रकृतिकी आज्ञा यहाँ भी वैसी ही कड़ी है। विषयासक्त पुरुष और स्त्री यह सोच सकते हैं कि उनकी इन्द्रियलोलुपतासे उन्हें कोई हानि नहीं पहुँचती, परन्तु प्रकृति उन्हें शारीरिक रोग और मानसिक यंत्रणायें प्रदान करती है। वह विषयलोलुप स्त्रियोंको सन्तानहीन बनाती है, मानों वह उसकी सन्ततिसे घृणा करती है। और यदि इस प्रका-रके पुरुष और स्त्रियोंको सन्तान होती भी है, तो दुर्बल, रोगग्रस्त और लघुजीवी होती है। इन्द्रियासक्त स्त्री पुरुष यदि एकान्तमें छिप कर

प्रकृतिके आईन-विरुद्ध दुष्कर्म करते हैं तो क्या वे सोचते हैं कि हम प्रकृति-को भी धोखा दे देंगे? नहीं नहीं, कदापि नहीं। प्रकृति अन्धी नहीं है। उसकी दृष्टि बड़ी सूक्ष्म और सर्वगामिनी है। वह सब कुछ देखती है और तुरंत ही आईनके अनुसार ऐसे लोगोंको सजा देती है। ऐसे लोगोंकी शारीरिक और मानसिक शक्तिका शीघ्र ही विनाश हो जाता है, मस्तिष्कदौर्बल्यके कारण वे शीघ्र ही पागल हो जाते हैं, सन्तानहीन हो जाते हैं और उनका जीवन क्लेशमय बन जाता है। प्रकृति उन्हें घृणासे आच्छादित कर देती है। इसके सिवाय उन्हें जो मानसिक अनुताप और मानसिक यंत्रणायें होती है, उनकी तो गणना ही नहीं हो सकती। अब यदि हम व्यक्तियों (अकेले मनुष्यों) को छोड़ कर मनुष्य-समूहों यथा समाजोंको लेकर देखें तो उपर्युक्त गुणका महत्त्व और भी अधिक स्पष्ट हो जायगा। यह स्वयं सिद्ध है कि जो जाति अधिक *इन्द्रिय-संयम रखनेवाली होगी और स्त्रियोंका सम्मान करेगी तथा जिस जातिकी विवाह-प्रथा स्थायी और पवित्र होगी, वह दूसरी जातियोंकी अपेक्षा अधिक बलवती और दीर्घजीविनी होगी।*

अण्डमन द्वीपकी वैवाहिक प्रथा।

अण्डमन द्वीपके आदिम निवासी या जङ्गली बाशिन्दे अपनी स्त्रीकी परवाह उसी समय तक करते हैं जब तक कि उसके बच्चे स्तनपान करते हैं। इसके बाद वे उस स्त्रीको छोड़ देते हैं और दूसरी स्त्रीको ग्रहण करते हैं। तब त्यक्त स्त्रीको केवल अपना ही नहीं वरन् अपने बच्चेका भी भरण पोषण करना पड़ता है। क्या प्रकृति इसकी कुछ परवाह नहीं करती? क्या वह सर्वथा उदासीन है? एक नवीन लेखकके विचारानुसार अण्डमनवासियोंकी जाति शनैः शनैः मृत्युके गालमें घुसती जा रही है। उस अन्वेषकने

केवल एक ही ऐसी स्त्रीको देखा था कि जिसके तीन बच्चे थे। इस जातिके कुछ ही मनुष्य चालीस वर्षकी आयु प्राप्त करते हैं। अब अनुमान कीजिए कि यदि मातायें भी उतनी ही स्वार्थरत हो जायँ जितने कि वहाँके पिता होते हैं और दूध छोड़ने पर वे भी बच्चोंको उसी प्रकार छोड़ दें जिस प्रकार पिता छोड़ देते हैं तो यह जाति संसारमें कितने समय तक टिकी रह सकती है ? *निःस्वार्थतासे ही समाज, जाति या कुटुम्ब जीवित और कायम रहता है।*

सदाचार ही सब प्रकारके जीवनका अवलम्ब है।

डारविनने सप्रमाण सिद्ध किया है कि सामाजिक प्रवृत्ति थोड़ी थोड़ी और जानवरोंमें भी विद्यमान है। छोटी छोटी चिड़ियाँ भी अपने बच्चोंके बचानेके लिए भयानक आपत्तिका सामना करती हैं और अनेक बार अपनी जान तक खो देती हैं। यदि संसारमें केवल स्वार्थपरता ही होती, तो इस भू-पृष्ठ पर उन पौधों या उन क्षुद्र कीट पतङ्गोंके सिवाय कि जिनके बच्चे जन्म लेनेके साथ ही अपनी फिकर आप कर सकते हैं और जिनके लालन-पालनकी आवश्यकता नहीं पड़ती—और किसी प्रकारके जीव न बचते। सभी ऊँची श्रेणीके जीवधारी इसी वजहसे जीवित हैं कि आदिमें उनकी खूब रक्षा की गई है और उनका यथेष्ट लालन पालन हुआ है।

सदाचार ही मनुष्योंको पशुओंसे विभाजित करता है।

मनुष्योंका पशुओंसे इस कारण भेद है कि उनकी सामाजिक प्रवृत्ति पशुओंकी अपेक्षा कहीं बलवती है। *डारविनके कथनानुसार जीवधारियोंके उस भागको मनुष्य कहते हैं कि जिसके भीतर बुद्धि, विवेक और निःस्वार्थता परम्पराके नियमों द्वारा बलवती हो गई हो।* इन्हीं गुणोंके कारण मनुष्यको प्रकृतिके और जीवों पर श्रेष्ठता प्राप्त हुई है। यदि समुद्रकी मछलियाँ और

पृथ्वी परके पशु मनुष्यके समान बुद्धि और सहानुभूतिसे युक्त होते, तो क्या उनका पकड़ा और मारा जाना इतना सहज होता ? क्या वे मनुष्यके साथ पूरी पूरी बराबरी नहीं कर सकते ? हम मनुष्य इस कारण हैं कि हम लोग एक दूसरेकी परवाह करते हैं और वे पशु इस कारण हैं कि उनमें सामाजिकता नहीं है। मौका पड़ने पर प्रत्येकको अपनी लड़ाई आप लड़नी पड़ती है; वे परस्पर प्रेम और सहानुभूतिके सूत्रमें गुँथे हुए नहीं हैं।

एकता ही बल है, यह एक साधारण सिद्धान्त है। प्रतिक्षण प्रतिमुहूर्त, प्रतिघण्टे और प्रतिदिन हम इसे अपनी आँखोंसे देखते हैं। अकेला मनुष्य एक पत्थरके टुकड़ेको भी नहीं उठा सकता, परन्तु बहुतसे मनुष्योंकी बुद्धि और बलके सहयोगसे बड़े बड़े पहाड़ भी विदीर्ण कर डाले जाते हैं। समाज भी इसी एकताका विकास है। सदाचार इस एकताके साधनका उपाय है, अतएव जिस समाजमें जितनी अधिक एकता होगी वह उतना ही अधिक बलवान् होगा।

जातियोंमें जीवन-कलह और उसमें सदाचारका भाग।

जीवनके लिए केवल मनुष्य ही नहीं, वरन् जातियाँ भी लड़ा करती हैं और प्राकृतिक चुनावका नियम (Law of Natural Selection) अयोग्य जातियोंका विनाश उसी प्रकार करता है जिस प्रकार अयोग्य व्यक्तियोंका। इस विषयमें डारविनके कथनका समर्थन कौन न करेगा ? उन जानवरोंको भी—जो झुण्डों और यूथोंमें रहा करते हैं और मिल जुल कर शत्रुओंसे अपनी रक्षा या उनपर आक्रमण करते हैं—आपसमें सद्व्यवहार करना पड़ता है और यदि उनका कोई सरदार होता है तो उन्हें उसकी आज्ञा माननी पड़ती है। जब जानवरोंकी

यह दशा है तो आप विचार कर सकते हैं कि मनुष्योंको सच्चरित्र होनेकी कितनी आवश्यकता है? यदि किसी जातिके मनुष्य आपसमें सदा हत्या, डकैती और धोखेबाजी किया करते हैं, तो अपने किसी बाहरी शत्रुके न रहने पर भी वे कितने दिन तक जीवित रह सकते हैं! और यदि कहीं उनका कोई शत्रु भी हुआ तो फिर कितने शीघ्र वे उसके अधीन हो जायँगे? बात यह है कि कोई जाति या परिवार जीता रह ही नहीं सकता यदि उसमें दुराचारकी अपेक्षा सदाचारकी मात्रा अधिक न हो। मानों प्रकृति हमें सच्चरित्र होनेके लिए मजबूर करती है चाहे हममें सदाचार या धर्मप्रेम हो या न हो। केवल वे ही जातियाँ जीती रहती हैं और पूर्ण जीवन प्राप्त करती है जिनमें आत्मवशता, सद्व्यवहार, सार्वजनिक-हित-साधनकी इच्छा तथा नियमाधीन रहनेका स्वभाव विद्यमान हो। दूसरी जातियाँ जो प्राकृतिक शर्तोंको पूरा नहीं करतीं अवश्य विनाशको प्राप्त होती हैं। डारविन कहते हैं कि जिस जाति या क़ौममें देशभक्ति, सद्व्यवहार, आज्ञापालन, बहादुरी, दया और सहानुभूतिकी मात्रा बढ़ी हुई है—जहाँ एक दूसरेकी मदद करनेके लिए सदा तत्परता रहती है—जहाँ लोग सार्वजनिक हितके लिए आत्मोत्सर्गसे भी नहीं हिचकते—वह जाति निःसन्देह दूसरी जाति पर विजय प्राप्त करेगी और इसीका नाम प्राकृतिक चुनाव है।

सभ्य जातियोंको सदाचारकी और भी अधिक आवश्यकता है। इसीके कारण संसारमें सभ्य राष्ट्रोंके झण्डे आकाश चूम रहे हैं। डारविनके मतके अबोध अनुवाद करनेवाले हमें अपनी सर्व-जन-हितैषिताके रोकने तथा अपने अनाथालयों और अस्पतालोंके बन्द करने तथा गरीबों निराश्रयोंको कोई आश्रय न प्रदान करनेकी मन्त्रणा देते हैं, पर यह सभ्यताकी ऊँची सीढ़ी पर चढ़ना नहीं है, वरन् उससे

नीचे उतरना और फिरसे जङ्गली बनना है। यह उन अमेरिकन रेड इण्डियनोंका—जो अपने दुर्बल और जर्जर साथियोंको मैदानमें मरनेके लिए छोड़ देते हैं, या उन फिजीयनोंका—जो अपने माता पिताके वृद्ध होने या बीमार पड़ने पर उन्हें जीते गाड़ देते हैं, या उन जानवरोंका—जो अपने जख्मी साथियोंको अपने गरोहसे बाहर निकाल देते हैं और तड़पा तड़पा कर उनका प्राण लेते हैं—अनुकरण करनेके समान है। नहीं, डारविनके ऐसे निठुर अनुवाद करनेवालोंसे बहुतसे जानवर और जंगली भी अपने भावों और जज़बातमें कहीं श्रेष्ठ हैं। डारविनने ऐसे हिन्दुस्तानी कौओंका जिक्र किया है जो अपने दो तीन अन्धे साथियोंका भरण पोषण करते थे। * डारविनने स्वयं अपनी आँखोंसे एक ऐसे कुत्तेको देखा था जो एक टोकनीमें पड़ी हुई बीमार बिल्लीके समीपसे, उसके मुँहको दो एक बार चाटे बिना, कभी आता जाता न था। यदि तुम इस सामाजिक प्रवृत्तिका विनाश कर दो, मनुष्यान्तरस्थ दया और सहानूभूतिके स्रोतको शुष्क कर डालो, तो देखोगे कि बहुत ही जल्द समाजका विच्छेद हो जायगा, समाज ढीला पड़ जायगा, उसके अंग शिथिल हो जायँगे, अराजकताका साम्राज्य हो जायगा और समाज और जातिके निर्माणका काम फिर जड़से शुरू करना पड़ेगा। युद्धमें—अन्तर्जातीय प्रतिद्वन्द्वतामें—सदाचार-शून्य जातिका अवश्य विनाश होगा। सामाजिक जातिके देशप्रेम, जातिप्रेम, उत्साह और ऐक्यके मुकाबलेमें ऐसी जातियोंको अवश्य नीचा देखना पड़ेगा। सदाचार ही एक ऐसी आकर्षण शक्ति है जो समाजको स्थिर और कायम रक्खे हुए है। प्राण-पंखेरूके उड़ जानेसे शरीरमें किसी आकर्षणके बाकी न रहने पर जैसे अणुओं और पर-

---

* देखो इसके पहलेका अध्याय।

माणुओंसे बना हुआ संगठित शरीर एकदम छितरा जाता है, वही दशा सदाचार-विहीन समाजकी भी होती है।

नैतिक पतनसे ही जातियोंका पतन होता है।

इसमें किसीको भी सन्देह न होगा कि प्राचीन मिश्र (इजिप्ट) खुल्द, बैबिलौन, असीरिया, और फ़ारसका विनाश इसी कारण हुआ कि वे जीनेके योग्य न थे। इसी कारण संसार-विजयी रोम जङ्गलियों द्वारा परास्त हुआ और प्राचीन यूनानका जीवनान्त हुआ, और इसी कारण एकता-विहीन होनेके कारण हमारी भी वर्तमान अवनति हुई। स्पार्टा बुद्धिमें दूसरे यूनानी राष्ट्रोंसे श्रेष्ठ नहीं था, परन्तु वह केवल अपनी एकता और राष्ट्रीय नियमोंके सदा आदर करनेहीके कारण थोड़े दिन तक यूनानमें अपना मस्तक सबसे ऊँचा किये रहा। इसलामके इतिहासमें भी यही बात हुई। केवल एकता और सहधर्मियोंके प्रति अनन्त प्रेमके कारण ही इसलामने एक समय तहलका मचा दिया था और युद्धमें अपनेसे अधिक श्रेष्ठ और उन्नत जातियोंके भी छक्के छुड़ा दिये थे। विद्या और बुद्धिमें एक प्राचीन अथीनियन (एथेन्स-निवासी Athenian) आधुनिक अमेरिका और इँग्लण्डके आदमियोंसे उतना ही बढ़ा हुआ था जितना हब्शियों (Negros) से आजकलके अँगरेज़ और अमेरिकन। तो फिर कला, शिल्प और सौन्दर्य्यकी खान इस अलौकिक जातिकी मृत्यु क्यों हुई ? सामाजिक दुराचारके कारण, खुले शब्दोंमें विवाह-प्रथाके कमज़ोर होने एवं उसके उठ जानेके कारण और वेश्याओंके एकाधिपत्य लाभ करनेके कारण। यहाँ पर प्राचीन ग्रीस और रोमके व्यभिचारका उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। इन देशोंके व्यभिचारका स्मरण करनेसे यह साफ़ सिद्ध होता है कि यही इन देशोंके अधःपतनका प्रधान कारण था।

प्राचीन ग्रीस और रोममें व्यभिचार ।

प्राचीन ग्रीसमें वेश्याओंको जो प्रधानता प्राप्त हुई थी, वह और किसी देशमें नहीं हुई । वहाँके समाजमें उनका जो स्थान था, उनके पास जो धन-वैभव था और उनमें जो गुण तथा सौन्दर्य था, वह हमारे लिए कल्पनातीत है । ग्रीस-कलाकी जान वेश्यायें ही थीं । यूनानी मूर्ति-तक्षक उनको लक्ष करके देवियोंकी मूर्तियाँ गढ़ा करते थे । ग्रीसका प्रसिद्ध चित्रकार एक मालिनकी लड़कीको बहुत प्यार करता था और फूलोंके बीचमें बिठा कर उसका चित्र खींचा करता था । उसने अपने काममें इसी प्रकार निपुणता प्राप्त की थी । पिण्डार और साइमोनाइडीज (ग्रीसके प्रसिद्ध कवि) वेश्याओंकी स्तुति किया करते थे । पिरिक्लीजकी प्रेमिका अस्पेसिया केवल अपने सौन्दर्य्यके लिए ही नहीं, बल्कि अपने गुणोंके लिए भी प्रसिद्ध थी । पिरिल्कीज-को वाक्चातुर्य्यकी शिक्षा उसीसे मिली थी और उसके बड़े बड़े व्याख्यानोंको अकसर वही लिख दिया करती थी । राष्ट्रीय बातोंमें भी पिरिक्लीज उससे सलाह लिया करता था । अन्य दार्शनिकोंकी तरह साक्रेटीज (सुकरात) भी उसकी मजलिसोंमें जाया करता था । डायोटिमा नामक एक दूसरी वेश्यासे स्वयं सुकरातने भी शिक्षा पाई थी। सुकरातने इस बातको स्पष्टतासे स्वीकार किया है और उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की है। लियोन्टियम नामकी वेश्याको इस बातका गर्व था कि वह एपिकुरसके मुख्य शिष्योंमेंसे एक थी ।

परन्तु क्या प्राचीन ग्रीसकी सभी वेश्यायें इसी तरहकी थीं ? नहीं, कदापि नहीं । उनका अधिकांश जैसा कि सर्वत्रका नियम है पाप और अधमताके गहरे कूपमें सरसे पैर तक डूबा हुआ था । पूर्वोक्त उदाहरणोंके देनेका तात्पर्य्य केवल इतना ही है कि प्राचीन ग्रीसमें वेश्यायें किस दृष्टिसे

देखी जाती थीं, इस बातको पाठक समझ जायँ। यद्यपि वहाँ वेश्याओंका वह सम्मान नहीं था जो विवाहिता स्त्रियोंको प्राप्त था, तथापि ग्रीस-निवासी यह समझते थे कि धर्मपत्नी और वेश्या इन दोनोंका स्थान जीवनमें नियत है और इन दोनोंहीकी आवश्यकता है। वेश्याओंकी इस प्रधानताका, उनके वैभवका और उनके प्रति लोगोंकी असीम श्रद्धाका प्रभाव ग्रीस देश पर अच्छा न पड़ा। वैवाहिक बन्धन नीची दृष्टिसे देखा जाने लगा। एक ग्रीक कविका कथन है कि "विवाहितावस्थामें दो ही दिन बड़े आनन्दके हैं—एक दिन तो वह, जब पति अपनी नई दुलहिनको प्रथम प्रथम आलिंगन करता है; और दूसरा वह दिन, जिस दिन वह अपनी स्त्रीको कब्रमें सुला आता है।" इन ही कारणोंसे लोग विवाहितावस्थाको नापसन्द करने लगे। कौटुम्बिक जीवनको छोड़ कर लोग कुलटाओं और वेश्याओंके साथ जीवन बिताने लगे। विवाहित लोग भी खुल्लमखुल्ला वेश्यायें रखते थे।

बुरे दिनोंके आनेके पहले रोमकी भी यही शोचनीय अवस्था हुई थी। वहाँके लोग भी विवाहसे इसी प्रकार विरक्त हो गये थे। पूर्ण स्वतंत्रताके सामने वैवाहिक बन्धनको कोई पसन्द न करता था। विवाहबन्धन अत्यन्त ढीला हो गया था। जरा जरासी बात पर साधारणसे साधारण और मिथ्यासे मिथ्या बहाना मिलने पर यह छिन्न हो सकता था। केवल पुरुष ही नहीं, स्त्रियाँ भी बड़ी फुर्तीसे विवाहोच्छेद कर देती थीं। सेनेका कहता है कि रोममें ऐसी भी स्त्रियाँ थीं जो वर्षोंको कौन्सलों (रोमके प्रधान मजिस्ट्रेटों) के चुनाव और उनकी तबदीलीसे नहीं बल्कि अपने पतियोंकी संख्या परसे गिना करती थीं! एक रोमनलेखक ऐसी

स्त्रियोंका ज़िकर करता है कि जिनके दस दस पति हो चुके थे। जुव्हनल (Juvenal) ने एक स्त्रीके बारेमें लिखा है कि पाँच वर्षके अन्दर उसके आठ पति हो चुके थे! सेंट जेरोमने एक ऐसी स्त्रीका वृतान्त लिखा है जो अपने तेईसवें पतिके साथ रहती थी और अपने पतिकी इक्कीसवीं स्त्री थी! हो सकता है कि ये असाधारण घटनायें हों; परन्तु विवाहकी अस्थिरता तथा समाजकी नैतिक अवस्थाका इनसे अच्छी तरह पता चल जाता है। रोमका नैतिक अधःपतन यहाँ तक हो चुका था कि टाइबेरियसके समयमें एक ऐसा कानून बनानेकी जरूरत हुई जिससे उच्च कुल-की रमणियाँ अपना नाम वेश्याओंके रजिस्टरमें न लिखा सकें—वेश्यायें न बनें। रोममें कुछ तमाशे और अभिनय ऐसे भी होते थे जिनमें नग्न वेश्याओंकी दौड़ होती थी। रोमके मुग्धाभिनयों (Pantomimes) में अश्लीलता और पाप-कादर्य्यके अतिरिक्त और कुछ न होता था। लोग यहाँ तक विषयासक्त हो गये थे कि प्रायः प्रत्येक घरकी दीवारों पर अश्लील चित्र अङ्कित होते थे। अतः कोई आश्चर्य्य नहीं यदि रोम जैसे प्रतिभाशाली और शक्ति-सम्पन्न साम्राज्य-का विनाश हो गया। ग्रीस और रोमकी नैतिक अवस्थाके इतिहासका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए लेकीकी History of European Morals नामक पुस्तकको पढ़ना चाहिए।

समाजिक उन्नतिके लिए लैंगिक स्वच्छता परमावश्यक है। शुद्ध लैंगिक सम्बन्ध—एक पुरुष या एक स्त्रीके एक ही पति या पत्नी होनेकी प्रथा—से ही समाजका मंगल हो सकता है। व्यभिचारग्रस्त समाज अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकता। ऐसे समाजमें बच्चोंका लालन पालन अच्छी तरहसे नहीं हो सकता और इसलिए

ऐसे समाजके लोग दुर्बल और अयोग्य होते हैं। फल यह होता है कि कुछ ही दिनोंमें उक्त समाज काल-कवलित हो जाता है।

शुद्ध और उन्नत पारिवारिक जीवनके लिए शुद्ध और सुदृढ़ वैवाहिक प्रथाका स्थापित होना अनिवार्य है। जब हम यह स्मरण करते हैं कि पुरुष और स्त्रीके मिलनेसे ही सच्चरित्रता, सहृदयता, सहिष्णुता, इत्यादिका आरम्भ होता है, तब लैंगिक स्वच्छता पर विशेष कहना अनावश्यक प्रतीत होता है। सदाचारका अंकुर—निस्वार्थताकी जड़—पुरुष और स्त्रीके इसी सम्बन्धमें है। जाति, देश या संसारके प्रति प्रेम दिखलानेके पहले मनुष्य अपनी स्त्री, और पुत्र पुत्रियोंके साथ ही प्रेम दिखलाता है। स्त्री और परिवार ही निःस्वार्थताके शिखर पर चढ़नेकी प्रथम सीढ़ियाँ हैं। विशृंखल लैंगिक सम्बन्धके द्वारा मनुष्य-स्वभावकी कठोरता और स्वार्थपरताका विनाश नहीं हो सकता। उसका जीवन ही निःसार और फीका हो जाता है और उसमें तथा पशुमें कोई भेद नही रह जाता। विचारकोंसे छिपा नहीं है कि पुरुप स्त्रीका प्राकृतिक खिंचाव ही सारी ललित कलाओं, कविताओं और उपन्यासोंकी जान है। तब व्यभिचारग्रस्त समाज इनका रसास्वाद कैसे कर सकता है? ऐसे समाजमें ऐसी कोई शक्ति विद्यमान नहीं है जो पुरुषों या स्त्रियोंको अपनी पत्नियों या पतियों तथा बच्चोंके लिए कष्ट झेलनेके लिए उत्तेजित कर सके। यदि विचार कर देखा जाय तो विदित होगा कि साधारणसे साधारण मनुष्य भी केवल अपने ही लिए जीवन धारण नहीं करता। मामूलीसे मामूली आदमी भी अपनी स्त्री और बच्चोंके लिए कष्ट उठाता है। अतः विवाह ही सदाचारका प्रथम शिक्षक है।

तब, इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि मानव-समाजकी भलाईके लिए लैंगिक स्वच्छता अनिवार्य्यतः आवश्यक है। इसलिए

प्रत्येक मनुष्यको सचेत हो जाना चाहिए और अपने उत्तरदायित्वका खयाल कर लेना चाहिए। हमें याद रखना चाहिए कि वह मनुष्य जो वास्तवमें दुराचारी न होने पर भी—केवल मनसे भी स्त्रियोंके बारेमें बुरे विचार रखता है, उनकी अवज्ञा होने पर क्रोध नहीं करता है और उन्हें अपवित्र दृष्टिसे देखता है, या अपने चित्तमें जघन्य विचारोंको स्थान देता है, और अपवित्र परिहाससे अपने होठोंको कलुषित करता है—वह हमारी सामाजिक दुराचाररूपी तरङ्गोंको और भी चञ्चल बनाता है, तथा संसार और मानव-समाजका अहित करता है।

प्रकृतिका न्याय और उसका संदेश।

प्राकृतिक चुनावका नियम पहले विद्यमान था और भविष्यमें भी रहेगा। अपराधियोंको दण्ड देनेमें प्रकृति जरा भी सङ्कोच नहीं करती। प्रकृति उच्च और गम्भीर स्वरके साथ चिल्ला चिल्ला कर कह रही है कि "वह जाति—जिसके कि शासक विलासतामें डूबे हुए हैं, कामोन्माद-में सराबोर हैं, इन्द्रियपरतामें तर बतर हैं, दुर्बलों, दरिद्रों, और अनाथोंसे घृणा करते हैं—जीवित नहीं रह सकती। कमजोर जातियों पर दाँत लगाये, टकटकी बाँधे, मुहँ फाड़ कर बगुलोंके समान उन्हें उदरस्थ करनेकी कामना रखनेवाली बलवती जातियाँ जीती न रहेंगी। जो जाति केवल बल और तलवारके ही साम्राज्यको मानती है वह तलवारसे ही मरेगी। न्याय, धर्म और सदाचारके अतिरिक्त मैं किसी भी देश या जातिकी परवाह नहीं करती। ऐ संसारकी वर्त्तमान जातियो, यदि तुम मुझे ध्यानमें न रक्खोगी, तो बाबिलौन, यूनान और रोमकी तरह तुम भी सदाके लिए अन्तर्हित हो जाओगी। मैं न्याययुक्त, धार्मिक और पुण्यात्मा राष्ट्र चाहती हूँ। मुझे सीधे सादे स्वभावके, स्वच्छ हृदयके, निर्विकार दिलके तथा जुबानके सच्चे मनुष्य प्रिय हैं। मैं

ऐसे लोगोंको प्यार करती हूँ जिन्हें सत्य जीवनसे भी प्यारा है, और जो अपने राष्ट्रके दीपनिर्वाण होने तकको उसके पापाचारी और अन्यायी होनेसे भला समझते हैं। मैं इतना ही चाहती हूँ। ऐ मनुष्यकी सन्तानो, क्या तुममें मुझे तृप्त करनेकी शक्ति है? यदि तुम मुझे सन्तुष्ट कर सकोगे तो मैं तुम्हें सदाके लिए अजर अमर और अजेय कर दूँगी; जबतक सूर्य्यमें ताप, चन्द्रमामें ठंढक, नभमें नक्षत्र, और आकाशमें नीलवर्ण है—नहीं नहीं जब तक कालका स्रोत बहता है, तब तक मैं तुम्हारी यशःकीर्ति और सुख्यातिकी दुन्दुभी बजाती रहूँगी।"

अतएव सत्यपथ पर चलनेमें, पापों, बुराइयों, अन्यायों और निर्दयतासे लड़नेमें, संसारके ताप और दुःख निवारण करनेकी चेष्टामें, दुर्बलोंको अधिकारकी उपलब्धि कराने और उन्हें अत्याचारसे मुक्त करनेकी कामनामें प्रकृति भी हमारा साथ देती है। प्रकृतिके अनन्त शक्तिशाली नियम हमारा साथ देते हैं। प्रकृति हमें सन्तुष्ट दृष्टिसे, प्रफुल्ल मुखसे, और मन्द मुसकाते हुए होठोंसे देखती है। सदाचारकी ओर प्रवर्तित होनेके लिए मनुष्यको इससे अधिक और क्या जाननेकी आवश्यकता रह जाती है?

२–युद्ध, जीवन-संग्राम और सदाचार।

विकास का वर्गीकरण।

स्पेन्सरने विकासको तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया है। उसका वर्गीकरण इस प्रकार है—निर्जीवविकास (Inorganic Evolution), आंगिक विकास (organic Evolution) और अंगातीत विकास (Superorganic Evolution)। विकासवादके विद्यार्थीको प्रथम श्रेणीमें वे बातें मिलती हैं जिनका वर्णन ज्योतिषशास्त्र और भूगर्भशास्त्रमें किया जाता है—यथा, पृथ्वीका पहले क्या स्वरूप था, तथा एक साधारण बदलीसे इस पृथ्वीका और इस परके सारे पदार्थोंका किस प्रकार विकास हुआ। दूसरे शब्दोंमें, ज्ञानके इस अंशको पृथ्वी और पदार्थके जीवनका इतिहास अनुमान करना चाहिए। द्वितीय श्रेणीमें वे बातें हैं जो प्राणिशास्त्रमें वर्णित होती हैं। अर्थात् आंगिक विकासके अध्ययनसे हमें प्राणियोंके जीवन-इतिहासका पता चलता है। हमें मालूम होता है कि क्षुद्रसे क्षुद्र जीवाणुओंसे लेकर संसारके उन्नतसे उन्नत प्राणियोंकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई है, किस किस प्रकार किन किन कारणोंसे जीवोंका शारीरिक विकास हुआ है, इत्यादि। परन्तु विकासकी एक तीसरी श्रेणी भी है जिसे अन्य किसी उपयुक्त शब्दके न मिलनेके कारण स्पेन्सरने 'अंगातीत विकास' कहा है। इस तरहके विकासका आरम्भ जीवोंके बहुत उन्नत होने पर होता है। अनेक जंगम (organic)

जीवोंके एक साथ संगठित होने—अर्थात् जीवोंके मध्य सामाजिकताका पदार्पण होनेसे ही इसका 'श्रीगणेश' होता है। यद्यपि मनुष्यके अतिरिक्त कुछ अन्य जीवोंमें भी सामाजिकताका धुँधलासा प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है, परन्तु मानव जातिमें ही यह स्पष्टताके साथ दिखलाई पड़ती है और इसलिए यदि हम कहें कि मनुष्य समाजमें ही इस तरहके विकासका आरम्भ होता है तौभी कोई बड़ी भूल न होगी। अतएव इस *तृतीय प्रकारके विकासको हम विशेष रूपसे मनुष्यका विकास कह सकते हैं। हम कह सकते हैं कि इसके अन्तर्गत जो प्राकृतिक नियम हैं, वे ही मानव जीवनके भी नियम हैं।*

सदाचार ही अंगातीत विकास या सामाजिक जीवनकी कुंजी है।

अंगातीत विकासके आरम्भ होनेके पूर्व तक युद्ध ही इस जीवनका नियम रहा है, बल्कि बादको भी अनेक समय तक मनुष्यके भाग्य-निर्माणमें युद्धने बहुत बड़ा भाग लिया है। जीवन-संग्रामका अर्थ ही युद्ध है। जीवोंको आदि अवस्थामें बहुत समय तक शारीरिक बल या युद्ध-कौशलहीके द्वारा जीवन-संग्राममें सफलता प्राप्त होती रही है; परन्तु कालान्तरमें जीवोंके मध्य सामाजिकताका भी प्रादुर्भाव हुआ—स्वेच्छाचारी जीवनके स्थान पर सामाजिक जीवन प्रतिष्ठापित हुआ और तब सफलताका साधन युद्ध न रहा, वरन् इसके लिए *सदाचारका—जो कि सामाजिक जीवनकी कुंजी है*—आश्रय ग्रहण करना पड़ा। मनुष्यने साधारणतः जान लिया कि प्रकृति शारीरिक बल और पराक्रमकी अपेक्षा सच्चरित्रताको कहीं अधिक पसन्द करती है। उसने जान लिया कि मनुष्य सामाजिक जीव है, बिना समाजके न तो मानव-जीवन पूर्ण ही हो सकता है और न टिका ही रह सकता है। उसने

अनुभव कर लिया कि सदाचारके ही द्वारा पूर्ण सामाजिक जीवनकी प्राप्ति हो सकती है। अतएव यह स्पष्ट है कि *उन्नत अवस्थामें सफलताका साधन युद्ध नहीं, वरन् सदाचार है। यह सदाचार ही जीवनका नियम है। बिना सदाचारके मनुष्यका जीवन तक असम्भव है।*

अभी तक मनुष्यकी सामाजिक प्रवृत्तिका दृढ़ीकरण पूर्णताके साथ नहीं हुआ है।

परंतु मनुष्यने अभीतक अपने स्वार्थी, स्वेच्छाचारी और असामाजिक स्वभावको सर्वथा नहीं छोड़ दिया है। लड़ाईको वह अब भी प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखता है। युद्धमें अनेकों निर्दोष व्यक्तियोंकी हत्या करनेवाले—असंख्योंको अनाथ और निराश्रित बनानेवाले—हरे भरे खेतोंको मरुस्थल सदृश बनानेवाले—कोलाहलपूर्ण ग्रामोंको सदाके लिए निस्तब्ध कर देनेवाले—उद्भट योद्धा शांत व्यवसायियों और निरुपद्रवी श्रमजीवियोंकी अपेक्षा अधिक सम्मान प्राप्त करते हैं। नेपोलियन और सीजर सदृश लोगोंको देवताओंका सा आदर प्राप्त होता है। इनके नामोंके पीछे 'महान्' शब्द जोड़ा जाता है। हम अभीतक समझते हैं कि युद्धमें मरनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। इतना ही नहीं, बहुतसे देशोंके विद्वान् राजकर्मचारी तो युद्धकी उपयोगिताको वैज्ञानिक रीतिसे भी प्रतिपादित करते हैं और मानव जातिकी उन्नतिके लिए युद्धको बहुत ही आवश्यक सिद्ध करते हैं।

अब यदि—जैसा कि हमने इस अध्यायके पहले खण्डमें प्रमाणित करनेकी चेष्टा की है और इसमें मतभेद होना असम्भव जान पड़ता है—सदाचार ही सामाजिक जीवनकी कुंजी है, अर्थात् सदाचारके द्वारा ही मनुष्यका विकास और उन्नति हो सकती है, तो युद्ध-

वाद और सदाचारके सम्बन्धको देखनेहीसे युद्धवादकी उत्तमता और निकृष्टता पूर्ण रूपसे प्रमाणित हो जायगी। हम अपने अन्वेषणमें अनुमानवाद (deduction) और व्याप्तिवाद (induction) दोनोंसे काम लेंगे।

युद्ध और सदाचारका सम्बन्ध देखनेसे युद्धकी उपयोगिता और अनुपयोगिता पूर्णताके साथ प्रमाणित हो जाती है।

प्रथम विचार-पद्धतिके अवलम्बन करनेसे यह स्पष्ट देख पड़ता है कि *युद्धवाद और सदाचारमें स्वाभाविक विरोध है।* सदाचारकी स्थिति सामाजिकता, सहृदयता, समवेदना, न्यायपरता आदि भावों पर है और युद्धवादके साथ इन भावोंकी स्वाभाविक शत्रुता है। शत्रुओंको मार गिराना, उनकी पत्नियोंको पति हीना और उनके बच्चोंको मातृ-पितृ-हीन बनाना ही तो युद्धका उद्देश होता है। तब युद्धनीतिमें सहानुभूति और सहृदयताको कोई स्थान कहाँसे प्राप्त ही सकता है? न्यायका पहला सिद्धान्त तो यही है कि दूसरोंके प्रति ऐसा कोई काम न करो जिसे तुम स्वयं अपने प्रति किया जाना नापसन्द करते हो। तब युद्धमें न्यायपरता कहाँसे बर्त्ती जा सकती है? छल, बल, कौशल या चाहे जिस प्रकारसे विजय लाभ करना ही युद्धका प्रधान लक्ष्य है। भारतके युद्धोंमें भी—जहाँकी युद्धन्याय्यता जगद्विख्यात है—छल और कौशलका एक मात्र अभाव नहीं है। उदाहरणके लिए द्रोणाचार्य्य और अभिमन्युके वधका नाम ले देना ही पर्य्याप्त होगा। ऐसी दशामें न्यायपरता और युद्धवादमें मित्रता कैसे हो सकती है? युद्ध एक बहुत बड़ा अभिशाप है जो हमारी सहानुभूतिको शिथिल करता है, हमारे जीवनकी गतिको रोकता है, हमारी उन्नतिमें बाधा डालता है, हमारे हृदयको फैलने नहीं देता, हमें दूसरोंके—संसारमात्रके, सुखसे

युद्ध हृदयको सहृदयताशून्य बनाता है।

सुखी और दुःखसे दुखी नहीं होने देता, अपनी हृदय-तंत्रीको दूसरोंकी हृदय-तंत्रीके साथ मिलाने नहीं देता, हमारे फैलते हुए हृदयको मसोस देता है, हमारी लहलहाती हुई सहानुभूति-लतिकापर तुषारवर्षा करता है, और हमें निर्दयता और निष्ठुरताका पाठ पढ़ाकर हमारे धकधक करनेवाले हृदय-स्पन्दनको निस्तब्ध करता है। युद्धवादके मरुस्थलमें सहानुभूतिकी कलकलनादिनी गङ्गा प्रवाहित नहीं हो सकती। युद्ध-वादके प्रचण्ड ताप-मय, निरार्द्र निदाघमें सहृदयताका इन्द्र-धनुष उदित नहीं हो सकता।

हृदयके अधिक संक्षोभ्य होनेको ही विकास कहते हैं।

परन्तु जीवनके इतिहास पर नज़र दौड़ानेसे तो यही विदित होता है कि चेतनाके बढ़ने और हृदयके अधिक संक्षोभ्य होनेका ही नाम विकास है। चेतनाके विकासको ही जीवनकी उन्नति या विकास कहते हैं। अतएव युद्ध-वाद विकासके नियमों और जीवनके नियमोंके प्रतिकूल है। यदि इसे जानकर भी हम युद्धवादी बने रहेंगे तो हमें इसका अवश्यंभावी फल अवश्य चखना होगा। प्रकृति किसीके अधीन नहीं है। उसके नियमोंकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। अतएव हमें उसके नियमोंका पालन करना ही पड़ेगा चाहे हमारी इच्छा हो या न हो, अन्यथा हमें मर मिटना पड़ेगा।

युद्ध और जीवन-संग्राम।

कुछ विद्वानोंके कथनानुसार यदि जीवन-संग्राम इस संसारमें सदैव विद्यमान रहे, तौभी इसके द्वारा युद्धकी उपयोगिता कदापि प्रमाणित नहीं होती। प्राकृतिक चुनावका नियम सदाके लिए जारी रह सकता है—अपने प्यारे जीवों और जातियोंके निर्वाचनके काममें प्रकृति

सदा लगी रह सकती है—परन्तु हमें यह जान लेना चाहिए कि उन्नत अवस्थामें सफलताके लिए किन किन बातोंकी आवश्यकता है। यह प्रमाणित किया जा चुका है कि उन्नत अवस्थामें सफलताके लिए सदाचार ही एक मात्र आवश्यक वस्तु है। प्रकृति सच्चरित्रताको पसन्द करती है और सच्चरित्रोंको चुनती है, न कि सबसे अधिक लड़ाकुओंको। युद्ध करके—अन्यायका अवलम्बन करके—निर्बलों और निस्सहायों पर जुल्म करके—अपना जीवन व्यतीत करना पशुओंके लिए ठीक हो सकता है, चेतना-युक्त, ज्ञान-युक्त मनुष्योंके लिए नहीं। और यदि हम सचमुच ही युद्धके लिए व्याकुल हैं तो क्या हमारे सामने कोई और शत्रु नहीं है, जो हम मनुष्योंसे लड़ते हैं और उनका खून बहाते हैं? क्या दुःख और दारिद्र, व्याधि और अज्ञानसे लड़नेमें कम शूरता है? नहीं, इन ही शत्रुओंके साथ लड़ने, इन्हें परास्त करने और नहीं तो स्वयं युद्धक्षेत्रमें वीर-गति प्राप्त करनेमें ही सच्ची शूरता केन्द्रीभूत है। याद रहे कि युद्ध करनेमें—अपनी बढ़ी हुई शक्तिके द्वारा दूसरोंको धर दबानेमें—उनके घर द्वार, वस्तु सम्पत्ति पर अधिकार जमानेमें—बलात् छीन लेनेमें—कोई वीरता नहीं है, वरन् यह नामर्दी, कायरता, भीरुता और कापुरुषताका ही परिचायक है। युद्धमय जीवन-संग्रामके द्वारा—निष्ठुरता और निर्दयताके द्वारा—पशुओंका चुनाव हो सकता है, अच्छोंका या वास्तविक मनुष्योंका नहीं। युद्धके द्वारा जो चुनाव होता है वह बेईमानीका चुनाव है, उसमें अन्याय मिला होता है। यह चुनाव सभी मनुष्योंको समान अधिकार और अवसर देकर नहीं किया जाता—इसमें दबाव और बलप्रयोगका समावेश होता है। इसलिए युद्धमें कोई वीरता नहीं है।

युद्ध वास्तविक शूरताका नहीं, वरन् पशुताका और अमानुषताका ही परिचय देता है।

युद्धका प्रभाव ।

प्रकृति अपने नियमके अनुसार वैयक्तिक जीवनकी अपेक्षा उपजातियोंके जीवनकी और उपजातियोंके जीवनकी अपेक्षा जातियोंके जीवनकी अधिक परवाह करती है । जाति-रक्षाके लिए वह व्यक्तियों और उपजातियोंके बलिप्रदानसे कुण्ठित नहीं होती । अतएव इस स्थान पर हम युद्ध-वादकी उत्तमता और निकृष्टतापर जो विचार कर रहे हैं वह सारी मनुष्यताके ऊपर इसके परिणामोंके लिहाज़से करते हैं, व्यक्ति विशेषकी हानि लाभ या जातिविशेषके उत्थान और अधःपतनके लिहाज़से नहीं । पर क्या विजयी व्यक्तियों और जातियोंको भी युद्धके द्वारा स्थायी लाभ होता है ? नहीं, कदापि नहीं । प्रमाणके लिए इतिहास मौजूद है । आज प्राचीन समयके समुन्नत मिश्र, खुल्द, असीरिया और बेबिलोन कहाँ हैं ? आज संसार-विजयी रोमका झंडा कहाँ कहाँ उड़ रहा है ? आज सिकन्दरके जन्मदाता यूनानकी क्या हालत है ? परन्तु यही भारत—जिसके दर्शन और आध्यात्म-तत्त्वकी निन्दा की जाती है —भौतिक बल और विभवकी उपेक्षा करनेके कारण लोग जिसपर हँसा करते हैं—जो जीवमात्र पर दया और अहिंसाका आदेश देता है—जो मनुष्योंका तो क्या पशुओंका भी खून बहाना नहीं चाहता —आज भी संसारमें आध्यात्मिकताकी लहरें भेज रहा है, एवं गर्वपूर्वक संसारकी विजयी और धन-बल-ऐश्वर्य-मत्त जातियोंके प्रति कह रहा है—

" न धनेन न प्रजया त्यागेनैकेन अमृतत्वमानुषः । "

सैनिक समाज उन्नति-शील कदापि नहीं हो सकता । उन्नतिके लिए परमावश्यक वस्तु वैयक्तिक स्वतंत्रता है । परन्तु स्वतंत्रता और सैन्यवादमें स्वाभाविक विरोध है । पलटनका प्रत्येक सिपाही युद्धके

सम्बन्धमें अपनी राय नहीं दे सकता और न किसी सेनाके अध्यक्षका प्रत्येक सिपाहीसे पूछकर काम करना बुद्धिमत्तामें शामिल हो सकता है। अतएव सैनिक समाजमें व्यक्तित्व या स्वतंत्रताको कोई स्थान प्राप्त नहीं है, क्योंकि आज्ञाधीनता ही सैनिक समाजकी जान है। व्यक्ति शासकके कामोंमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता। उसे केवल निष्प्राण कठपुतलीकी भाँति शासकोंका आज्ञापालन करना चाहिए। कार्य्यतः सैनिक समाजमें व्यक्तियोंके चरित्र और उनकी शक्तियोंका पूर्ण विकास नहीं होने पाता। इसलिए सैनिक समाजमें उन्नतिकी गति शिथिल हो जाती है और इसके एकदम बन्द हो जाने पर समाज मृत्युके मुखमें पतित हो जाता है।

सैनिकतासे हानि। सैनिकता और स्वतंत्रता।

इतना ही नहीं, वह समाज—जो दूसरों पर जुल्म करता है, जो दूसरे लोगोंके घरोंपर, अपना आधिपत्य जमाता है, जो दूसरोंको स्वयं अपने घरोंमें बेगाना बनाता है—जो दूसरोंके धनको लूट कर अपनेको ऐश्वर्यमान और विजेता कहता है, जो दुर्बलोंका धनशोषण करके अपनेको धनाढ्य अनुमान करता है—स्वयं भी निरापद नहीं रहता। अनन्त-शक्ति-संपन्ना प्रकृति दूसरी तरहसे उक्त समाजसे बदला लेती है और उसे सदाचार-विहीन बनाकर संसारसे उन्मूलन कर डालती है।

सदाचार और युद्ध-वाद एक साथ नहीं रह सकते। *यह निश्चित है कि व्यवसायी समाजकी अपेक्षा सैनिक समाजका सदाचार निकृष्ट दर्जेका होता है। अतएव सैनिक समाजका अधःपतन भी अवश्यंभावी है।*

सैनिकताके साथ सदाचारका क्या सम्बन्ध है, यह इरूक्वैस जाति-के ऊपर दृष्टिपात करनेसे स्पष्ट हो जायगा। इस जातिके लोगोंके बारेमें लिखा है कि "अपराध और कुकर्मकी मात्रा उनके यहाँ इतनी कम है कि उन्हें किसी दण्ड विधान (Criminal Code) की आवश्यकता ही नहीं होती और इसलिए उनके यहाँ दण्ड-विधानका प्रायः अभाव ही है।" इस जातिकी सामाजिक संस्थाओंके सम्बन्धमें वर्णित है कि "इरूक्वैस लोग गर्वपूर्वक कहते हैं कि शांति ही उनके संघका प्रधान उद्देश है। निरन्तर युद्ध करते रहनेकी प्रवृत्तिका—जिसके द्वारा लाल जातिका अनेक समयसे नाश हो रहा है—मूलोच्छेद ही उनका ध्येय है।" इस दृष्टान्तके द्वारा सदाचार और युद्धका सम्बन्ध साफ़ तौर पर नज़र आने लगता है। अधिक उदाहरण देनेको स्थान नहीं है। पहलेके अध्यायोंमें सभ्य तथा असभ्य जातियोंका जो वृत्तान्त दिया गया है पाठकगण उसका स्मरण करें। इन सब प्रमाणोंसे *यही निष्कर्ष निकलता है कि जब तक आन्तरिक और बाहिरी लड़ाई अनवरत रूपसे जारी रहती है, तब तक सदाचारकी उन्नति नहीं हो सकती। यह निस्सन्देह है कि शांति-हीसे समाजको लाभ होता है।* युद्धवादसे इस शांति भावका या सदाचारका ह्रास होता है और इसलिए मनुष्यके प्रति मनुष्यके व्यवहारमें हिंसाभाव अधिक रहता है। बच्चों-की हत्या करना, मनुष्योंको मार कर खा डालना, किसीके मरने पर उसके अनुचरों, स्त्रियों इत्यादिको मार डालना, देवताओंके सामने मनुष्योंका बलिदान देना, इत्यादि बातें लड़ाकू जातियोंके ही मध्य पाई जाती हैं। हिंसा उनके यहाँ सत्कर्म

व्याप्तिवाद की रूसे सैनिकता और सदाचारका सम्बन्ध।

सैनिक समाजोंकी रक्त-प्रियता।

समझी जाती है । फिजियन मनुष्य—जिसके बारेमें यह लिखा गया है कि वह सदा अपने सिरको हथेली पर लिये फिरता है—समझता है कि उसके स्वर्गमें भी देवता नित्य आपसमें लड़ा करते हैं और एक दूसरेको मार कर भक्षण कर डालते हैं ! बुशमेन लोग हत्या करना बड़े गर्वकी बात समझते हैं और इसलिए वे सदा ही पारस्पारिक मार काटमें लगे रहते हैं । इसीके सदृश वधून जातिके लोग—जो लड़ाईमें मरनेके आतिरिक्त अन्य हर तरहकी मौतको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं—सदा परस्परकी लड़ाईमें तल्लीन रहते हैं । और वगैण्डा लोग जो अपनी युद्ध-प्रवृत्तिके लिए मशहूर हैं, और जिनके बादशाहके एक अनुचरके पितृ-वधका वृत्तान्त हम पहले ही लिख चुके हैं—अनवरत लड़ाईमें लगे रहते हैं । उनका जीवन ही युद्धमय है ।

सैनिकता और अन्याय । सैनिकता और प्रजातंत्रात्मक शासनमें विरोध ।

बाहिरी लड़ाई दंगेकी मात्रा जितनी ही कम होती है आंतरिक लड़ाई दंगा भी उतना ही कम होता है, आन्तरिक द्वेष और हिंसा भी उतनी ही कम होती है, न्यायपरता भी उतनी बढ़ती है,–'जिसकी लाठी उसकी भैंस'की नीतिका पालन नहीं किया जाता और मनुष्योंका अधिकार भी विस्तीर्ण होता है । असमानता कम होती है, सबके अधिकार समान माने जाते हैं और प्रजातंत्रात्मक शासनपद्धतिका जन्म होता है । व्यवसायी समाजमें ही शुद्ध और पूर्ण प्रजातंत्रकी प्राप्ति होती है । प्रजातंत्रात्मक शासन और युद्धमें कितना बड़ा विरोध है इसका ज्वलंत प्रमाण हालके महाभारतसे मिलता है । अनेक शताब्दियोंमें असंख्यों वीर पुरुषोंकी यंत्रणाओं और रक्तसे स्थापित योरोपके प्रजातंत्रों और वहाँकी प्रजातंत्रात्मक संस्थाओं पर योरोपके युद्धवादी होनेका

कितना बड़ा आघात हुआ, यह सभी निरीक्षकों पर विदित है। योरोपकी गर्वित वैयक्तिक स्वतंत्रता और समानाधिकार लड़ाईके समय प्रायः अन्तर्धान हो गये थे। यह सभी निष्पक्ष लोग स्वीकार करेंगे कि *युद्धवाद और प्रजातंत्र एक साथ कदापि नहीं रह सकते। युद्धके परिणामके अनुसार प्रत्येक समाजमें असमानता, बलप्रयोग, अन्याय और अत्याचार भी अवश्य रहेंगे। युद्ध-वादके परिमाणके अनुसार वैयक्तिक स्वतंत्रता भी अवश्य कम होगी।*

हमारे इस सिद्धान्तका पोषण योरोपके इतिहास द्वारा पूर्णताके साथ होता है, कि *आन्तरिक शान्तिके लिए बाहिरी शांतिका स्थापन—युद्धका बन्द होना—परमावश्यक है।* आगे चल कर हम इस विषयमें कुछ अधिक लिखनेका प्रयत्न करेंगे। मध्य युगके योरोपका सामाजिक संगठन पूर्णतः सैनिक ढंगका था, अतएव इस युगका इतिहास लड़ाई, हिंसा, द्वेष, व्यभिचार इत्यादिका इतिहास है। दसवीं शताब्दीके सम्बन्धमें मार्टिनने लिखा है कि "इसे छल और कपटका ही युग समझना चाहिए। फ्यूडैलिज्म (Feudalism मनसबदारी प्रथा)के आदि कालसे मनुष्यका नैतिक स्वभाव इतना नीचे गिर गया था कि मनुष्यके इतिहासमें उसका जोड़ नहीं मिल सकता।" यह निर्विवाद है कि सैनिकताके घटनेसे ही योरोपकी उन्नति हुई है। मैं समझता हूँ कि यहाँ पर पाठक समरबद्ध योरोपकी ओर अवश्य इशारा करेंगे। मैं स्वीकार करता हूँ कि आजके सभ्य योरोपने जिस पशुता, निर्दयता और विकरालताका परिचय दिया है उसका भी जोड़ शायद सभ्य संसारके इतिहासमें नहीं पाया जासकता। परन्तु साथ ही साथ यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि योरोपकी सामाजिक बनावट इस समय मध्य युगसे कहीं भिन्न है।

शासकवर्गोंका चाहे जो विचार हो; परन्तु जन साधारणके हृदयमें युद्धको अब वह प्राधान्य प्राप्त नहीं है। व्यवहारमें चाहे जो कुछ हो, किन्तु कमसे कम सैद्धान्तिक रूपसे तो युद्ध निःसन्देह बुरा समझा जाता है। हालके महाभारतमें उभय पक्षके लोग यही कहते थे कि युद्धका अन्त करनेके लिए ही वे इस महायुद्धमें सम्मिलित हुए हैं (A war to end war)। यद्यपि आधुनिक समयमें भी बड़ी बड़ी लड़ाइयाँ हुई हैं तथापि अब युद्धका सर्व-व्यापी प्रभाव नहीं पड़ता है। सभी लोगोंको सैनिक कामोंमें भाग नहीं लेना पड़ता है। सैन्यवादके साथ साथ व्यवसायवादका भी आविर्भाव हुआ है। युद्ध ही जीवनका एक मात्र काम नहीं रहा है। प्राचीन समयमें उस जन-समुदायका भी—जो सेनामें भरती होकर युद्ध नहीं करता था—प्रधान काम सैनिक संगठनके पोषण और उसको कायम रखनेका ही था। इस जन-समुदायका जीवन अपने लिए नहीं वरन् लड़ने-वाले समुदायके लिए था। सैनिकोंके अतिरिक्त और किसीके जीव-नका कोई मूल्य ही नहीं था। उनके लिए किसीके हृदयमें—स्वयं उनके अपने हृदयमें भी—कोई सम्मान न था। सैनिकोंके प्रति उनकी कम या अधिक उपयोगिता या अनुपयोगिताके अनुसार ही उनके जीवनका दाम लगाया जाता था। परन्तु इसके विपरीत अब यह समझा जाता है कि समाजका सैनिक अंश व्यवसायी अंशकी रक्षा करनेके लिए ही जीवन धारण कर रहा है। क्या यह साधारण परिवर्तन है? अतएव शांति ही योरोपकी उन्नतिका कारण है और यह भी स्पष्ट है कि योरोपियन सभ्यतामें जो त्रुटि रह गई है—उसकी भौतिक सभ्यतामें जो काले धब्बे रह गये हैं—उसकी न्याय-बुद्धिके मधुरतम फल प्रजातंत्र जो आज केवल विडम्बनामें परिणत हो गये हैं—इसका भी कारण उसका युद्धवाद ही है।

इतना ही नहीं, इतिहासके अध्ययनसे यह भी पता लगता है कि बढ़ती हुई सैनिकताके साथ साथ मनुष्यों और जातियोंकी पशुता और निष्ठुरता भी बढ़ती जाती है। इँग्लैण्डके इतिहाससे ही इसका उदाहरण देना अच्छा होगा। अँगरेज़-समाजने योरोपके अन्य देशोंकी अपेक्षा कहीं पहले व्यवसायवादको ग्रहण किया था; परन्तु युद्धके लगातार बहुत समय तक चलते रहनेके कारण व्यवसायी इँग्लैण्डका सदाचार भी बहुत नीचे गिर गया। सन् १७७५ से १८१५ तक इँग्लैण्डमें एक बड़ी लड़ाई छिड़ी रही। उस समयका वृत्तान्त यों है कि किसीकी जान मालका कोई ठिकाना न था। यद्यपि साधारणसे साधारण बातोंके लिए भी कानून प्राण-दण्ड दिया करता था, तथापि सर्वत्र स्वेच्छाचारिता और अराजकता ही फैली हुई थी। परन्तु युद्धके बन्द होते ही हवा बदल गई, दण्ड-विधान भी बदल गया और अपराधों और दोषोंकी मात्रा भी एकदमसे कम हो गई।

सैनिक समाज और लूट पाट।

हम लोग अनुमान कर सकते हैं कि जब सैनिक समाजमें मनुष्योंकी जानकी ही परवाह नहीं की जाती तो उनके मालकी परवाह कहाँ तक की जा सकती है! युद्ध अर्थात् निरन्तर लूट पाटमें लगा हुआ मनुष्य चोरी और डकैतीको बुरा क्योंकर समझ सकता है! उत्तरी योरोपकी प्रसिद्ध लड़ाकू जातियोंके मध्य डकैती और जहाजी लूट पाट सम्मान और आदरकी दृष्टिसे देखी जाती थी। हम पहले ही कह चुके हैं कि टर्कोमैन प्रभृति कई जंगली जातियोंके मध्य चोरोंको बहुत बड़ा सम्मान प्राप्त है तथा लोग प्रसिद्ध प्रसिद्ध चोरोंकी क़ब्रों पर ज़ियारतके लिए जाया करते हैं। प्राचीन ग्रीसके सैनिक देशोंमें अग्रगण्य स्पार्टामें चोरी किस दृष्टिसे देखी जाती थी, यह भी पहले बतलाया जा

चुका है । स्वयं इँग्लैण्डमें ही सौवर्षवाले बड़े युद्धके समय डकैतीका पूरा पूरा प्रादुर्भाव रहा था । लूट पाटका सर्वत्र साम्राज्य था । अकेले और असंगठित लुटेरोंके सिवाय डाकुओंके सुसंगठित जत्थे भी थे और उनके सरदार बड़े बड़े दुर्गाधिपति तक हुआ करते थे । डाकुओंका यह दल अपना समय भोग-विलासमें ही व्यतीत किया करता था । ये लोग बच्चोंको दास बनाने और स्त्रियोंको वेश्या बनानेके हेतु चुरा कर ले जाया करते थे और बहुतसा धन लेकर मुसाफिरोंको रास्तेसे पार करते थे। ३० वर्षकी लड़ाईमें जर्मनीकी अवस्था भी ठीक ऐसी ही हो गई थी । स्वयं सिपाही लोग ही लूटपाट किया करते थे । वे केवल डकैती ही नहीं करते थे, वरन् उनका धन गुप्त रूपसे कहाँ कहाँ रक्खा हुआ है, यह जाननेके लिए लोगोंको अनेक प्रकारकी पैशाचिक यंत्रणायें देते थे। यंत्रणाओंको सहन न कर सकनेके कारण लोग मजबूरन उन्हें धन बतला दिया करते थे । शस्त्रोंसे पूर्णतः सुसज्जित होकर ही किसान लोग कृषि-कार्य्य कर सकते थे । अब जरा निरुपद्रवी समाजों पर दृष्टिपात कीजिए और देखिए कि उनके विचार और आचरण किस तरहके हैं । वेदा लोग यह अनुमान भी नहीं कर सकते कि कोई मनुष्य दूसरेकी वस्तु-का अपहरण क्योंकर कर सकता है । एस्किमा लोगोंके यहाँ लड़ाईका नामोनिशान भी नहीं है और उनके सम्बन्धमें लिखा गया है कि वे बड़े ईमानदार होते हैं । बेईमानीका अविर्भाव उन्हीं एस्किमो समुदायोंमें हुआ है जो श्वेतवर्ण योरोपियनोंके संसर्गमें आगये हैं । निऊ गैनाके दक्षिण किनारे पर बसनेवाली कुछ जातियोंके बारेमें लिखा है कि “ इन लोगोंके परस्परके वर्तावमें बेईमानीका लेश भी नहीं है । सत्य-शीलतामें हम लोग भी इनकी बराबरी नहीं कर सकते । ” इन ही जातियोंके सम्बन्धमें यह भी लिखा है कि वे लड़नेके लिए सर्वथा अयोग्य हैं ।

डोरीके रहने वाले सत्य और न्यायका पूर्णतः आदर करते हैं। चोरी उनके यहाँ बहुत बड़ा दोष माना जाता है और इत्तफ़ाकसे ही कभी उनके यहाँ चोरीका नाम सुना जाता है। निरुपद्रवी टोड़ा, सान्थाल, लेपचा, बोडो, धीमल, हौस, चकमा, जाकून, सोरा, गोण्ड, खोण्ड, अराफुरा प्रभृति जातियोंकी सत्यशीलता और शुद्धाचरण सब पर विख्यात है। आज कल जो इनमें असत् व्यवहारका किंचित् लेश पाया जाता है वह योरोपियनोंके संसर्गकी ही बदौलत है। टोडा जातिके सम्बन्धमें एक लेखक कहता है—"मैंने दूसरी कोई ऐसी जाति नहीं देखी कि जो परस्परकी वैयक्तिक सम्पत्तिका इतना आदर करती हो।" खोण्ड लोगोंमें ऋणको अस्वीकार करना महान् पाप समझा जाता है। थोरूस जातिके लोगोंको जब कभी रक्षाके निमित्त पहाड़ोंपर भागना पड़ता है तो उन्हें जो कुछ ऋण देना होता है उसे वे कपड़ेमें बाँध कर अपने घरके दरवाजों पर रख जाया करते हैं। हौस जातिके मध्य चोरी इतनी बुरी समझी जाती है कि जब किसी मनुष्य पर चोरीका सन्देह होता है तो वह अक्सर आत्महत्या कर डालता है। बर्माकी आदिम निवासी जातिके बारेमें भी यही लिखा है कि जब किसी मनुष्य पर किसी दुष्कर्मके करनेका अभियोग लगाया जाता है तो वह किसी निर्जन स्थानमें चला जाता है और वहाँ अपनी कब्र खोद कर फाँसी लगा कर मर जाता है। पूर्णतः निरुपद्रवी अराफुरा जातिके मध्य धनवान् होना बड़े आदरकी बात समझी जाती हैं; परन्तु उनके यहाँ धनसंचयका अभिप्राय यही होता है कि अमीर लोग गरीबोंका ऋण चुका दिया करें। उपर्युक्त सभी जातियोंके मध्य चोरीका प्रायः नाम भी नहीं सुना जाता और अपराधकी मात्रा प्रायः नहीं-के बराबर होती है। ये सभी लोग उदारहृदय, हँसमुख, शांति-

प्रेमी और मिलनसार होते हैं । मजनसा जातिके एक मनुष्यने होलबसे कहा था—"जब हम लोग पशुओंके रक्तके भी प्यासे नहीं हैं, तब मनुष्योंका रक्त क्योंकर बहा सकते हैं ?" व्हेरा कुर्जके मूलनिवासियोंके बारेमें लिखा है कि ये लोग ईमानदार होते हैं और बहुत बड़े प्रलोभनके सामने आने पर भी चोरी नही करते । इरूक्यैस संघके बारेमें हम ऊपर ही कह चुके हैं ।

सैनिक समाजोंकी नैतिक अवस्थाका दिग्दर्शन ।

परन्तु जिन जातियोंमें अनवरत युद्ध जारी रहता है उनकी अवस्था इनसे एकदम विपरीत है। सभ्य और असभ्य सभी जातियोंका यह वृतान्त है । हमें रक्तप्रिय फीजियनोंके सम्बन्धमें कहनेका इसके पहले कई दफ़ा अवसर मिल चुका है । इनकी भीषण मारात्मकता विख्यात है। प्रखर द्वेषपरायणता इनकी रगोंमें कूट कूट कर भरी है । असत्य भाषण, चोरी, डकैती, धोखेबाजी और हत्या इनके यहाँ अपराध नहीं, वरन् आदरकी वस्तुयें समझी जाती हैं। बच्चोंकी हत्या तो इनके लिए खेल है । बीमारोंको गला दबाकर मार डालना साधारण बात है। जीवित आदमियोंको मार कर खा डालना भी साधारण घटना है। डहोमी जातिके राजाका भवन मनुष्यकी खोपड़ियोंसे सुसज्जित किया जाता है और इन खोपड़ियोंको प्राप्त करनके लिए लड़ाइयाँ छेड़ी जाती हैं । मृत राजाके पास परलोकमें संवाद पहुँचानेके लिए न जाने कितने मनुष्योंका प्रतिवर्ष वध किया जाता है। मिथ्याचारी, रक्तपिपासु, निष्ठुर और निर्दय होनेके कारण इनमें कृतज्ञता और सहानुभूतिका लेश भी नहीं है । परस्परके सम्बन्धके बारेमें तो कुछ कहना ही व्यर्थ है—पति पत्नी, माता पिता और सन्तानके सम्बन्धमें भी स्नेहका फीका सा भी प्रतिबिम्ब नहीं दिखलाई देता ।

हमारा जातिका मनुष्य अपनी जातिके किसी मनुष्यको वन्य पशुओं द्वारा मारा जाता हुआ देख कर हँसता है। केवल असभ्य जातियोंकी ही ऐसी अवस्था नहीं है, किन्तु सभ्य समझी जानेवाली जातियोंका भी यही वृतान्त है। मेक्सिकन लोगोंके रक्तपिपासु देवता और उनके नर-बलिदान मशहूर हैं। देवताओंकी तृप्तिके लिए तुरत वध किये गये मनुष्यका कम्पायमान हृदय उनके मुखमें डाल दिया जाता था, जीवित मनुष्योंकी खाल खींच ली जाती थी और उसे पहिन कर पुरोहितगण नृत्य किया करते थे। प्राचीन असीरियाकी शिलामूर्तियोंके देखनेसे विदित होता है कि असीरियन लोग किस प्रकार कैदियोंके अंग काटा करते थे। प्राचीन मिश्रकी शिलामूर्तियोंके अनुसार द्वितीय रैमसेस छः कैदियोंकी शिखा पकड़े हुए तथा एक ही वारमें खड्गसे उन सभोंके सिरको धड़से जुदा करते हुए नजर आता है। मध्य युगके धार्मिक अत्याचारों, इन्क्वीजीशनकी करतूतों, तथा उस समयकी पैशाचिक यंत्रणा देनेकी सामग्रियों और औजारोंसे सभी परिचित हैं। प्राचीन रोमन लोग अखाड़ोंमें बाघ या अन्य हिंस्र पशुओं और कैदी मनुष्योंका दंगल कराया करते थे और इस तमाशेको—हिंस्र पशुओं द्वारा मनुष्यके शरीरके विदीर्ण किये जानेको—रोमन समाजके सभी श्रेणीके लोग–यहाँ तक कि महिलायें भी, बड़े आल्हादसे देखा करती थीं।

सैनिक और व्यवसायी समाजोंमें स्त्रियोंका स्थान।

यदि समाजमें स्त्रियोंका उच्चस्थान नैतिक उन्नतिका एक चिह्न माना जाय तो व्यवसायी और सैनिक समाजोंके अवलोकनसे यह सिद्ध होता है कि सैनिक समाजोंकी अपेक्षा व्यवसायी समाजोंमें स्त्रियोंको अधिक सम्मान प्राप्त है। प्रमाणके लिए हमें विशेष कर असभ्य समाजों पर ही दृष्टिपात करना होगा, क्योंकि कोई सभ्य

समाज हमें पूर्णतया व्यवसायी या पूर्णतः सैनिक देखनेमें नहीं आता। प्राय प्रत्येक सभ्य समाजमें इन दोनों बातोंका समावेश पाया जाता है । स्त्रियोंकी हीनावस्थाका किंचित् निदर्शन अन्यत्र किया जा चुका है; प्रसंगवश यहाँ पर भी कुछ उदाहरण दिये जाते हैं। बलात् अपहरण की गई, बात बात पर मार खानेवाली, सभी परिश्रमसाध्य कामोंको करनेवाली, केवल पुरुषोंकी जूठनसे ही उदर-पूर्ति करनेवाली अबलाओंकी दशा सैनिक समाजोंमें सचमुच ही शोचनीय होती है। इसपर भी उन्हें बच्चे जनना पड़ता है और दूध पिलाना पड़ता है। कठिन परिश्रम करने और पूर्ण आहार न प्राप्त करनेके कारण अनेक जंगली जातियोंके मध्य पुरुष ही स्त्रियोंसे अधिक सुन्दर होते हैं और कुरूपता और असुन्दरतामें स्त्रियाँ पुरुषोंसे कहीं बढ़ी चढ़ी होती हैं। किसी भी अंशमें उनका भाग्य पालतू पशुओंसे श्रेष्ठ नहीं होता। इस सम्बन्धमें एक काफिर मनुष्यके निम्नलिखित वाक्योंका उल्लेख ही पर्य्याप्त होगा—"पत्नी अपने पतिका बैल है। वह खरीदी गई है और इस लिए उसे परिश्रम करना ही होगा।" काफिर मनुष्य जब अपनी स्त्रीका वध करता है तो कहता है कि मेरी स्त्री मेरी खरीदी हुई सम्पत्ति है और उसपर मुझे सब तरहके अधिकार प्राप्त हैं। असभ्य समाजोंमें स्त्रियोंका खरीदा और बेचा जाना एक साधारण बात है। इसका उल्लेख पहले भी किया जा चुका है। किसी मनुष्यके मरने पर उसका उत्तराधिकारी उसकी अन्य सम्पत्तियोंके साथ साथ उसकी स्त्रियोंका भी स्वामी बन जाता है। बहुत उदाहरण न देकर रक्त-पिपासु फीजियनोंका नाम ले देना ही काफी होगा जो अक्सर अपनी पत्नियोंको मार कर खा जाते हैं। परन्तु जब हम शान्त, निरुपद्रव और व्यवसायी समाजों पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें स्त्रियोंके भाग्यमें

बहुत बड़ा रूपान्तर दिखलाई पड़ता है। टोडा जातिमें स्त्रियोंको कठिन परिश्रम नहीं करना पडता, यहाँ तक कि जल और लकड़ी लानेके लिए भी वे बाहर नहीं जातीं। बोडो और धीमल जातियोंमें स्त्रियोंको घरके बाहरका कोई काम नहीं करना पड़ता। मननसा, हौस प्यूब्लैस प्रभृति जातियोंमें स्त्रियोंको बड़ा सम्मान प्राप्त है।

सैनिकता और लैंगिक स्वच्छता

यद्यपि पूर्णतः व्ययसायी समाजोंमें भी किंचित् विशृंखल लैंगिक सम्बन्ध पाया जाता है, तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि व्यवसायी समाजोंमें ही लैंगिक स्वच्छताकी मात्रा अधिक पाई जाती है। हम अभी देख चुके हैं कि सैनिक समाजोंमें स्त्रियोंकी अवस्था कैसी शोचनीय है और इससे हम स्वभावतः अनुमान कर सकते हैं कि जब स्त्रियाँ मनुष्य जातिसे बाहर अनुमान की जाती हैं तो उनके सतीत्वकी कहाँ तक परवाह की जाती होगी। निरन्तर युद्धमें लगी रहनेवाली जातियोंमें—जहाँ स्त्रियोंको ही सारे परिश्रम-साध्य काम करने पड़ते हैं, जहाँ स्त्रियाँ लूटकी सम्पत्ति समझी जाती हैं और जिनके ऊपर उनके स्वामियोंका पूर्ण अधिकार स्वीकार किया जाता है, जहाँ गाय बैलोंके सदृश उनकी खरीद बिक्री हुआ करती है, जहाँ स्त्रियोंकी चोरी होती है या वे गिरफ्तार करके लाई जाती हैं, जहाँ स्त्रियोंको कोई व्यक्तित्व प्राप्त नहीं है—स्त्रियाँ कहाँ तक पुरुषोंके कामाघातसे बचती होंगी, यह आसानीसे अनुमान किया जा सकता है। युद्धवादी समाजोंके मध्य स्त्रीके सतीत्वका अनुमान करनेके लिए हमें बड़े बड़े राजाओं और बादशाहोंकी असंख्य पत्नियों और हरमोंका स्मरण करना चाहिए, एक एक राजाकी सौ सौ और दो दो सौ पत्नियोंका स्मरण करना चाहिए, उन लोगोंकी असंख्यों रखेलिनियोंका स्मरण करना चाहिए तथा

स्त्रियोंके सम्बन्धमें लोगोंके अपमानसूचक, घृणाजनक और अश्लील विचारोंका स्मरण करना चाहिए। यदि सैनिक समाजोंकी स्त्रियोंमें कुछ सतीत्व पाया भी जाय, तो भी उनके पुरुषोंमें तो लैंगिक आचार कदापि अच्छा नहीं पाया जा सकता। याद रहे कि लैंगिक स्वच्छता गुलामीके वायुमण्डलमें—ऐसे समाजमें कि जहाँ स्त्रियाँ मानवतासे बाहर समझी जाती हैं—जहाँ वे केवल मनुष्योंके क्रीडाकी वस्तु या बच्चोंके प्रसव करनेका यंत्र समझी जाती हैं—पदार्पण नहीं कर सकती। प्रेम-शून्य वायुमण्डलमें—कामाग्निसे गर्म हुई हवामें—स्त्रियोंकी गुलामीकी वायुमें—शुद्ध लैंगिक सम्बन्ध कदापि उपलब्ध नहीं हो सकता। जब हम यह स्मरण करेंगे कि रोमके भयानक भ्रष्टाचारका आरम्भ रोमन देश-विजयोंके बाद ही हुआ था, जब हम यह स्मरण करेंगे कि युद्धवादी रूसमें प्रत्येक लड़कीपर हालतक उसके जमीनदारका पूर्ण अधिकार हुआ करता था, जब हम लडाकू, मनसबदारीप्रधान (Feudal) यूरोपकी भ्रष्टताका स्मरण करेंगे, जब हम यह स्मरण करेंगे कि एक पुरुपके एक साथ बहुविवाह करनेकी प्रथा युद्धवादी-समाजका ही चिह्न है, तो हमें कहना पड़ेगा कि इस तरहके समाजोंमें लैंगिक स्वच्छताका पूर्ण रूपसे रहना असम्भव है और यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि जाति-हितके लिए, देश-हितके लिए तथा मानव-हितके लिए यह कितनी आवश्यक है।

सैनिक समाजोंका पारिवारिक जीवन

इसी कारण सैनिक समाजका पारिवारिक जीवन निकृष्ट दर्जेका होता है। यदि यह सच है कि सहृदयता, स्नेह, सहिष्णुता और समवेदनाका प्राथमिक पाठ हमें पारिवारसे ही मिलता है तो यह स्पष्ट ही है कि उन्नतिके लिए उच्च पारिवारिक जीवन परमावश्यक है। परन्तु कठोर और हिमवत्

सर्द सैनिकता पारिवारिक मृदु ताप और उच्छ्वासको दूर करती है-स्नेह और सहिष्णताकी मृदुलताको कोसों भगाती है। सैनिक समाज-के पारिवारिक जीवनमें भी उसके राजनैतिक जीवनके ही समान कठोरता और बल-प्राधान्य दृष्टिगोचर होता है। इसका कारण भी स्पष्ट ही है। सदा लड़ाइ भिड़ाईमें लगे रहनेसे, सदा शत्रुताके भावको हृदयमें जगह देनेसे तथा उसे मजबूत करनेसे, विजयके आल्हादोंसे, सदा दूसरोंको दुःख देनेसे, सहृदयताके भावोंपर पाला पड़ जाता है, जिस-का प्रभाव केवल मनुष्यके राजनैतिक या सामाजिक जीवन पर ही नहीं, वरन् पारिवारिक जीवन पर भी पड़ता है। इसीलिए हम देखते हैं कि सैनिक समाजमें अपनी पत्नी और पुत्र पुत्रियोंके साथ भी मनुष्य-के आचरण बड़े कठोर होते है। इसीलिए हम देखते हैं कि सैनिक समाजोंमें स्त्रियोंकी दशा एकदम शोचनीय होती है जिसे हम ऊपर वर्णन कर आये हैं। इसीलिए हम देखते हैं कि उनके यहाँ पारिवारिक सुख और शांतिका नाम और निशान भी नहीं है। इसीलिए हम देखते हैं कि सैनिक समाजोंमें पुरुष अपनी स्त्रियों और पुत्र पुत्रियोंका पूर्ण स्वा-मी अनुमान किया जाता है और उसे उन्हें जीती रखने या मार डालनेका पूर्ण अधिकार प्राप्त है। इसी लिए हम देखते हैं कि आस्ट्रेलियन पुरुष अकसर अपने बच्चोंको बेच डालते हैं और अकसर उनके मांस और चर्बीसे अपनी वंसियोंको गूँधकर मछलियाँ फँसाते हैं, जरासे साधारण दोष पर अपने बच्चोंका वध कर डालते हैं; सिर्फ एक बोतल ब्राण्डीके लिए अपने पुत्र पुत्रियों और पत्नियोंको दूसरोंके हाथ बेच डालते हैं। इसीलिए हम देखते हैं कि सैनिक समाजोंमें पितापुत्रका सम्बन्ध पशुओंके इस सम्बन्धसे किसी भी प्रकार ऊँचा नही होता। इसी लिए हम देखते हैं कि सैनिक समाजोंमें वृद्ध और रोगग्रस्त लोगोंकी

हत्या की जाती है, या वे मरनेके लिए घरसे निकाल दिये जाते हैं और अकेले छोड़ दिये जाते हैं। पूर्वके अध्यायोंमें जंगली जातियोंका जो वर्णन दिया गया है उससे सैनिक समाजोंके पारिवारिक जीवनका पता अच्छी तरह लग जाता है। शांतिके स्थापित होनेसे ही मनुष्यके उच्चजीवनका आरम्भ होता है, शांतिके स्थापित हो जानेसे ही मनुष्यका अधिकार बढ़ता है और मनुष्य मनुष्य बनता है। असभ्य निरुपद्रव जातियोंका पारिवारिक जीवन असभ्य लड़ाकू जातियोंसे और सभ्य निरुपद्रव जातियोंका पारिवारिक जीवन सभ्य लड़ाकू जातियोंके पारिवारिक जीवनसे कहीं ऊँचा होता है। बोडो और धीमल जातियोंके सम्बन्धमें लिखा है कि उनके यहाँ बालहत्याका पूर्ण अभाव है, पुत्रियोंके साथ भी सहानुभूतिमय वर्ताव किया जाता है और बूढ़े बाप-माँका परित्याग करना उनके यहाँ शर्मकी बात समझी जाती है। अन्य असभ्य निरुपद्रव जातियोंका भी यही वृत्तान्त है। यदि हम सभ्य सैनिक समाजोंका वृत्तान्त जानना चाहते हैं तो इसके लिए रोमन समाजमें स्त्रियों और पुत्र पुत्रियोंका स्थान और तत्सम्बन्धी रोमन कानूनकी ओर इशारा कर देना ही काफी होगा।

सैनिक समाजोंकी कला और कविता।

यदि हम यह मानें कि मनुष्यका जीवन केवल बाह्य और शारीरिक ही नहीं है, वरन् कहीं अधिक अस्थूल, आन्तरिक और अध्यात्मिक है, तो हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि मनुष्यके जीवनमें शिल्प, कला, कविता इत्यादिको भी बहुत बड़ा स्थान प्राप्त है। वास्तवमें मनुष्यकी उन्नति और विकासके परिचायक यही हैं। परन्तु युद्धवादी समाजमें इनकी उन्नति नहीं हो सकती। सहृदयता ही इनकी मूल भित्ति है और युद्धवाद सहृदयताका मूलोच्छेद करता है। व्यवसायी और युद्ध-

वादी मनुष्योंके स्वभाव और आचरणमें जो अन्तर है वही अन्तर इन दोनों तरहके समाजोंकी कला, शिल्प और कवितामें भी देख पड़ता है।

सभी ललित कलाओं और कविताओं इत्यादिका मूल विषय मनुष्यका शोक और हर्ष तथा आनन्द और दुःख ही है और इनके रसास्वादनके लिए समवेदना और सहानुभूतिकी परम आवश्यकता है। परन्तु युद्धवादी लोगों और जनसमुदायोंमें इसका अभाव है और इसलिए इनका समझना उनके लिए दुःसाध्य है। इसी लिए हमें प्राचीन और आधुनिक समयकी कविताओंमें इतना अन्तर दृष्टिगोचर होता है। प्राचीन कविताओंका प्रधान विषय युद्ध तथा राजाओं और कुलीनोंके कृत्योंके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। इन कविताओं और महाकाव्योंमें प्रधानतः युद्धहीका—किसी विजेताद्वारा असंख्यों मनुष्योंके वध किये जानेका—ही वर्णन है। इनमें नीच कुलोत्पन्नों, विजितों, साधारण मनुष्योंको कोई स्थान प्राप्त नहीं है। प्रातःकाल अपने बैलोंको लेकर किसानोंका अपने खेतोंपर जाना, सन्ध्याके समय जानवरोंको लेकर चरवाहोंका वापस आना, धान रोपते समय स्त्रियोंका मधुर गान करना, प्रकृतिकी अनुकूलता तथा अनाजकी अच्छी उपजको देखकर किसानोंका पुलकित होना, देहाती मनुष्योंका सादा और भोला जीवन,—इन सबके द्वारा प्राचीन कवियोंके हृदय-सागरमें छोटीसे छोटी विचार तरंग भी नहीं समुत्थित होती। उनकी सहानुभूति परिमित और सीमाबद्ध है। उनके हृदयमें तुच्छ और छोटेके लिए कोई स्थान नहीं है। उनकी सारी सहृदयता बलवानों और विजेताओंहीके पक्षम है, दुर्बलों और अनाथोंके पक्षमें तनिक भी नहीं। उनकी न्यायबुद्धि उन्हें अत्याचार और अन्यायके रोकनेके लिए—दुर्बलों और उपप्लावितोंकी रक्षाके लिए बद्ध-परिकर होनेको उत्तेजित नहीं

करती। उनके लिए साधारण मनुष्योंका जीवन कोई जीवन ही नहीं है। उनकी छोटी छोटी अभिलाषा और आकांक्षायें, उनके साधारण भाव और विचार, उनके मामूली हर्ष और विषाद, उनके तुच्छ गर्व और अभिमान, उनकी भोलीभाली चलाकी और चतुरता, उनके कपट-रहित चरित्र और कृत्रिमतारहित स्वभावको सैनिक समाजके विषयोंके समीप कोई महत्त्व प्राप्त नहीं है। संक्षेपमें वे अँगरेज़ीके विख्यात कवि वर्डस्वर्थके साथ यह नहीं कह सकते कि—

" To me the meanest flower that belows
Can give thoughts that aften lie to deep for tears"

अर्थात् एक क्षुद्रसे क्षुद्र कलिका भी मेरे हृदयमें भावकी तरंगें भेजती है कि जिन्हें भाषा द्वारा तो क्या आँसुओं द्वारा भी व्यक्त करना असम्भव है।

एक आवश्यक सूचना।

इस अध्यायको समाप्त करनेके पूर्व इतना कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि सैनिक और व्यवसायी समाजोंकी जो अलोचना की गई है वह केवल सैद्धान्तिक रूपसे की गई है। वर्तमान समयमें—विशेष कर असभ्य संसारमें हमें विशुद्ध सैनिक या व्यवसायी समाज दृष्टिगोचर नहीं होते। आधुनिक समाजोंमें सैनिकता और व्यवसाय दोनोंकी मात्रा देख पड़ती है, इसीलिए हमने अपने सिद्धान्तके पुष्टीकरणके लिए विशेष कर जंगली जातियोंसे ही उदाहरण दिये हैं। परन्तु निष्पक्ष निरीक्षण-से सैनिकता और सदाचारके मध्य कार्य कारणका जो सिलसिला दृष्टि-गोचर होता है वह प्रत्येक समाजमें, उसके व्यवसायी या सैनिक होनेके परिमाणके अनुसार, अवश्य घटित होगा। यदि समाज अपेक्षाकृत अधिक व्यवसायी है तो उसका सदाचार भी ऊँचे दर्जेका होगा और

यदि वह अपेक्षात: अधिक सैनिक है तो उसमें सैनिकताके कुपरिणाम उसकी सैनिकताकी मात्राके अनुसार अवश्य दृष्टिगोचर होंगे।

शांतिकी आवश्यकता और युद्ध-वाद पर हृदयके कुछ उद्गार।

युद्ध एक बहुत बड़ा अभिशाप है। यह हमारी उन्नतिके पथका हिमाचल है। यह मनुष्यके भाग्याकाशका राहु है। संसारकी सारी वर्तमान उन्नति शांतिका ही फल है। शांतिके द्वारा ही हमें विचार और मनन करनेका समय प्राप्त हुआ है। शांतिने ही हमें ज्ञान और विज्ञान सिखलाया है। युद्ध मानव विकासका बहुत बड़ा शत्रु है। युद्ध दासताका जनक है और विकासके लिए स्वतंत्रताकी आवश्यकता है। युद्धके कारण मनुष्यको अपने स्वभाव और प्रकृत झुकावके अनुसार बढ़ने और फलनेका अवसर प्राप्त नहीं होता। इसीके कारण संसारमें धर्मका साम्राज्य नहीं होने पाता। युद्धके द्वारा अन्य समाजोंको तो पराजित किया जाता ही है—अन्य लोगोंको तो दास और गुलाम बनाया जाता ही है—किन्तु स्वयं विजयी समाजमें भी लोगोंकी स्वतंत्रताका अपहरण होता है—लोगोंको गुलामी करनी पड़ती है। प्रजातंत्रात्मक शासन और युद्धवादमें स्वाभाविक विरोध है। युद्धवादी समाज प्रजातंत्रात्मक कदापि नहीं हो सकता। यदि आप इसका प्रमाण चाहते हों तो एक बार स्मरण कीजिए कि हालहीके महायुद्धमें प्रजातंत्रोंमें अग्रगण्य इँग्लैण्डकी ही वैयक्तिक स्वतंत्रता पर कितना बड़ा आघात हुआ था, लोगोंके अधिकार कहाँ तक छिन गये थे और गवर्नमेण्ट तथा राजकर्मचारियोंकी शक्ति कहाँ तक बढ़ गई थी। राजनीतिशास्त्रमें आजकल यह निस्सन्देह माना जाता है कि प्रजातंत्रात्मक शासन ही सर्वोत्तम शासन है। इसीके द्वारा मानव चरित्र और स्वभावकी पूर्ण उन्नति हो सकती है। उन्नतिके लिए प्रजातंत्रात्मक शासन

ही सबसे अधिक अनुकूल है। परन्तु यूरोपके अधूरे प्रजातंत्र अकुण्ठित कण्ठसे, गला फाड़ फाड़ कर, चिल्ला रहे हैं कि जबतक युद्धवाद विद्यमान है तबतक संसारमें शुद्ध प्रजातंत्रात्मक शासन पदार्पण नहीं कर सकता।

अतएव युद्ध एक भयानक अरिष्ट है। यह हमारी मनुष्यता पर कलंकका अत्यन्त ही काला धब्बा है। ज्ञानयुक्त बुद्धियुक्त मनुष्योंको पशुओंके सदृश लड़ना शोभा नहीं देता। *वास्तवमें युद्ध पशुताका ही दूसरा नाम है। इसका उद्गम-स्थान वही प्रवृत्ति है जो एक कुत्तेको किसी दूसरे कुत्तेको देख कर उसके साथ लड़नेके लिए उत्तेजित करती है।* चाहे हम इसका कितना ही अच्छा नामकरण कर लें, युद्ध करनेको हम वीरता शूरता या चाहे जो कुछ भी क्यों न कहें; परन्तु युद्ध युद्ध ही है। युद्ध करनेवाले अपनेको देशविजेता, प्रचण्ड वीर इत्यादि चाहे जो कुछ कहें, किन्तु वास्तवमें वे रक्तपिपासु, हिंस्र जन्तु ही हैं। उनके नामोंके पीछे महान् या अन्य कितने ही बड़े बड़े सम्मानसूचक शब्द क्यों न जोड़ दिये जायँ, यथार्थमें वे अन्यायी और अत्याचारी लुटेरे डाकू या हत्यारे ही हैं। यदि अन्तर कुछ है तो केवल इतना ही कि वे बहुत बड़े हत्यारे, बहुत बड़े अत्याचारी, तथा बहुत बड़े लुटेरे हैं। युद्ध चाहे ज्ञानशून्य पशुओं या असभ्य जंगलियों द्वारा किया जाय, चाहे सभ्य मनुष्यों द्वारा किया जाय—उसमें सर्वत्र समान भीषणता दृष्टिगोचर होती है। मिथ्याचारी जंगलियोंमें और मिथ्याचारी कुटिल और दाम्भिक राजनीतिज्ञोंमें क्या अन्तर है? छल और पाषण्डसे काम लेनेवाले रेड इण्डियनोंमें तथा कपटकुशल राजकर्मचारियोंमें कौनसा भेद है? यदि कोई भेद हो सकता है तो केवल यही कि जंगलियोंके छल और पाषण्ड सीधे और सुबोध होते

हैं, किन्तु राजनीतिज्ञोंके अस्पष्ट, दुर्बोध और जटिल होते हैं। राजनीतिज्ञ अपने भावों और विचारोंको छिपा रख सकते हैं, उनपर आदर्शवादका आवरण डाल सकते हैं और सहज ही विद्वानसे विद्वान् पुरुषोंकी आँखोंमें भी धूल डाल सकते हैं। आजके सेनापतियों तथा नरमांसभोजी फीजियनोंमें क्या अन्तर है? कुछ नहीं। यदि है तो यही कि वे विजितोंको तुरत खा जाते हैं, किन्तु सभ्य देशोंके सेनापति और राजनीतिज्ञ उन्हें जानसे न मारकर अपने आरामके लिए छोड़ देते हैं और धीरे धीरे उनका खून चूसते हैं। नेपोलियनकी कब्रको लक्ष्य करके कही गई कर्नल इंगरसौलकी निम्नलिखित बातें याद रखने योग्य हैं।

“थोड़े दिन हुए मैं नेपोलियनकी कब्र—सुवर्णमय अपराध और पापके अद्भुत स्मारक-के समीप खड़ा था। संगमूसासे बने हुए इस दैदीप्यमान समाधिमन्दिरको देख देख कर मैं उस व्यग्र और उग्र मनुष्यका स्मरण कर रहा था कि जिसकी अन्तिम भस्म कब्रकी अविश्रान्त शांतिमें इस समय आरामसे विश्राम कर रही है। उसकी कब्रकी स्तंभपंक्तिके एक स्तंभके सहारे मैं खड़ा हो गया। मैंने उसे नील नदीके तट पर खिन्न-हृदय आत्म-हत्याका संकल्प किये हुए देखा। तत्पश्चात् मैंने उसे इटैलीका सेनापति पाया। त्रिवर्ण झंडेको हाथमें लिये हुए मैंने उसे लोदीके पुलको पार होते हुए देखा। इसके बाद मैंने उसे मिश्रके विराट् स्तूपोंकी छाया तले देखा। मैंने उसे अगम्य और दुर्जय आल्पस पर्वतपर विजय प्राप्त करते तथा फ्रांसके खगांकित झण्डेके खगोंको और पहाड़के वास्तविक खगोंको एक साथ मिलाते देखा। मैंने उसे मैरेंगो, आल्पस और औस्टरलिजमें देखा। मैंने उसे रूसमें देखा जहाँ कि बर्फके पैदलों और कपकपी पैदा करनेवाले झंझानिलके घुड़सवाररूपी झोकोंने उसकी असंख्य सेनाको जाड़ेके दिनोंमें

वृक्षसे गिर हुए पत्तोंके समान इधर उधर तितिर बितिर कर दिया था। मैंने उसे लीफसीकमें पराजय और दुर्भाग्यका शिकार होते देखा और असंख्य सेनासे परास्त होकर उसे पेरिसमें पनाह लेते हुए और एल्बामें निर्वासित होते हुए देखा। मैंने उसे वहाँसे भागते हुए तथा केवल अपनी दिव्य शक्तिके बलसे एक साम्राज्यको उपार्जन करते हुए देखा। मैंने वाटरलूके भीषण और मारात्मक युद्ध-क्षेत्रको भी देखा, जहाँ कि दैव और भाग्यने मिलकर उसका सर्वनाश किया था। तत्पश्चात् मैंने उसे सेण्ट हेलनामें बन्दी और अपने हाथोंको पीठके नीचे जोड़े हुए एवं मौन और शोकान्वित अवस्थामें समुद्रको निहारते हुए देखा। तब मुझे उसके हाथों विधवा बनाई गई स्त्रियों और अनाथ बनाये गये बच्चोंका खयाल आया। मुझे उन आँसुओंका स्मरण हो आया कि जिनके बहाये जानेका एक मात्र कारण उसकी कीर्ति-स्पृहा ही थी। मुझे उस स्त्रीका स्मरण हो आया कि जिसके सिवा अन्य कोई स्त्री उसे प्राणपणसे प्यार न करती थी और ऐश्वर्य्याकांक्षाके कठोर हाथोंने जिसे उसके हृदयसे विलग कर दिया था। मैंने अपने हृदयसे कहा—फ्रांसीसी किसान होना और काठके जूते पहरना कहीं अच्छा है! राज्यप्रासादमें रहनेसे उस झोपड़ीमें रहना कहीं अच्छा है कि जिसके द्वारपर अंगूरकी लता लगी हो और जहाँ शारदीय सूर्य्यके चुम्बनसे अंगूर लाल हो रहे हों! एक साधारण किसान होकर रहना कि जिसकी स्त्री सुबहसे शाम तक चरखा कातती हो जिसके बच्चे उसकी गोदमें बैठे हों या गलेमें बाँह डाले हों—कहीं अच्छा है! मैं एक साधारण किसान होना ही पसन्द करूँगा और गंभीर विस्मृतिकी गहरी तलीमें—कब्रके जिह्वा-रहित सन्नाटेमें—डूबना पसन्द करूँगा, किन्तु बल और हत्याका मूर्तिमान स्वरूप—महान् नेपोलियन होना कदापि नहीं। मैं दसहजार बार कहता हूँ कि मेरी इच्छा यही है।"

सातवाँ अध्याय ।

सदाचारकी उत्पत्ति और उसकी आवश्यकता ।

प्राणिशास्त्रके अध्ययन करनेसे, जीवों और जातियोंके इतिहासके अवलोकन करनेसे और सारे संसारपर दृष्टिपात करनेसे, यह पूर्णत: सिद्ध होता है कि *प्रकृति जीवनोंकी संख्याको अधिक करना चाहती है, अर्थात् एक प्राणीके स्थान पर वह अनेक प्राणियोंकी उत्पत्ति करना चाहती है।* साथ ही साथ यह भी विदित होता है कि सिर्फ प्राणियोंकी गिनती और संख्याके बढ़ानेसे ही प्रकृतिकी संतुष्टि नहि होती, वरन् *वह नीच श्रेणीके जीवोंसे उच्च श्रेणीके जीवोंको—सदाचारविहीन जीवों और जातियोंकी अपेक्षा सदाचारयुक्त जीवों और जातियोंको अधिक प्यार करती है।* इसीलिए उसने जीवन-प्रतिवादिता (Struggle for existence) के नियमको व्याप्त किया है।

प्रकृति कम जीवनोंके स्थान पर अधिक जीवन स्थपित करना चाहती है।

अब यदि हम संसारके सभी प्रकारके जीवों पर नज़र डालें तो हमें यह निर्विवाद माळूम हो जायगा कि *प्रत्येक जीवमें अपने वंशके कायम रखनेकी अदमनीय इच्छा है।* स्वभावसे ही प्रत्येक जीव अपनी संख्याको बढ़ाना चाहता है। *इसी सर्व-व्यापिनी प्रवृत्तिसे सदाचारकी उत्पत्ति हुई*

जनन-प्रवृत्ति।

है । वृक्षोंके वंशको कायम रखनेके लिए प्रकृतिका क्या प्रबंध है ! चैतन्य जीवनके इतिहास पर दृष्टि डालनेसे मालूम होता है कि प्रथम कलल कण (the first animal cell) ने अपनेको जो दो अंशोंमें विभक्त किया, सो भी नीति (morality) ही की प्रेरणासे किया । निःस्वार्थताका आभास हमें यहींसे मिलने लगता है ।

अति सूक्ष्म प्रोटोजोआ (माइक्रोस्कोप या अणुवीक्षण यंत्रसे नजर आनेवाले जीव) निरन्तर आपसे आप अपनेको दो भागोंमें विभक्त करते रहते हैं। सिर्फ कई घण्टेंके स्वतंत्र जीवनके पश्चात् , इनमेंसे प्रत्येकका दो जीवोंको उत्पन्न करनेके लिए बलि प्रदान होता रहता है। बाज़ दफ़ा तो इनका सारा शरीर ही एकदमसे छितरा जाता है और इनके शरीरसे अनेकों नये जीवोंकी सृष्टि होती है। पौलीगैस्ट्रिक ऐनिमैलक्यूल्स इतनी शीघ्रताके साथ बढ़ते हैं कि प्रो० एहरेनवर्गके गणनानुसार एक महीनेमें इनकी संतति २६ करोड़ ५० लाख हो सकती है ! इनही जीवोंकी एक अन्य उपजातिकी वृद्धि तो हमें कल्पनातीत ही मालूम होती है। चार दिनमें उक्त जातिके जीवोंकी संख्या १७,००,०००,०००,०००,००० पर पहुँच जाती है। डाक्टर एडवर्ड क्लीनके अन्वेषणके अनुसार २४ घण्टेमें २४६ बैक्टीरियाओंके २०,०००,००० सन्तान होते हैं । इस हिसाबसे सिर्फ एक ही बैक्टीरियाके तीन दिनमें ५३७, ३६७,७९७, ०००, ००० सन्तान होंगे। जीवधारियोंके शरीरके मध्य निवास करनेवाले कृमि (cestoid entozoa) की वंशवृद्धि बिल्कुल ही विचित्र है। पूर्वके किसी कृमिके हजारों अण्डोंमेंसे किसी एकसे इसकी उत्पत्ति हुई है। परन्तु इसको भी कोई स्वतंत्र जीवन प्राप्त नहीं है। इसके शरीरको असंख्यों अण्डोंकी थैली मात्र समझना चाहिए। न तो इस कृमिके कोई अंग हैं, न इसमें

चेतना शक्ति है, न इसको शरीरपोषणके अवयव ही प्राप्त हैं । इस प्रकार इसका जीवन वनस्पति-जीवनसे किसी भी प्रकार ऊँचा नहीं है। ज्यों ही इसके शरीरके अण्डे तैयार हो जाते हैं त्यों ही इसकी मृत्यु हो जाती है। एनटोजोआ जातिकी अन्य उपजातियों तथा आर्टिकुलेटा जातिकी कुछ उपजातियोंकी भी ऐसी ही अवस्था है। अधिक उदाहरणोंको देकर पाठकोंको कष्ट देना उचित नहीं प्रतीत होता। जातीय जीवनको कायम रखनेके लिए वैयक्तिक जीवनका किस प्रकार बलिप्रदान होता है, पाठकोंको इसके अधिक प्रमाण और उदाहरण स्पेन्सरके 'प्रिंसप्लस आफ बायलोजी' में मिलेंगे * ।

हम उन वनस्पतियों और कीटोंके सम्बन्धमें क्या कहेंगे जो इस वंश-वृद्धि कार्यके सम्पादन करनेके साथ ही अपना प्राण त्याग करते हैं। शायद इसी कार्यके लिए ही वे जीवन धारण कर रहे थे । बाज़ हालतोंमें समागमके पश्चात् मादासे अलग होते ही नर अपनी जान खो देता है। डारविनने लिखा है कि समागमके पश्चात् टोड (एक प्रकारके बेंग) की मादायें अक्सर निष्प्राण हो जाती हैं + । कोचीनियेल × की मादा अपनेको इतने अण्डोंसे भर लेती है कि उसे जीवनसे ही हाथ धो लेना पड़ता है और अण्डोंकी रक्षाके लिए उसका मृतक शरीर थैलीका काम देता है। सिर्फ़ कीड़ोंमें ही क्यों, कुछ उच्च श्रेणीके जीवों-

---

* See Principles of Biology vol. II part VI chh. I. VIII and Ibe Vol. I App. A.

+ Descent of Man P. 227.

× कोचीनियल—किरमिज़। एक प्रकारका कीड़ा है। इसकी मादासे बहुत सुर्ख और अत्यन्त चमकदार रंग प्राप्त होता है। अमेरिका जावा प्रभृति देशोंमें यह बहुतायतसे पाया जाता है। जिस प्रकार हमारे यहाँ लाह और रेशमकी खेती की जाती है उसी प्रकार इसकी भी खेती होती है।

में भी यही बात पाई जाती है । कौङ्गर जातिकी एक मछली होती है । इसकी मादाकी लम्बाई छः से सात फीट तक होती है और वज़न तीस सेर या इससे भी अधिक तक होता है । पूर्ण आकृति प्राप्त कर लेनेके पश्चात् यह खाना पीना बन्द कर देती है और छः महीने तक योंही पड़ी रहती है । मध्यावस्थामें इसके शरीरमे अण्डे पुष्ट होते रहते हैं और अण्डोंके देनेके साथ ही वह मृत्युको प्राप्त हो जाती है !

बाज़ कीटोंको वंशवृद्धि कार्यके लिए बहुत परिश्रम करना पड़ता है । घर बनानेवाला भौंरा (Masonwasp) बहुत दूर दूरसे घर बनानेकी सामग्री ले जाकर जमा करता है और तब अपने शरीरसे लोआब निकालकर उसे बनाता है । इसके पश्चात् वह पिल्लुओंकी तलाशमें निकलता है और खोज खोज कर उनको अपने घरमें ले जाकर बन्दी करता है ताकि अण्डोंसे निकलने पर उसके बच्चोंको खोराक-की कमी न हो । कुछ जातिकी मछलियाँ भी वंशवृद्धिके लिए बहुत परिश्रम करती हैं । स्टिकबैक जातिका नर बच्चोंके पैदा होने तक अण्डों-की रक्षा करता है । सिलूरस ग्लेनिस जातिकी मछलियोंमें नर चालीस दिन तक अण्डोंकी बड़ी हिफाज़त करता है और इस अर्सेमें वह कुछ नहीं खाता !

बहुतसे उच्च श्रेणीके जानवर इस कामके करनेके लिए सालभरमें एक बार अक्षरशः उन्मत्त हो जाते हैं। केवल इस कामना और अभिला-षाके सिवाय उनके हृदयमें और कोई कामना या अभिलाषा नहीं रहती। इस समय नर मादाके समागमके विना कदापि काम नहीं चल सकता। एकदम अलग अलग रहनेवाले पूर्णतः असामाजिक जानवर भी बाज़ दफ़ा अल्पकालीन गरोह कायम कर लेते हैं और इस मौसिमके चले जाने पर पुनः अलग अलग हो जाते हैं । बहुत ही दुर्बल और

भीरु जातिके नर भी इस समय मादाओंके लिए लड़ मरते हैं । वैज्ञानिकोंके कथनानुसार अन्य जानवरोंकी मादाओंका इस कामके लिए उन्मत्त होना और मनुष्यजातिकी स्त्रियोंका रजस्वला होना ये दोनों घटनायें एक ही बातकी द्योतक हैं ।

अविवाहिता या अन्य कमसिन स्त्रियोंमें, जिनको अभीतक कोई सन्तान नहीं हुई है, विशेपकर हिस्टीरिया प्रभृति रोगोंका पाया जाना, तथा एकाध दो सन्तानके होनेके पश्चात् कुछ दिनों तक स्त्रियोंके रजोधर्मका बन्द रहना और कुछ समयके बाद उसका पुनः आरम्भ होना, इत्यादि बातें हमारे कथनका समर्थन पूरे तौरसे करती हैं । वास्तवमें यह प्रवृत्ति मृत्युसे भी अधिक बलवती है । क्योंकि जब यह जीव पर पूर्णाधिकार जमा लेती है तब वह मृत्युका भी भय नहीं करता और स्वेच्छासे मृत्युके गालमें घुस जाता है । इससे स्पष्ट है कि प्रकृति जीवनकी संख्याको बढ़ाना चाहती है ।

जननप्रवृत्तिसे ही सहानुभूतिका जन्म होता है।

पूर्वके अध्यायोंसे यह स्पष्ट हो गया होगा कि सदाचार सम्बन्धात्मक है तथा सम्पूर्ण आचार-नीतिकी जड़ सामजिकतामें है । जरासा और विचार करने पर यह स्पष्ट दीख पड़ेगा कि सामाजिकता अर्थात् दूसरोंकी संगतिसे सुख अनुभव करना, दूसरोंके प्रशंसा करनेसे पुलकित और निन्दा करनेसे खिन्न होना, दूसरोंके सुखदुःखमें भाग लेना और दूसरोंके क्लेशविमोचनके लिए प्रयत्न करना, दूसरे शब्दोंमें सहानुभूति—*माता पिता और सन्तानके मध्यके परस्पर स्नेहका ही फैलाव मात्र है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि जननप्रवृत्तिसे ही सहानुभूतिकी उत्पत्ति हुई है ।*

जीव जितना ही अधिक उन्नत होता है उतनी ही अधिक उसे सदाचार (Morality) की आवश्यकता होती है। क्योंकि बिना नीतिका आश्रय ग्रहण किये उसका वंश टिक ही नहीं सकता । जीवनके इतिहासमें इन सिद्धान्तोंका प्रमाण पग पग पर मिलता है ।

जीवकी उन्नतिके साथ साथ सदाचार-की बढ़ती हुई आव-श्यकता ।

विकासशास्त्रने जीवोंको कई श्रेणियोंमें विभक्त किया है । प्रथम बहुतसे जीव ऐसे हैं जिनमें लैंगिक भेद अभी तक पैदा ही नहीं हुआ है । परन्तु अपने सिद्धान्तोंको स्पष्ट करनेके लिए हमें कुछ आगे बढ़नेकी आवश्यकता है । अतः पहले हम उन जीवोंको लेते है जो जल और स्थल पर समान रूपसे रह सकते हैं (Amphibia) या जो पेटके बल चलते हैं (उरग या Reptiles) । गिरगिटों और घड़ियालोंको अपने अण्डोंके सेनेकी ज़रूरत नहीं । सूर्य्यकी गर्मीके द्वारा आपसे आप उनके अण्डोंसे बच्चे निकल आते हैं । अच्छा अब इन उरग जीवोंकी तुलना पक्षियोंसे कीजिए । इन उरग जीवोंहीसे पक्षियोंकी उत्पत्ति हुई है ।

प्रमाणके लिए जीवन-के इतिहास पर एक नज़र ।

बहुतसे पक्षियोंको बड़े परिश्रमकी और अत्यन्त निस्पृहताकी ज़रूरत पड़ती है । उन्हें रात दिन अपने अण्डों पर बैठे रहने और उन्हें गर्म रखनेकी आवश्यकता होती है । ज़रासी भी सुस्ती करनसे अण्डे गन्दे हो जाते हैं । बाज़ चिड़ियोंको प्रायः महीने भर तक अपने अण्डोंकी रक्षा करनी पड़ती है, तब कहीं उनके अण्डे फूटते है और उनमेंसे बच्चे निकलते हैं । परन्तु मातापिताका काम यहाँ ही समाप्त नहीं हो जाता। ये नन्हें-से बच्चे पूर्णतः निरवलम्ब और विवश होते हैं । चल फिर कर भोजन तलाश करनेकी कोन कहे अभी इनमें खिसकने तककी शक्ति नहीं होती ।

अभी ये आँखेंतक नहीं खोल सकते। बहुत दिनों तक इनके माता-पिता इन्हें अपनी चोचोंसे भोजन खिलाखिलाकर इनकी उदरपूर्ति करते हैं। इतना ही नहीं, जब तक बच्चे छोटे और असहाय रहते हैं तब तक अण्डोंकी तरह इनकी भी हिफ़ाजत करनेकी ज़रूरत होती है। बहुत समयके बाद ये बच्चे स्याने होते हैं; एक एक करके इनके सब पर निकल आते हैं और ये उड़नेके योग्य होकर अपना भोजन आप तलाश कर सकते हैं। तब कहीं मातापितासे स्वतंत्र होते हैं। क्या इस कठिन लालन-पालनके बिना ये एक क्षण भी जीवित रह सकते थे? इन दो ही उदाहरणोंसे यह प्रमाणित होता है कि जीव जितना ही अधिक उन्नत होगा उतना ही अधिक उसे सदाचार और निस्स्वार्थता-की आवश्यकता होगी। इससे एक बात और भी स्पष्ट होती है कि *पुरुष (नर) की अपेक्षा स्त्रियों(* मादाओं*) में यह निस्स्वार्थता अधिक पाई जाती* है। नरकी अपेक्षा मादामें अधिक सन्तानप्रेम है, अपने बच्चोंके लिए वह अधिक कष्ट झेलती है और दुःख उठाती है। माता-का लाड़ प्यार केवल मनुष्योंमें नहीं, वरन् हर जगह पाया जाता है।

अब हमें दूध पिलानेवाले जानवरों (Mammalia) की सन्तान उत्पन्न करने तथा उनके पालन-पोषणकी रीतिको देखना है। प्राणिशास्त्र (Biology) के विद्यार्थियोंने जहाँतक पता लगाया है उससे यह मालूम होता है कि इस श्रेणीमें मौनोट्रीम (Monotremes) सबसे नीचे जीव हैं। डक मोल (Duck Mole), डक बिल (Duck-bill) और नीथोरिंकस (ornithorhynchus) प्रभृति इस जातिकी मुख्य उपजातियाँ हैं। इनके मल मूत्र त्याग करनेका एक ही रास्ता होता है। पंक्षियोंके समान ये भी अण्डे देते हैं। यहाँ भी माता और बच्चोंका वियोग उसी समय होता है जब कि बच्चे अण्डेहीकी अवस्थामें रहते हैं।

स्तनका विकास इस जीवमें अभी पूर्णताके साथ नहीं हुआ है। इसकी मादाके स्तन मानों हैं ही नहीं। बच्चा पैदा होनेके पश्चात् माताकी छातीके छिद्रोंके द्वारा दूध बहने लगता है और उसीसे माता अपने बच्चों-को दूध पिलाती है। निस्स्वार्थता जिसका आभास हमें निस्सन्देह पहले ही-से मिल रहा था यहाँपर पूर्ण रूपसे जगमगा उठती है। क्योंकि अन्य किसी जीवमें हमने ऐसा अवयव नहीं पाया कि जिससे केवल दूसरोंही-का लाभ हो। इस श्रेणीके जीवोंका स्तन इन्हें उपर्युक्त अन्य जीवोंसे विभाजित करता है।

इसके बाद विकासके दूसरे दर्जेमें उन जानवरोंका स्थान है कि जो प्रसव करनेके पश्चात् भी अपने बच्चोंको कुछ समय तक अपने पेटकी थैलीमें रखते हैं (Marsupial Mammals)। यद्यपि इन जीवोंके बच्चे अण्डेकी अवस्थामें पैदा नहीं होते तथापि वे भी समयके पहले ही जन्म ग्रहण करते हैं। प्रथम-कथित जीवोंके समान कंगेरूका बच्चा भी अपने समयसे कहीं पहले जन्म लेता है और केवल माताकी थैली-(pouch) ही के द्वारा उसकी रक्षा होती है। इससे प्रकट है कि जीवोंके विकासके साथ साथ सन्तान उत्पन्न करने और उसके लालन पालनका काम कठिन ही होता जाता है—निस्स्वार्थताकी जरूरत बढ़ती ही जाती है।

विकासके इस मंजिलको तै करने पर हमें वे जीव मिलते हैं जिन्हें प्राणिशास्त्रके ज्ञाता प्लैसेण्टेलिया (placentalia) कहते हैं। आंगिक सदाचार (organic Morality) यहाँ पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। निस्स्वार्थता यहाँ सूर्यके समान प्रखर किरणोंसे दीप्तमती हो जाती है। इन जीवोंके बच्चे इतना शीघ्र जन्म नहीं लेते। उन्हें बहुत दिनों तक माताके गर्भमें ही रहनेकी जरूरत होती है।

देखिए, गर्भमें इनकी रक्षाके निमित्त प्रकृतिने क्या क्या प्रबंध कर रक्खे हैं। इन जीवोंको एक विशेष अवयव प्राप्त है जिसे वैज्ञानिक लोग प्लैसेण्टा (Placenta) कहते हैं और इस प्रान्तकी भाषामें जिसे हम शायद खेड़ी या पुरैन कह सकते हैं। इसीके द्वारा बच्चेको माताके उदरमें भोजन और औक्सिजन (अम्लजन) प्राप्त होता है। माताहीके साँस लेनेसे बच्चेको हवा मिलती है और माताहीके पेटसे बच्चेकी पुष्टिके लिए उसे भोजन प्राप्त होता है। माताहीके हजम करनेवाले अवयव भोजनको पकाकर और बच्चेके कामका बनाकर उसे प्लैसण्टामें भेजते हैं। विचार कीजिए कि प्रसवका प्राथमिक कार्य्य ही कितना कठिन और जटिल हो गया है। इसके अतिरिक्त बच्चेको केवल शुद्ध हवा और पोषक पदार्थोंके पानेकी ही नहीं वरन् रद्दी और निस्सार पदार्थोंके बहिष्कृत करनेकी भी आवश्यकता है। जिस प्रकार उसे भोजन तथा औक्सिजन प्राप्त करनेकी आवश्यकता है उसी प्रकार उसी भोजनकी सीठी तथा कार्बोनिक एसिड (कर्बन) को बाहर फेकनेकी भी आवश्यकता है। यह काम भी माताहीके मत्थे है। माताहीके फेफड़े बच्चेको शुद्ध हवा प्रदान करते हैं और वही बच्चेकी अशुद्ध और ज़हरीली हवाको निकालते हैं। माताहीके अन्न पचानेवाले अवयवोंके द्वारा बच्चेको पुष्टिकर पदार्थ प्राप्त होता है और माताहीके मलमूत्र-बहिष्कारक अवयवोंके द्वारा बच्चेके भी सभी निःसार पदार्थोंका बहिष्कार होता है। पुनः यही प्लैसेण्टा एक और भी आवश्यक और महत्त्व-पूर्ण काम करता है। इसे एक प्रकारका छन्ना समझना चाहिए। माताके रक्तमें यदि कोई जर्म या बैक्टीरिया (बीमारीका कीड़ा) आ जाय तो प्लैसेण्टा उसे बच्चेके रक्त तक नहीं पहुँचने देता। उसी प्लैसेण्टामें ज़हरके रह जानेसे अनेक माताओंकी मृत्यु हो जाती है।

अन्तमें माताओंके स्तन पर भी विचार कीजिए। यह केवल बच्चेहीके लिए है; माताका इससे कोई उपकार नहीं होता। प्रसव करनेके समय तक ही माताको अपने बच्चेके लिए कठिन काम नहीं करने पड़ते, वरन् प्रसव करनेके बहुत दिन बाद तक भी उसे अपने रक्तसे बच्चेंके लिए खोराक तैयार करनी पड़ती है। सन्तान उत्पन्न करने और उसके पालनेमें निस्स्वार्थताकी मात्रा कितनी अधिक हो गई है !

परन्तु हमारी कथाका अन्तिम अध्याय अभी तक नहीं आया है। आओ, मनुष्य पर ही हम अपनी रामकहानी समाप्त करें। इन प्लैसेण्टेलिया जीवों-हीमेंसे मनुष्य भी एक है। पैदा होनेके समय वह कितना अस-हाय रहता है ! चलना फिरना, उठना बैठना तो दूर रहा वह रेंग भी नहीं सकता ! इसे जीवित रखनेके लिए कैसे आविश्रान्त परिश्रमकी ज़रूरत होती है। मनुष्यके नन्हेंसे बच्चेका पालन पोषण कितना कठिन है ! जरासी भूल जरा सी सुस्तीसे बच्चेका प्राणान्त हो जाता है। दिनों, सप्ताहों और महीनों तक ही नहीं बल्कि वर्षों पर्य्यन्त यदि बच्चोंकी रक्षा न की जाती, तो अब तक मानव-वंश मटियामेट ही हो गया होता।

सदाचार ही पर ऊँची जातिके जीवोंका जीना निर्भर है।

इस लम्बे इतिहासके अवलोकन करनेके बाद इस विषयमें कोई भ्रम नहीं रह सकता कि जीव जितनी ही अधिक उन्नति करता है उतनी ही अधिक उसे सदाचारकी आवश्यकता होती है। यदि सदाचार (निस्स्वार्थता) का अवल-म्बन न किया जाता तो कोई भी उच्च कोटिका जीव देखनेमें न आता। *जन्म लेनेके समय सभी ऊँचे दर्जेके जीव नीचे दर्जेके जीवोंसे अपेक्षाकृत अस-हाय रहते हैं; परन्तु बड़े होने पर यही जीव नीची जातिके जीवों*

पर विजय प्राप्त करते हैं तथा उन्हें अपने सुख और आरामका साधन बनाते हैं।

घड़ियालका बच्चा आपसे आप अण्डेमेंसे निकल आता है और यद्यपि उस समय वह केवल छः साढ़े छः इञ्च ही लम्बा होता है, तौभी अपना भोजन तलाश कर सकता है। मुर्गी घड़ियालसे ऊँचे दर्जेमें है। क्योंकि उसे अण्डे सेने पड़ते हैं। पर अण्डोंसे निकलनेके थोड़े ही समय बाद मुर्गीका बच्चा चल फिर सकता है। परन्तु दूध पिलानेवाले जानवरोंकी बात दूसरी है। बिल्लीके जन्म लेनेके पूर्व यद्यपि प्लैसेण्टाके द्वारा इतनी सहायता प्राप्त होती है तौ भी पैदा होनेके समय वह एकदम निस्सहाय होता है। उसकी आँखें देरमें खुलती हैं। वह अभी देख तक नहीं सकता। पाँवोंके रहते भी वह चल नहीं सकता। वह पूर्णतः निरवलम्ब है। इन सभी श्रेणियोंके बाद जब हम सृष्टिके स्वामी मनुष्य तक पहुँचते हैं, तब उसके बच्चेको इन सभी जीवोंके बच्चोंसे कहीं अधिक निरवलम्ब पाते हैं। इस अवस्थामें यदि मनुष्यके *बच्चेको अन्य जीवोंके बच्चोंके साथ जीवन-संग्राममें मुकाबलेके लिए छोड़ दिया जाता तो क्या इस विस्तीर्ण भूमण्डल पर एक भी मनुष्य देखनेमें आता?*

परन्तु अन्तमें विजय किसकी होती है? घड़ियाल गिरगिट प्रभृति जीवोंकी या सर्प इत्यादि पेटके बल चलनेवाले जीवोंकी? घोड़े भैंसे बैल प्रभृति जीवोंकी या पैदा होनेके समय सम्पूर्णतः असहाय मनुष्यकी? इसका उत्तर स्पष्ट है। *सारांश यह है कि प्राकृतिक नियमके अनुसार जिस जीवके लालनमें सदाचारकी जितनी अधिक आवश्यकता होती है उस जीवको जीवन-संग्राममें अन्य जीवोंकी अपेक्षा उतनी ही अधिक श्रेष्ठता प्राप्त होती है।* यदि बात इसके

विपरीत होती तो तन्चों पादौं या शायद बहुत ही नीच श्रेणीके दो एक जीवोंके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकारका जीवन संसारमें दृष्टिगोचर ही न होता। अतएव यह स्पष्ट है कि प्रकृति केवल मात्र जीवोंकी संख्या ही नहीं बढ़ाना चाहती, वरन् वह निम्न श्रेणीके जीवोंके स्थान पर उच्च श्रेणीके जीवोंको स्थापित भी करना चाहती है।

प्रकृति संख्याकी अपेक्षा श्रेष्ठता पर अधिक ज़ोर देती है।

इसी कारण हम देखते हैं कि उन्नतिके पथ पर जीव जितना ही अधिक अग्रसर होता है, उतनी ही उसकी सन्तान कम होती है; परन्तु सदाचारके कारण उसकी सन्तान जीवनसंग्राममें अधिक श्रेष्ठता प्राप्त करती है। मछलियाँ करोड़ों अण्डे देती हैं जिन्हें अन्य क्षुधातुर मछलियाँ बड़े वेगसे भक्षण कर डालती हैं। इनमेंसे कुछ अण्डोंके बच जानेपर ही मीनवंशका जारी रहना निर्भर है। पर इन मछलियोंसे कहीं श्रेष्ठ वे मछलियाँ है जो अपने अण्डोंको अपने अण्डकोशमें ही से लेतीं है। इनके बीस अण्डे पूर्वोक्त मछलियोंके करोड़ों अण्डोंके बराबर हैं। इसी प्रकार टरमाईट जातिकी चिउँटी २४ घण्टेमें ८०,००० अण्डे देती है और गोरण्डियस जातिका कीड़ा एक दिनसे भी कममें अस्सी लाख अण्डे देता है। परन्तु हाथी इन सबसे कहीं श्रेष्ठ है जो तीस वर्षकी अवस्था प्राप्त कर लेनेके बाद बच्चे देता है और जिसके बच्चे दो वर्ष तक माताके गर्भमें रहते हैं। इसी प्रकार एक सालमें होनेवाला बन्दरका एक बच्चा असंख्यों मछलियोंसे उत्तम है।

दुहरावका सिद्धान्त।

सदाचारकी उत्पत्ति और विकासकी जो बात हमने कही है वह प्राणिशास्त्रके दुहरावके सिद्धान्त (*Recapitulation Theory of Biology*) से भी प्रमाणित होती है। इस सिद्धान्त (Theory) का अर्थ यह है कि

व्यक्तिका इतिहास जातिहीके इतिहासका संक्षेप है। अर्थात् जातिके जीवनमें जो जो घटनायें उपस्थित हुई हैं वे नमूनेके तौर पर, अत्यन्त संक्षिप्त रूपसे, व्यक्तिके जीवनमें भी घटती हैं। जाति जिन जिन अवस्थाओंसे होकर पार हुई है वे हीं अवस्थायें व्यक्तिके जीवनमें भी व्याप्त होती हैं। गर्भमें मनुष्यकी क्या शकल रहती है तथा उसमें क्या क्या परिवर्तन उपस्थित होते हैं; पुनः जन्म लेने पर वह पहले किस प्रकार चलने फिरनेसे मजबूर रहता है तथा ज़रा बढ़ने पर वह किस प्रकार रेंगता है, पीछे वह किस प्रकार घुटनोंके बल चलना आरम्भ करता है, तथा और बड़ा होने पर वह किस प्रकार खड़ा होना और चलना सीखता है, इत्यादि शारीरिक बातों पर विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। हमें यहाँ व्यक्तिके नैतिक इतिहाससे ही मतलब है और यहाँ भी दुहरावका सिद्धान्त हमारी वैसी ही मदद करता है। हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि *मनुष्यका बच्चा—चाहे हम उसे दुश्चरित्र (immoral) कहें या नहीं—अत्यन्त ही स्वार्थी है।* उसे केवल अपनी ही फ़िक्र है। अपने सुख और आरामके अतिरिक्त दूसरा कोई विचार उसके मनमें उत्पन्न नहीं होता। माताके बीमार होने पर भी वह उसी प्रकार दुग्धपान करना चाहता है। ज़रासी ही चेतनताके बढ़ने पर उसमें निस्सन्देह पर-पीड़नसे पीड़ित होनेकी कुछ झलक दृष्टिगोचर होने लगती है; परन्तु अभी तक वह पूर्णतः स्वार्थी ही होता है। दूसरोंका अपकार करने और दुःख पहुँचानेमें भी उसे आनन्द मिलता है। क्या आपने कभी अपने बालकोंको चींटी या अन्य किसी कीड़ेको पृथ्वीमें चलता हुआ पाकर उसे निष्प्रयोजन मसलते हुए नहीं देखा है? सुन्दर तितलियोंको देख कर आपके नन्हें बच्चेने उन्हें पकड़ देनेके लिए क्या कभी आपसे

अनुरोध नहीं किया है? धीरे धीरे बच्चेकी अनुमान शक्ति (imagination) बढ़ती है, उसमें सहृदयता उत्पन्न होती है और उसके हृदयमें सदाचार (Morality) का जन्म होता है । वह अनुमान करने लगता है कि उसके पाले हुए पक्षी, उसके कुत्ते और बिल्लियाँ यहाँ तक कि उसके खिलौने भी उसीके समान सुख दुःख अनुभव करते हैं—उसीके समान प्रसन्न और खिन्न होते हैं तथा उसीके समान हँसते, रोते और अन्य काम करते हैं। अपने खिलौनोंके प्रति बच्चेके इस प्रेम प्रकट करनेकी क्रियामें निस्सन्देह अपने पुत्र और पुत्रियोंके प्रति वयस्क लोगों-के लाड़ प्यार करनेका एक फीकासा प्रतिबिम्ब दीख पड़ता है। बढ़ने और स्याने होने पर बच्चा पुरुष या स्त्रीमें परिवर्तित होता है और इसी समय उसके हृदयमें प्रेमका इन्द्रधनुष्य उदित होता है। फिर बच्चा पिता या माता बनता है और पहले संगीतकी दूसरी आवृत्ति शुरू होती है। खेला हुआ अभिनय दुबारा खेला जाने लगता है।

जनन-प्रवृत्ति-ही सदाचार-की माता है।

प्राणिविद्याके पण्डितोंने यह सिद्ध कर दिया है कि इसी जनन या वंशके कायम रखनेकी प्रवृत्तिसे सभी प्रकारके करुण भावोंकी—सहृदयताकी—सदाचारकी—उत्पत्ति हुई है। यह जननप्रवृत्ति क्या है? जीवनकी सेवा करना उसे कायम रखना और बढ़ाना यही तो उसका लक्ष्य है। कोई स्वार्थ या कोई कामना नहीं है। मनुष्यके बच्चे वृद्धावस्थामें उसकी मदद कर सकते हैं; परन्तु पक्षियों और चौपायोंका उनके बच्चोंसे क्या उपकार होता है? *यही प्रवृत्ति सदाचारकी जननी है। क्योंकि जीवनकी सहायता करने, उसके बढ़ाने और पूर्ण करनेके अतिरिक्त नीति (Morality) का भी और कोई उद्देश नहीं है।*

अतएव जननीत्व ही सम्पूर्ण सदाचारका जनक है और यह प्रवृत्ति कितनी दृढ़ है ! यदि हमारे अपने बच्चे नहीं होते हैं तो हम दूसरोंके बच्चोंको निज सन्तानकी तरह ग्रहण करते हैं। उन्हींके लालन पालनसे हमारी किंचित् तुष्टि हो जाती है। यदि हमें यह भी सौभाग्य प्राप्त नहीं होता तो हम पक्षियोंको और जानवरोंको पालते हैं और उन्हीं पर अपने प्रेम, करुणा, सहानुभूति इत्यादिके भावोंको व्यय करके अपने व्यथित और लालायित हृदयको कुछ सन्तोष प्रदान करते हैं। केवल मनुष्यके बच्चेको देख कर ही हमारा प्रेम नहीं उमड़ता, वरन् अन्य जीवोंके बच्चोंको देख कर भी हमारा हृदय हिलोरें मारने लगता है। जहाँ कहीं हम शिशु-जीवनको देखते हैं, जहाँ कहीं हम देखते हैं कि किसी नन्हेंसे जीवनको हमारी सहायताकी आवश्यकता है, वहीं हम सहायता करनेके लिए कटिबद्ध हो जाते हैं। *इसी सहृदयताके कुछ और बढ़ने पर मनुष्य जब किसी भी जीवधारीको दुःखित देखता है तो स्वयं अपने आपको उसके दुःखसे पीड़ित अनुमान करता है।* अतः इस विषयमें कोई सन्देह शेष नहीं रह सकता कि जनन-प्रवृत्तिसे ही सदाचारकी उत्पत्ति हुई है। विवाह करनेके पश्चात् उत्साहहीनसे भी उत्साहीन मनुष्य काम करनेके लिए और अपनी स्त्री और बच्चेको आराम देनेके लिए प्रयत्न करनेको उत्तेजित होता है। अपनी स्त्री तथा अपने पुत्र पुत्रीके प्रति अपने कर्तव्यको स्मरण करके मनुष्य अकसर बहुत कठिन परिश्रम करता है। विवाह करने और सन्तान उत्पन्न करनेके पश्चात् स्वार्थीसे स्वार्थी मनुष्यके स्वभावमें भी अद्भुत परिवर्तन उपस्थित होता है और अनुदार और क्रोधवान् स्वभावका मनुष्य भी अक्सर स्नेहपूर्ण और स्वार्थहीन पिता बनता है और उसके आचार विचार संयमित हो जाते हैं। इसी प्रकार स्वार्थी और विवेक-शून्य स्त्री भी स्नेह-मयी पत्नी और माता बन जाती है।

आत्मरक्षा और सन्तान रक्षाके लिए ही अनेक जीव यूथों और झुण्डोंमें रहने लगते हैं जिनसे पीछे समाजका विकास होता है। इन यूथोंमें रहनेवाले जीवोंको जीवन-संग्राममें अन्य जीवोंसे उत्कर्षता प्राप्त होती है। जंगली घोड़े गरोह बाँधते हैं, चीटियाँ और मधुमक्खियाँ छत्ते बनाती हैं और पक्षी झुण्ड बाँध कर स्थानान्तरमें जाते हैं (Migrate) । इसी सामाजिकताके प्रभावसे बहुतसे कमज़ोर जानवरोंकी नसल बाकी है। बाघ और चीते तथा अन्य सभी शिकारी जानवर निस्सन्देह बड़े बलवान् होते हैं, परन्तु कोई शिकारी जानवर एक पूर समूह पर आक्रमण नहीं कर सकता। जिस जातिमें इस सामाजिकताकी मात्रा जितनी अधिक होगी वह जाति अपनी नसलके जारी रखनेमें उतनी ही अधिक समर्थ होगी।

सदाचार और उसका उद्देश।

इसी लिए हमने पहले ही डाक्टर सलीबी और एलेनकीके कथनानुसार यह कहा था कि सदाचारका उद्देश—संख्या और श्रेष्ठता दोनोंके लिहाजसे—कम जीवनके स्थान पर अधिक जीवन स्थापन करनेका है। अतः *जिन कार्य्यों और वस्तुओंसे जीवनका विकास, उसकी पूर्णता, उन्नति तथा वृद्धि हो, वह नैतिक है और जिन कार्य्यों और वस्तुओंसे जीवनकी क्षति, ह्रास और नाश हो वह अनैतिक है।*

सदाचारकी परिभाषा।

हमारे जीवित रहनेहीकी इच्छासे नीतिकी उत्पत्ति हुई है और इसी पर हमारा जीवित रहना निर्भर है। इसीकी सहायतासे हमारा जीवन पूर्ण और उन्नत हो सकता है। इसीकी मददसे हमारी सभी कामनायें पूरी हो सकती हैं। अतएव डाक्टर सलीबी और एलेनकीके कथनानुसार

हम सदाचार को 'जीवनका धर्म' या 'मज़हबे जिन्दगानी' (Religion of Life) कह सकते हैं।

जीवन बढ़ते-ही जाना चाहता है—सदाचार का अनन्त उत्तेजन।

हम चारों ओर देखते हैं कि जड़ावस्थाके मध्यसे जीवन स्फुरित होना चाहता है। वह जड़को चैतन्य और चैतन्यको अधिकतर चैतन्य बनाना चाहता है। पहले किसी प्रकारका जीवन न था, तत्पश्चात् बहुत साधारण तौरका जीवन उत्पन्न हुआ, इसके अनन्तर धीरे धीरे जीवन बढ़ता गया और अधिक विकसित होता गया। समस्त प्राणियोंके देखने पर यदि कोई बात स्पष्ट होती है तो यही कि जीवन बढ़ना, फैलना, अधिक उन्नत और पेचीदा होना चाहता है। प्रत्येक जीवके शरीरमें असंख्य जीवन-बीज (Germ plasms) इस प्रकार संचित किये जाते हैं, मानो प्रकृति भावी जीवनकी तैयारीहीके लिए—जातिके कायम रखनेहीके लिए—व्यक्तिकी रचना करती है!

जीवन-संग्रामका यथार्थ अभिप्राय।

जीवन-संग्राम (Struggle for existence) और असंख्य जीवोंके विनाशको देखकर यह अक्सर कहा जाता है कि प्रकृति बड़ी निर्दयी है; परन्तु इस दृष्टिसे देखने पर वह करुण-हृदय ही प्रतीत होती है। ऊपर ही कहा जा चुका है कि प्रकृति संख्याकी अपेक्षा श्रेष्ठताको अधिक पसन्द करती है। अतएव इस प्रकार देखनेसे उसकी बाहरी निर्दयतामें भी सहृदयता ही नजर आती है।

गत अध्यायका परिशिष्ट ।

सर्वोत्तम वैवाहिक प्रथा ।

इस अध्यायकी आलोचनाके द्वारा सर्वोत्तम वैवाहिक प्रथाका प्रश्न आपसे आप उठ खड़ा होता है । इस नोटमें इसी प्रश्नको संक्षेपमें समाप्त करनेकी चेष्टा की जाती है। जिन पाठकोंने इस अध्यायको ध्यानपूर्वक पढ़नेका कष्ट उठाया है वे सहजमें ही देख सकते हैं कि उत्तम वैवाहिक प्रथा कौनसी है। हमने ऊपर कहा है और प्रमाणित करनेकी चेष्टा की है कि प्रकृति संख्या और श्रेष्ठताके लिहाजसे जीवन-की संख्याको बढ़ाना चाहती है। जननप्रवृत्तिके प्राबल्य पर भी थोड़ासा विवेचन किया जा चुका है। अतएव यह स्पष्ट ही है कि वंश-वृद्धि ही विवाहका प्रधान उद्देश्य है। "*पुत्रार्थे क्रियते भार्य्या।*" विज्ञान भी हमारे शास्त्रकारोंके इस कथनका समर्थन करता है । अतएव उत्तम वैवाहिक प्रथा वही है, जिसके द्वारा उत्तम सन्तान उत्पन्न हो सके। इस बातकी उपलब्धि एक पुरुष या एक स्त्रीके एक पत्नि या एक पति होनेकी प्रथासे ही हो सकती है। विवाहकी किसी दूसरी प्रथाके द्वारा सन्तानका लालन-पालन पूर्णताके साथ नहीं हो सकता और न सन्तानको मातृ-पितृ-स्नेह ही प्राप्त हो सकता है। पर हमने अभी देखा है कि जिस जीवके लालन-पालनमें जितने अधिक परिश्रम और सावधानताकी आवश्यकता होती है उतनी ही उस जीवको जीवन-संग्राममें शिष्टता प्राप्त होती है। वर्तमान वैवाहिक प्रथासे तात्पर्य्य एक पुरुष या एक पत्नी-प्रथासे है। बाल-विवाह, जातिके अन्दर विवाह, पुरुष स्त्रीकी सम्मति

लिए बिना विवाह, इत्यादि बातों पर लेखक कोई मत प्रकट नहीं करना चाहता। सम्बन्ध अविच्छेद और जन्म भरके लिए होना चाहिए या कुछ हालतोंमें वह तोड़ा भी जा सकता है, इत्यादि बातों पर भी यहाँ विचार करनेको स्थान नहीं है।

वर्तमान समाजसे असन्तुष्ट कुछ साम्यवादी दल विवाह-प्रथाको सर्वथा उठा देना चाहते हैं। उनका कहना है कि 'मेरा पुत्र' या 'मेरी स्त्री' इसीसे 'मेरी जायदाद' या 'मेरा धन' का जन्म होता है। अतएव समानता स्थापित करनेके लिए सबसे पहली आवश्यक बात यह है कि विवाहप्रथाका अन्त कर डाला जाय। निस्सन्देह वर्तमान सामाजिक संस्थाओंके अन्दर बढ़े और पले हुए हम जैसे मनुष्योंके लिए ऐसी नूतन क्रान्तिका अनुमान तक करना भी कठिन है और इसका नाम सुनकर भी हमारा काँप उठना स्वाभाविक है। परन्तु सब कुछ मान लेने पर भी इन क्रांतिकारियोंके साथ सहमत होना कठिन प्रतीत होता है। ऊपर हमने जो कुछ कहा है यदि वह सच है—यदि इस जननप्रवृत्तिसे ही सदाचारकी उत्पत्ति हुई है, तो क्रांतिकारियोंके इच्छित परिवर्तनके द्वारा भारी अनर्थकी सम्भावना दीख पड़ती है। केवल मनुष्योंमें ही नहीं अन्य जीवोंमें भी स्वभावतः बहुत बड़ा सन्तानप्रेम पाया जाता है। पक्षी और साधारण जानवर भी अपने बच्चोंको प्यार करते हैं। उनकी रक्षा और लालन-पालनके लिए अपना प्राण तक न्योछावर करते हैं। परन्तु इस महती क्रांतिके द्वारा इस निस्स्वार्थताके भाव पर कुठाराघात होता है; मनुष्यसे एक बड़ी प्यारी वस्तु—उसकी सन्तान—छीन ली जाती है; उसे अपनी स्वाभाविक सन्तानस्पृहा लालन-पालनकी स्वाभाविक कामना—को तुष्ट करनेका अवसर नहीं प्राप्त होता। इस परिवर्तनके द्वारा मनुष्यके स्वभाव-

में भयानक स्वार्थ-पूर्ण क्रांतिके हो जानेकी बहुत बड़ी सम्भावना है। इस लिए यह क्रांति सर्वथा हानिकर और विपज्जनक है। विवाह ही वह वस्तु है जो मनुष्यके भीषण कामोन्मादको दबाये रखती है। सन्तानप्रेमके ही द्वारा मनुष्य निःस्वार्थ होना सीखता है। यही मनुष्यके कार्यों और आचरणोंको श्रृंखलाबद्ध और संयमित रखता है। जातिहितके सामने वैयक्तिक हितका महत्त्व सदा गौण है। जाति-हितके लिए प्रकृति असंख्य प्राणियोंका बलिदान करती है। स्वार्थ-हीनता या सदाचार ही जीवनका नियम है। अतएव समाजमें स्वार्थपरताका बढ़ना कदापि हितकर नहीं हो सकता।

पुरुष और स्त्रीके सम्बन्धमें जो उल्लास, उत्कण्ठा, हृदय-हिल्लोल और मृदुलता पाई जाती है, इस क्रांतिके द्वारा उसपर भी पानी फिर जायगा। प्रेम काममें परिणत हो जायगा। प्रेमी और प्रेमिकाके अभिनयका अन्त हो जायगा। कविकी कविता और नाटककारके नाटकमें कोई रस नहीं रह जायगा। एक प्रकारसे मनुष्यका जीवन ही नीरस, शुष्क, निस्स्वाद, सहृदयताशून्य और पाशविक हो जायगा।

आठवाँ अध्याय।

सदाचारका प्रचार।

सदाचार-प्रचारकी कई रीतियाँ हैं और उनमें प्रथम रीति दण्ड, दमन, ताड़न या सज़ाकी है। बहुत प्राचीन समयसे ही राष्ट्र दुष्टों या दुश्चरित्रोंको सज़ा देता आया है और निस्सन्देह ऐसा करनेका उसे अधिकार है। इसका आधार इस बात पर है कि हम पीड़ासे डरते हैं। अतएव हम डरसे सच्चरित्र बनाये जाते हैं। राष्ट्र हमसे कहता है—"तुमने अपराध किया, इसलिए तुम्हें यन्त्रणा सहनी पड़ी। अब भविष्यके लिए होशियार हो जाओ। देखो, यदि फिर ऐसा करोगे तो तुम्हें वही नहीं, उससे भी कठिन यन्त्रणा भुगतनी पड़ेगी।" हमारे न्यायालयोंमें भी आईनके अनुसार दो बार अपराध करनेवालोंको कुछ विशेष सज़ा मिलती है। प्राचीन समयमें—जब कि राजनीति और धर्ममें कोई भेद नहीं माना जाता था—राजा लोग नियम, द्वारा, सदाचार-प्रचारको अपना कर्तव्य मानते थे।

सदाचार-प्रचारकी पहली रीति-दण्ड और दमन।

परन्तु ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है इस उपायसे बहुत कम काम लिया जाता है। सभी सभ्य देश (निस्सन्देह इनमें भारत सम्मिलित नहीं हो सकता !) अब इसका बहुत कम आश्रय लेते हैं। इस रीति-की उपयोगितामें अब बहुत कम विश्वास किया जाता है और जितना ही कम दण्ड दिया जाय उतना ही अच्छा समझा जाता है। मनुष्यकी

सहानुभूति और सहृदयता दिन पर दिन बढ़ती ही जाती है। वह अपने अपराधी भाई पर क्रुद्ध होने या बदला लेनेके बदले उलटा उसके प्रति सहानुभूति दिखलाता है। वह सोचता है—"अहो, यह कैसा हत-भाग्य पुरुष था जो अपने हाथों आप ही आपत्तिमें फँसा, इसने अपने कार्यका नतीजा पहले न सोच लिया, यदि यह सुसंगतिमें रहता, इसे अच्छी शिक्षा मिली होती तो बेचारेको ये दिन क्यों देखने पड़ते?" अतएव अब दण्ड देना राष्ट्रके शासनकी असफलताका चिह्न माना जाता है। यदि वह अच्छा और आदर्श प्रबन्ध कर सकता तो अपराधी ही कहाँसे आते जिन्हें उसको दण्ड देना पड़ता है? इसलिए सज़ाकी रीति अब घृणाकी दृष्टिसे देखी जाती है। * अभी हालहीकी बात है कि रूसके नये प्रजातंत्रने फाँसीकी सजाको सर्वथा उठा दिया है। अब यह माना जाने लगा है कि जो काम दण्ड द्वारा नहीं होता वह प्रेम और शिक्षाके द्वारा बड़ी सुन्दरताके साथ सम्पादन किया जा सकता है। सभी सभ्य देशोंमें दण्डनीय अपराधोंकी संख्या घटती जाती है और सज़ा हलकी होती जाती है। इँग्लैंडहीमे उन्नीसवीं शताब्दिके मध्य तक राबर्ट पीलके सुधारोंके पूर्व कोई दो सौ तरहके अपराधोंके लिए मृत्युकी सजा दी जाती थी।

अठारहवीं शताब्दिके अँगरेज़ी इतिहासकी इस घटना पर विचार कीजिए।

इँग्लैंडके इतिहाससे कठिन दण्डका एक उदाहरण।

१७७७ ई० में जहाज़ी पल्टनका एक दल एक मनुष्य-को ज़बरदस्ती पकड़कर ले गया और उसे उसने जहाज़ी काममें भरती करा दिया। इस मनुष्यको उन्नीस वर्ष-की एक स्त्री और दो बच्चे थे। इस मनुष्यके इस प्रकार चले जाने पर उसके असबाबको किसीने पुराने क़र्ज़ेके बहाने नीलाम करा लिया और उसकी स्त्रीको गली गली

* यह अध्याय १९१९ के आरम्भमें लिखा गया था।

भीख माँगनेकी नौबत आई। अतिशय हताश होकर और आवश्यताओंसे तंग आकर उस स्त्रीने किसी कपड़ेकी दूकानसे कुछ मोटा कपड़ा चुरा लिया। अपने अभियोगकी जवाब देहीमें उसने कहा कि—"मैं बड़े आरामसे किसी-से एक पैसा भी उधार लिये बिना अपना जीवन व्यतीत करती थी कि एक दिन नाविकोंके एक दलने मेरे पतिको मुझसे छीन लिया। इससे मैं मुहताज हो गई। इस समय सोनेके लिए मेरे पास बिछोना न था, अपने बच्चोंको खिलानेके लिए भोजन न था और कपड़ोंके बिना मैं प्राय: नंगी हो रही थी। ऐसी अवस्थामें सम्भव है कि मुझसे कुछ अपराध हो गया हो; परन्तु मैं दु:खसे कातर हो रही थी और मै नहीं कह सकती कि मैंने कौनसा अपराध किया है। क्योंकि उस समय मन और मेरे कार्य्य मुझसे सर्वथा स्वतन्त्र हो गये थे।" विचारपतियों और वकीलोंने राय दी कि उसने बहुत बड़ा अपराध किया है और इस लिए उसे फाँसी होनी चाहिए। अतएव अपने नन्हेंसे बच्चेको गोदमें लिए और उसे दूध पिलाते हुए उस स्त्रीको अपना प्राण दे देना पड़ा। आईनकी इसी निष्ठुरता और * पैशाचिकताको व्यक्त करनेके लिए ही विक्टर ह्यूगोने अपना Les Miserables नामक उपन्यास लिखा है। कौन ऐसा आदमी है जो इसे पढ़ कर एक बार भी न रोया हो? हम पहले ही देख चुके हैं कि एकाकी, स्वेच्छाचारी और स्वार्थी जन्तुसे मनुष्य एक सामाजिक जानवर बन रहा है तथा उसका सदाचार क्रमश: दिन प्रति दिन बढ़ रहा है। मनुष्योंके समूहको ही समाज कहते हैं, अतएव जैसे मनुष्य होंगे वैसा ही समाज भी होगा। जैसा अन्त:करण व्यक्तियोंका होगा वैसा ही

* From Lecky's "History of England in the Eighteenth Century" quoted in E. S. P. Hayne's Lecture named "Modern Morality and Modern Toleration" —Watts.

अन्तःकरण समाजका भी होगा । इसी कारण हम प्रत्येक युगमें समाजके आईनको इतना भिन्न पाते हैं । समाज जितना उन्नत होता है, उसके आईन भी उतने ही उन्नत होते हैं ।

इसका दोष।

और वास्तवमें यदि राष्ट्रका कर्तव्य बदला लेना नहीं वरन् अपराधीका सुधार करना है तो सज़ा देनेसे यह कामना पूर्ण नहीं होती । सजा पानेसे हममें केवल भयका सञ्चार होता है, हमारा वास्तविक सुधार—हमारे हृदय और मस्तिष्कका सुधार—अणु मात्र भी नहीं होता । इससे उन कुप्रवृत्तियोंका जिनकी प्रेरणासे हम अपराध करते हैं कदापि मूलोच्छेद नहीं होता । यह अकसर देखा गया है कि अधिक सज़ा पानेसे अपराधीका हृदय और भी अधिक बिगड़ा है । हमने अपने कानोंसे अपराधियोंको जेलखानेको 'ससुराल' कहते हुए सुना है । वे जेलखानेको किसी प्रकार बुरा नहीं समझते । उलटा कहते हैं कि जैसा काम करके बाहर खाया वैसा जेलमें । क्षुधासे व्याकुल और नित्य कड़ाके करनेवाले इस हतभाग्य देशमें अनेकों पुरुष विद्यमान हैं जो कोशिश करके खुशीके साथ जेल जानेको प्रस्तुत रहते हैं, और किस लिए ? केवल इसी हेतु कि वहाँ उन्हें कमसे कम दोनों वक्त भोजन तो मिलेगा, चाहे कितना ही शारीरिक परिश्रम क्यों न करना पड़े ! ! निस्संदेह *शारीरिक सज़ा पशुओंके लिए ठीक हो सकती है, उन मनुष्योंके लिए नहीं जिनमें प्रेम, दया, सहृदयता इत्यादि गुण विद्यमान है ।* * हम यह नहीं

जीन वैलजीनकी कथा ।

* Les Miserables के पाठक जीन वैलजीन और बिशप (पादरी)के मिलन-दृश्यको याद करेंगे । जीन वैलजीन सजा पा चुका है, अतः वह जहाँ कहीं जाता है वहींसे दुर दुरा दिया जाता है । जाड़ेकी अँधेरी और भयानक रात है, बर्फ गिर रहा है और सर्दीसे दाँत कड़कड़ा रहे हैं। सभी घरों, और मुसाफिरखानोंसे निकाले जाने पर वह बिशप (पादरी)के घर पहुँचता है ।

कहते कि अपराधियोंको दण्ड देना इसी क्षण बन्द कर दिया जाय। नहीं, एकाएक ऐसा करनेसे लाभके बदले हानि होगी, इसका नतीजा समाजको विच्छिन्न करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा। परन्तु हाँ, इन बातोंको जान लेने और अपने विचारोंको उन्नत और परिवर्तित करनेकी बड़ी आवश्यकता है।

" मैं उन्नीस वर्ष पर्य्यन्त सजा भुगत चुका हूँ। मैं अपराधी हूँ। मैं जहाँ जाता हूँ वहाँ ही लोग मुझसे कहते हैं—' हट, दूर हो '। मैं भूखा हूँ। क्या मुझे ठहरनेकी अनुमति मिलेगी ? "

" मैडेम मैगलोयर (दाई), टेबुल पर एक और रकाबी रख दो। "

" ऐं ! यह क्या ? ठहरिए ! क्या आपने मेरी बातोंको नहीं सुना ? मैं जहाजी गुलाम हूँ। (इस समय फ्रांसमें भारी अपराधी गुलाम बनाकर डाँड़ खेनेके लिए जहाजोंपर भेज दिये जाते थे (galley slave)) क्या आप मुझे खानेके लिए कुछ अन्न और रात बितानेके लिए स्तबलमें थोड़ीसी जगह दे सकते हैं ? "

" मैडम मैगलोयर ! कमरेमें बिछौना ठीक कर दो। "

जीन वैलजीनके विस्मयका कोई ठिकाना नहीं रहता है; उसका हृदय बेचैन हो उठता है। वह कहता है—

" आप कृपालु हैं। मैंने आपको स्पष्ट कह दिया है कि मैं कहाँसे आ रहा हूँ तौ भी आप मुझसे घृणा नहीं करते हैं ? "

बिशपने प्रेमके साथ उसके हाथोंको स्पर्श करके कहा—" मुझे तुमसे नाम पूछनेकी जरूरत नहीं है। मैं तुम्हारा नाम पहलेहीसे जानता हूँ। "

" ऐं ! आप मेरा नाम जानते हैं ! "

" हाँ, तुम हमारे भाई हो। "

इस उपन्यासके पाठक इससे आगेकी बातोंको याद करें। रातको दो बजे जीन वैलजीनकी नींद खुल जाती है। बिशपके करुण-व्यवहारसे उस समय उसकी सोती हुई अच्छी प्रकृति जाग चुकी है और वह बुरी और नीची प्रवृत्तिके साथ लड़ रही है। परन्तु विजय बुरी प्रकृतिकी ही होती है। बहुत देर तक अपनी

दूसरी रीतिसे मनुष्यवर्गको स्वर्गके लालच तथा नरकके भयसे सदाचारकी ओर प्रवर्तित तथा दुराचारसे निवृत्त किया जाता है। *ये दोनों रीतियाँ एक ही प्रकारकी हैं।* दोनों भयसे काम लेती हैं। दण्ड दोनोंमें विद्यमान है। एकमें प्रत्यक्ष है, दूसरेमें परोक्ष। एकमें हमें तुरन्त दण्ड भुगतना पड़ता है और दूसरेमें मरणोपरान्त अनन्त कालतक नरक भोगना पड़ता है और उन यन्त्रणाओंको सहन करना पड़ता है जिनका नाम लेते भी रोंगटे खड़े हो आते हैं! बलिहारी है स्वर्ग-नरक निर्माण करनेवालोंकी बुद्धिकी और उनके हृदयकी जो उस समय तनिक भी द्रवित नहीं हुआ! इन दोनो रीतियोंके मध्य बड़ा अन्तर यही है कि यह पिछली रीति पहली रीतिकी अपेक्षा अधिक मानसिक है।

दूसरी रीति-स्वर्गका लालच और नरकका भय।

कुप्रवृत्तियोंके साथ लड़नेके बाद वह बिशपके चाँदीके बर्तनोंको लेकर भाग जाता है और सिपाहियों द्वारा पकड़ा जाकर पादरीके सामने लाया जाता है।

बिशप कहता है—"मै तुम्हें देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। तुम उन चाँदीके शमादानोंको क्यों छोड़ आये? उन्हें भी तो मै तुम्हें दे ही चुका था।"

सिपाही बोला—"तब यह आदमी जो कहता था वह सत्य है। इन चाँदी-"

सिपाही अपना वचन पूरा भी न कर पाया था कि उसकी बातोंको काट कर बिशप बोल उठा—"इसने तुमसे यही कहा था न कि मैंने एक वृद्ध पादरीके घरमें रात बिताई थी और ये बर्तन मुझे उस पादरीहीसे प्राप्त हुए थे? चोर समझ कर तुम इसे यहाँ लाये हो। मै सब समझ गया; तुमसे गलती हुई है।"

"यदि यही बात है तो हम इसे छोड़ देते है।"

"अवश्य छोड़ दो।" इसके बाद जीन वैलजीनकी ओर देख कर पादरीने कहा,—"जानेके पूर्व तुम अपने चाँदीके शमादानोंको भी लेते जाना।"

जीन वैलजीनके हृदयमें अजब हलचल पैदा हो गई; उसके दिलकी क्या हालत हुई यह बतलाना असम्भव है। उसका जीवन एकदम पलट गया। पादरीने उस पर कौनसा जादू डाल दिया और पश्चात् वह किस तरहका आदमी बन गया यह उक्त उपन्यासके पाठकों पर विदित ही है।

इसलिए पहली रीतिके बारेमें जो कुछ कहा गया है वह इसके सम्बन्धमें भी कहा जा सकता है। *भयके ऊपर स्थित होनेके कारण इसके द्वारा भी हमारा सुधार नहीं होता।* इसकी नींव हमारे स्वार्थमें है, परमार्थमें नहीं। यहाँ भी गरज़ बदला लेनेसे ही है, हमारे सुधारसे नहीं। यहाँ भी दण्डसे ही काम लिया जाता है। मज़हब नरकके अनेकों भयानक चित्र हमारे मानस-पटलके सामने पेश करता है और कहता है—'देखो, हमारे नियमोंका पालन करो जो हमें स्वयं ईश्वरसे प्राप्त हुए हैं। तुम्हें इन नियमों पर विचार करनेका कोई अधिकार नहीं—'खुदाकी बातें खुदा ही जाने'। वे तुम्हारी साधारण बुद्धिमें नहीं आ सकतीं। वे तुम्हारे वाक्यमनोतीत हैं। मानवीय बुद्धिमें यह शक्ति कहाँ कि वह ईश्वरके निगूढ़ भेदोंके समझनेकी आशा तक कर सके! रे क्षुद्र, खबरदार, सचेत होजा! चार ही दिनके पश्चात् वह घड़ी आ पहुँचेगी जब तुझे केवल हाथ ही मलना पड़ेगा, जब तेरे किये कुछ न बनेगा। एक दफ़ा रंज हो जाने पर पीछे खुदा कुछ भी सुननेवाला नहीं है।"

इस रीतिके दोष।

यह कहनेकी अवश्यकता नहीं कि मज़हबके सभी नियम नैतिक नहीं होते। बहुतोंका तो नीतिसे ज़रा भी सरोकार नहीं है। जैसे—कितनी बड़ी शिखा रखनी चाहिए, किस तरफ़ मुँह करके नमाज़ पढ़नी चाहिए, सप्ताहके किस दिनको पवित्र मानना चाहिए, किस तरफ़ मुँह करके खाना चाहिए, इत्यादि इत्यादि। मज़हबके अधिकांश नियम इसी प्रकारके हैं। इन नियमोंका उल्लङ्घन कदापि क्षमा नहीं किया जा सकता, नैतिक नियमोंका उल्लंघन भले ही क्षमा कर दिया जाय। यहाँ पर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि मज़हबका क्षेत्र जहाँ तक नीतिके क्षेत्रसे मिलता है

मज़हबके सारे नियम नैतिक नहीं होते।

वहाँ तक मज़हबके द्वारा नीतिकी थोड़ी बहुत पुष्टि और रक्षा अवश्य हुई है।

अब हमें इसकी उपयोगिता पर विचार करना चाहिए। इसका एक दोष मैं पहलेही बतला चुका हूँ कि यह भय हमारे प्रेम और हमारी सहृदयतासे काम नहीं लेता। दूसरा दोष यह है कि अदृश्यके प्रत्यक्ष देखनेकी शक्ति सबमें एक समान नहीं है। भविष्यकी सब लोग कोई समान परवाह नहीं करते। दूरदर्शकसे दूर दर्शक मनुष्य भी पहले वर्तमानकी ही फ़िक्र करता है तब जनसधारणके विषयमें तो कहना ही क्या है। यदि मनुष्यकी प्रवृत्ति इसके विपरीत होती तो शराब, जुआ इत्यादिके कुपरिणामोंको जान बूझ कर भी वह क्यों उनमें लिप्त होता? हत्याकी सज़ा मृत्यु है, चौरीकी सज़ा क़ैद है। ऐसा जान कर भी वह क्यों हत्या या चोरी करता? जब प्रत्यक्ष दण्ड ही हम लोगोंको बुराईसे नहीं बचाता तो परोक्ष कहाँ तक बचावेगा? भविष्यकी अपेक्षा वर्तमानका ही अधिक प्रभाव पड़ता है। भविष्य अदृश्य है, अन्धकाराछन्न है। पश्चात् क्या होगा, इसका निश्चय कोई नहीं कर सकता। तब आओ जो अवसर है उसमें जहाँ तक हो सके अपना सुखसाधन कर लो, मज़े उड़ाओ, रङ्गरलियाँ मनाओ, निष्प्रयोजन चिन्तासे अपने हास्य-हिल्लोलमें बाधा मत डालो, जो होना होगा होता रहेगा—

> साधारण मनुष्य भविष्यकी परवाह नहीं करता।

आक़बतकी खबर खुदा जाने,
अभी तो आरामसे गुज़रती है।

बहुत लोगोंका यही भाव होता है। इस लिए यह रीति सभीको दुष्कर्मसे निवृत्त और सत्कर्मकी ओर प्रवर्तित नहीं कर सकती। और यदि यह ऐसा कर सकती तो इतने दिनोंके धर्म-साम्राज्यके बाद भी आज तक दुनियामें इतने अपराध इतनी बुराईयाँ क्यों बची रह जातीं?

> इस रीतिका एक और दोष।

इसका एक तीसरा दोष भी है कि *मनुष्यकी ज्ञान-वृद्धिके साथ साथ स्वर्ग नरकका विश्वास दिन प्रति दिन कम होता जाता है । दिन प्रति दिन यह गप्प और कल्पना मात्र समझा जाता है, अतः सदाचारको मजहबसे स्वतंत्र होकर दंडायमान होना चाहिए। नहीं तो मजहबके नष्ट हो जानेसे सदाचारके भी नष्ट हो जानेकी सम्भावना है।*

तीसरीरीति-नैतिक शिक्षा।

सदाचार-प्रचारकी एक तीसरी और सर्वोत्कृष्ट रीति भी है । पहले प्रमाणित किया जा चुका है कि नीतिकी स्थिति हमारे स्वभावमें है। हमारी नीति-बुद्धि हमें बाहरसे कदापि प्राप्त नहीं हुई है। और वस्तुओंकी तरह यह भी हमें अपने मानव और पशु, दोनों पूर्वजोंसे विरासतमें प्राप्त हुई है । वंशानुक्रम और परिस्थितिके नियमोंकी क्रियाके कारण इसकी जड़ हमारे भीतर और भी घुस गई है, यहाँ तक कि यह आज हमारे स्वभावका प्रधान अंग बन गई है। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि बहुत लोग केवल भय या लोभके कारण बुरे कामोंसे बचते हैं। परन्तु वे बहुत ही नीची श्रेणीके मनुष्य हैं, पशुओंके समान हैं, और विकासकी सबसे पिछली सीढ़ी पर हैं । उनका मानवीय निःस्वार्थ स्वभाव अभी तक विकसित नहीं हुआ है। परन्तु इनसे सहस्रगुने अधिक ऐसे लोग हैं जिनके हृदयमें केवल भय या लोभ तथा स्वार्थ या स्वहितसाधनके अतिरिक्त दया, प्रेम या परमार्थका भी निवास होता है। मनुष्य जातिके गौरव बढ़ानेवाले ऐसे बहुतेरे पुरुष हैं जो बिना कामनाके, बिना किसी प्रकारके भय या लोभके, केवल अपने स्वभावके ही वश होकर अच्छा काम करते हैं। क्या आप कह सकते हैं कि आप जितनी बार अच्छा काम करते हैं उन सभी अवसरों पर आप

यह सोच लेते हैं कि आप ऐसा करनेसे स्वर्ग प्राप्त करेंगे या ऐसा नहीं करनेसे आपको नरकमें जाना पड़ेगा ? यदि किसी दीन हीनको देख कर आप उसके क्लेश-मोचनके लिए उछल पड़ते हैं, तो क्या आप कह सकते हैं कि उस समय आपको स्वर्ग या अन्य किसी पुरस्कारकी कामना होती है या आपसे उसका दुःख देख कर रहा नहीं जाता, आप-का हृदय आपको चैन नहीं लेने देता ? तीसरी रीति मनुष्यकी इन्हीं प्रवृत्तियोंका आश्रय लेती है । वह सत्कर्म करना मनुष्यका स्वभाव बनाना चाहती है । जिस तरह खाना या सोना हमारा सहज स्वभाव है, सत्कर्मको भी इसी प्रकार हमारा सहज स्वभाव होना चाहिए । इस लिए यह हमारे मनको ज्ञान और हमारे हृदयको सहानुभूतिके द्वारा रञ्जित और पवित्रित करके फैलाने और उन्नत करनेकी चेष्टा करती है । इस रीतिका नाम है—नैतिक शिक्षा ।

नवाँ अध्याय।

नैतिक शिक्षा

ज्ञानकी आवश्यकता।

पूर्व अध्यायमें सदाचारप्रचारकी प्रचलित रीतियों पर विचार करते हुए कहा जा चुका है कि सदाचारप्रचारकी सर्वोत्तम रीति नैतिक शिक्षा है। मैं अन्यत्र कई स्थानों पर कई बार कह चुका हूँ कि नैतिक शिक्षाका उद्देश्य कुप्रवृत्तियोंका मूलोच्छेद करना होना चाहिए। नैतिक शिक्षासे बढ़ कर हमारे सच्चरित्र होनेका और कोई उत्तम उपाय नहीं है। इसलिए प्रत्येक पिताका यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह नीतिके उद्देशको एवं दुराचारके कुपरिणामोंको अपने पुत्र और पुत्रियोंको हृदयंगम कराता जाय, यहाँ तक कि वय:प्राप्त होने पर सत्यमार्ग पर चलना उनका सहज स्वभाव हो जाय। बालक *नैतिक तत्वोंको अपने ज्ञान द्वारा हृदयस्थ करें न कि किसी धर्मग्रन्थ या धर्मशास्त्रके आदेश होनेके कारण। तभी सदाचारकी नीव दृढ़ और अचल हो सकती है, अन्यथा नहीं।*

सदाचारका असली आधार हमारे स्वभावमें है।

नीतिका असली आधार हमारे स्वभावमें है। हम इसको नित्य अच्छी तरह देखते हैं, पर अपने विचारोंको वैज्ञानिक दृष्टिसे न देखने तथा उनपर गवेषणा न करनेके कारण इसे भूल जाते हैं। किसी बद-चलन आदमीको देख कर हम हर दिन यह कहते हैं कि—"उसको झूठ, जना या चोरीकी आदत पड़ गई है, उस पर अच्छे उपदेशोंका तुलसीदासके कथनानुसार क्या असर पड़ेगा?—

फूलहिं फलहिं न बेत, यदपि सुधा बरसहिं जलद ।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलै विरंचि सम ॥

ऐसे अवसरों पर हम निस्संदेह मानते हैं कि पूर्व शिक्षा ही सब कुछ है ।

वह पूर्व-शिक्षा और पूर्व संगति के अधीन है ।

हमारा अच्छा या बुरा स्वभाव, हमारी पूर्व शिक्षा, पूर्व संगति पूर्व विश्वासोंके अधीन है । यह पूर्व कारणों द्वारा विनिर्मित होता है । *शरीरकी बनावटके कमजोर होने पर हम जिस प्रकार बीमारियोंको नहीं रोक सकते, उसी प्रकार हृदय और मनके दुर्बल होने पर कुवासनाओंके समुत्थित होनेको एवं अपने आपको कुमार्गमें जानेसे भी नहीं रोक सकते ।* * एक अपराधी स्वभाव और शिक्षाका मनुष्य लालच आ पड़ने पर कुकर्मोंसे उसी प्रकार नहीं बच सकता जिस प्रकार एक साधारण मनुष्य शिर:पीड़ा या शरीरपीड़ासे । स्वच्छ वायु, स्वच्छ भोजन, निर्विकार जल इत्यादिके न प्राप्त होने पर जिस प्रकार हमारा शारीरिक स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, उसी प्रकार कुशिक्षा और कुसंगतिसे हमारा मानसिक, हार्दिक तथा नैतिक स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और जिस प्रकार अच्छे जल वायु, और अच्छी अच्छी ओषधियोंके सेवन करनेसे हमें बीमारीसे छुटकारा मिलता है उसी प्रकार अच्छी परिस्थितियोंसे—स्वच्छ परिष्कृत नैतिक वायुमण्डलमें रहनेसे हमारा मानसिक रोग भी दूर हो सकता है । पर जिस प्रकार भींग जाने पर बीमारी असाध्य हो जाती है, उसी प्रकार स्वभाव पड़ जाने पर—हृदय और मनके क्लिष्ट और कठोर हो जाने पर—लाख ओषधि करने पर भी हम अपने मानसिक रोगसे रहित नहीं हो सकते ।

---

*देखो अध्याय दूसरा ।

हाँ, इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि बिरले ही अवसरों पर यह नौबत पहुँचती है, नहीं तो अच्छी शिक्षा या अच्छी परिस्थितियोंका प्रभाव कम या अधिक हर किसी पर कुछ न कुछ अवश्य पड़ता है । *सब कुछ होने पर भी, हजारों दुष्कर्मोंके करने पर भी, मानव-हृदय इतना अधम या तुच्छ नहीं है ।*

अतएव हमारा भला या बुरा स्वभाव वंशानुक्रम और परिस्थितियों- (laws of Heridity and environment) के अधीन है । " बच्चोंको बचपनसे ही नैतिक गरलका पान करते देखो, असंख्यों वेश्यालयों और मदिरालयोंको देखो, बड़ोंकी कठोरता और निर्लज्जता शिशुओंके द्वारा बचपनसे ही अवलोकन होती देखो, बड़ोंको झूठ, छल और चालाकीका उपदेश करते हुए सुनो, और तब कहो कि दुराचारकी उत्पत्ति और वृद्धि क्या प्लेग या विसूचिका जैसे संक्रामक रोगोंके समान नहीं होती ? "

परम्परा और परिस्थितियोंके बदलनेकी आवश्यकता।

* दुश्चरित्रता भी एक प्रकारकी छूतकी बीमारी है । इसलिए हमें अपनी परिस्थितियोंके परिवर्तन करनेकी बड़ी आवश्यकता है । हम वंशानुक्रम (Heridity) के प्रभावको तुरन्त नहीं मेट सकते, पर परिस्थितिपरिवर्तनसे इसका भी असर कम हो जायगा । हम पहले भी कह चुके हैं कि मनुष्यजाति पर वंशानुक्रमसे अधिक परिस्थितियोंका ही प्रभाव पड़ता है । इसका कारण यह है कि मनुष्य चैतन्य है, वह इच्छा और ज्ञानसे युक्त है, चेष्टा करनेपर वह अपनी हर एक वासनाको अपनी इच्छासे दबा सकता है । और जिस प्रकार

* An Agnostics Apology–by Sir Leslie Stephen, P. 13. (Watts)

मनुष्यकी सन्तति हुआ करती है, उसी प्रकार हमारी परिस्थितियोंकी भी सन्तति होती है और शीघ्र नहीं तो दो चार पीढ़ीके बाद अच्छी परिस्थिति वंशानुक्रमके कुपरिणामोंको एक दम धो डाल सकती है। क्योंकि प्राचीनके प्रभाव मात्रका ही नाम वंशानुक्रम है। इसलिए यदि हम मनुष्यको आदर्श बनाना चाहते हैं तो हमें उसको अनुकूल परिस्थितियोंमें रखना पड़ेगा

भविष्यकी ज़िम्मेदारी।

हम वैसे ही हैं जैसा हमारे पूर्वजोंने तथा हमारी परिस्थितियोंने (हमारे देश, काल एवं हमारी अवस्थाने) हमें बनाया। इस लिए हमारे सिर पर यह बहुत बड़ा बोझ आ पड़ा है कि हम भली वस्तुओंकी उन्नति और बुरी वस्तुओंका मूलोच्छेद करें जिससे समाजके भविष्यमें हमारे हाथों कोई बाधा न पड़े। भविष्यकी ज़िम्मेदारी हमारे ऊपर पूरे तौरसे इस वजहसे और भी आ पड़ती है कि *हमारे कर्मोंका परिणाम कदापि नहीं मिट सकता*, चाहे ईश्वरकी अनन्त शक्ति भी इसके मिटानेकी चेष्टा करे। हम कर्मोंके स्वामी उसी समय तक है जब तक हमने उन्हें नहीं किया है। निशाना ताक कर एक मर्तबा बन्दूकके छोड़ देने पर जिस प्रकार उसकी गोली हमसे सर्वथा स्वाधीन हो जाती है उसी प्रकार एक मर्तबा किसी कर्मके कर बैठने पर उस कर्मका प्रभाव भी हमसे सर्वथा स्वाधीन हो जाता है। हज़ार यत्न और इच्छा करने पर भी हमारे कर्मोंका प्रभाव नहीं रोका जा सकता *। हे मनुष्य, याद रख कि तू अपने कर्मों द्वारा केवल अपने

* "तुम जानते हो विल्फ्रेड, कि एक समय हमने एक छोटी चिड़ियाका शिकार किया था--किसी हेतुसे नहीं, सिर्फ शिकारके निमित्त। मैं जानता था कि इसका वध करना ठीक नहीं, निशाना लगाते समय मैं इसे पूरी तरह समझ चुका था। तौभी मैंने घोड़ा दबा ही दिया। निमेष मात्रमें परोंका एक ढेर सामने आ गिरा। उस समयसे मेरा चित्त अनुताप और पश्चात्तापसे सदा दग्ध

भाग्यका ही नहीं वरन् दूसरोंके प्रारब्धका भी बनानेवाला और बिगाड़नेवाला है। यह जान कर भी यदि तू सच्चरित्र नहीं हो सकता, तो अन्य सभी उपाय तुझे सच्चरित्र बनानेमें असमर्थ होंगे।

कुछ सर्वथा सदाचार-प्रवृत्तिशून्य-मनुष्य।

अब आई मनुष्यकी शिक्षा और उसके स्वभावके परिष्कृत करनेकी बात। इस स्थान पर एक बात याद रखनेकी बड़ी आवश्यकता है, यद्यपि यह कुछ कठोर प्रतीत होगी कि जिस प्रकार अनुकूल खेतमें ही परिश्रम करना, हल चलाना, सिञ्चन करना एवं बीज बोना सार्थक होता है, उसी प्रकार अनुकूल हृदयोंमें ही नैतिक शिक्षाओं-का प्रभाव पड़ता है। ऐसी भी जमीन होती है जिसमें किसान श्रम करना एकदम निष्फल समझता है। वनस्पतियों और मवेशियोंकी ऐसी भी नसलें हैं जिनके बढ़ानेसे कोई लाभ नहीं होता, उलटा अहित होता है; इसलिए वे स्वयं मर मिटनेके लिए या प्राकृतिक अवस्थामें जीवित रहनेके लिए छोड़ दी जाती हैं। इसी प्रकार ऐसे भी मनुष्य हैं जिनका हृदय सभी सामाजिक और अच्छी प्रवृत्तियोंसे शून्य है। इन्हें सदाचारकी शिक्षा देना असम्भव है। मानवहितके लिए

हुआ करता है। मैं उस छोटी चिड़ियाको अपने हृदयसे कदापि नहीं भुला सकता। अन्त समय तक भी मै अपने पापका प्रायश्चित्त नहीं कर सकूँगा।"

"परन्तु चार्ली! ईश्वर तुम्हें क्षमा करेगा।"

"मैं इसकी परवाह नहीं करता।" चार्लीने इसका उत्तर अति उत्तेजित और गद्गद स्वरमें दिया,—"क्योंकि वह छोटी चिड़िया मुझे क्षमा नहीं कर सकती। अब वह सदाके लिए इस संसारसे प्रस्थान कर गई है।—George Macdonald's "wilfred Cumberland" P. 179 quoted in Clodd—The Story of Creation P. 121.

यह प्रत्येक राष्ट्रका कर्तव्य होना चाहिए कि वह ऐसे लोगोंको केवल दण्ड ही नहीं दे, वरन् उन्हें बढ़ने और सन्तानोत्पादन करनेसे रोके या अन्य उपायों द्वारा समाजके सरसे उनका भार उतारे। प्रत्येक मनुष्यको अपनी सन्तानोंकी संख्यापर नहीं वरन् उनके गुणो पर ध्यान देना चाहिए। जनसंख्याके अवाध्य बढ़नेसे भी बड़ी हानि होती है, क्योंकि इससे सुयोग्यो और गुणवानोकी उन्नतिका मार्ग बन्द हो जाता है।

आदर्श समाजमें समाज और व्यक्तिका सम्बन्ध।

हम कई बार कह चुके हैं कि सदाचार हमारा सहज स्वभाव बन जाना चाहिए। आदर्श समाज वही कहलायगा जिसकी आदर्श शिक्षा स्वभावसे ही लोगोंके हृदयमें सद्वासनाओंको जगा दे एवं जिससे कुवासनायें इस प्रकार भागें जिस प्रकार सूर्य्यकी गर्मीसे कपूर। सत्यका उद्देश्य सत्यके अतिरिक्त और कुछ नहीं होना चाहिए। सत्कर्मको सभी कामनाओंसे शून्य होना चाहिए। सत्य स्वयं साध्य है। आदर्श समाजमें इतना संगठन, इतनी एकता होनी चाहिए कि कोई आदमी समाजसे बिलग अपने अस्तित्वतककी कल्पना न कर सके—जहाँ कि सभीका हृदय वाद्य यन्त्रके तारोंके समान, भिन्न भिन्न होने पर भी एक ही स्वरमें बज रहा हो। समाजकी एकता यहाँ परले दर्जे पर पहुँच गई है। किसी देहधारीके शरीरके समान सारा समाज एक हो रहा है। इस समाजके व्यक्ति अणुओं और परमाणुओंके समान हैं। इस अवस्थामें सत्कर्म करना मनुष्यका सहज स्वभाव हो जाता है। पुरस्कार या सुख्याति प्राप्त करना भी उसका उद्देश नहीं होता। अच्छे कर्मोंके करनेकी उसे आदत पड़ जाती है, उसका स्वार्थ परमार्थमें बदल जाता है। बुरा कर्म करना उसके लिए असम्भव हो जाता है। चेष्टा

करने पर भी वह ऐसा नहीं कर सकता, क्योंकि स्वभावविरुद्ध जानेसे सभीको क्लेश होता है। यद्यपि इस आदर्शके यथार्थ होनेमें अभी बहुत देर है, तौभी यही आदर्श हमें अपनी आँखोंके सामने रखना चाहिए।

बुद्धि और हृदयके बढ़नेहीसे सदाचार बढ़ सकता है।

सदाचारको हम प्रथम अपनी बुद्धि और विवेक द्वारा और फिर अपने हृदय द्वारा सीख सकते हैं। हमारी बुद्धि हमसे कहती है—"दूसरोंके साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा तुम अपने साथ किया जाना पसन्द करते हो।" साधारण आत्मरक्षाके लिए भी हमें सदाचारयुक्त होनेकी आवश्यकता है। अनुमान करो कि यदि सब लोग हमारी ही तरह दुराचारी हो जायँ, कोई किसीकी जान माल प्रतिष्ठा सम्मानका ख्याल न करे, तो ऐसी अवस्थामें हमारे प्राण या संपत्तिकी ही रक्षा किस प्रकार होगी। हम कहते हैं कि हमें स्वार्थसे ही गरज है, दूसरोंकी हम कोई परवाह नहीं करते। परन्तु यदि दूसरे भी इसी प्रकार सोचने लग जायँ तो इसका क्या परिणाम होगा? हम दूसरोंकी जानकी परवाह नहीं करते तो हमारी हत्यासे कौन कुण्ठित होगा? हम दूसरोंके साथ सदा झूठ बोलेंगे तो हमारे साथ सच कौन बोलेगा? हम दूसरोंको धोखा देंगे तो स्वयं भी धोखा खायँगे। इस प्रकार हम जैसा करेंगे वैसा ही हमारे साथ भी किया जायगा। सदाचार पर ही समाजकी स्थिति है। यदि केवल दुराचार ही रह जाय तो समाज उसी क्षण छिन्न हो जायगा और साथ ही साथ हर व्यक्तिके सुख-शान्ति आनन्द-मङ्गलकी भी इतिश्री हो जायगी। अतएव हमारी बुद्धि हमें उन कामोंके करनेके लिए उत्तेजित करती है जिनसे समाजका हित हो और उन कामोंसे बचनेके लिए जिनसे उसकी हानि हो।

सच्चरित्रता-की जड़ सहृदयतामें है ।

द्वितीय हमारे भाव और जज़बात (Emotions) हमें सच्चरित्र होनेकी शिक्षा देते हैं । सच्चरित्रताकी जड़ शौपेनहौरके कथनानुसार हमारी सहृदयतामें है-उस सहृदयतामें जिसके द्वारा हम अपनेको दूसरोंकी अवस्थामें रख कर उनके सुख दु:खका अनुभव करते है,उनके आनन्दसे आह्लादित और उनके दु:खसे कातर होते हैं; उनके हँसनेसे गुलाबके फूलके समान खिल उठते हैं और उनके रोनेको देख कर आँसुओंकी मूसलधार वृष्टि करते हैं--उस सहृदयतामें जिसके कारण हमारा चित्त दूसरोंके चित्तके साथ तन्मय हो जाता है, हम अपने और दूसरोमें कोई भेद नहीं देखते, जिसके द्वारा हम प्रत्येक हृदयमें अपने ही तारको झन-झनाते पाते हैं—संक्षेपमें उस सहृदयतामें जिसके कारण हमारा पृथक् अस्तित्व ही नहीं रहता, जिसके कारण हम क्षुद्र नही विराट् सर्वव्यापी हो जाते हैं, जिसके कारण हम हर मृत्युके साथ मरते हैं और हर जन्म-के साथ जीवन धारण करते है—-उस सहृदयतामे जिसके द्वारा सूर्य्यके तेजमें, चंद्रमाकी उज्ज्वल हँसीमें, विहंगोंके कलरवमें, फूलोंके माधुर्य्य और सुगन्धमें, तान-तरङ्गिनी निर्झरिणियोंके झरझरमे अपने ही अस्तित्व-को पाते हैं ।

दुश्चरित्रताकी उत्पत्ति ज्ञान और हृदयकी न्यूनताके ही द्वारा होती है । इन दोनोंके बढ़नेसे ही सभी बुराइयोंकी इतिश्री होगी । ज्ञान और सहानुभूतिमें—मस्तिष्क और हृदयमें–विरोध नहीं है । ज्ञानवान् मनुष्य ही अधिक सहृदय होता है । जिस मनुष्यका मस्तिष्क उन्नत हो चुका है वही मनुष्य अपनी अनुमान शक्तिके द्वारा अपनेको दूसरोंकी अवस्थामें रख कर उनके सुख दु:खमें भाग ले सकता है । मूर्खों और अज्ञानियोंका मस्तिष्क ही नहीं बल्कि उनका हृदय भी संकु-चित और स्वार्थसे परिपूर्ण होता है ।

सदाचार और दुराचार केवल स्वभावकी बात है। इसलिए इस बातकी बड़ी आवश्यकता है कि अच्छी शिक्षा और परिस्थितियों द्वारा हम इस स्वभावको उन्नत और पूर्णतः विकासित करें।

दुराचार एक प्रकारकी बीमारी है।

हम पिछले एक अध्यायमें देख चुके है कि सदाचारकी उत्पत्ति प्राकृतिक नियमों द्वारा ही हुई है। यह हमारे स्वभाव-विरुद्ध नहीं है। हम देख चुके हैं कि धर्म या मज़हब हमें सच्चरित्र नहीं बनाता, वरन् युग युगान्तरका सञ्चित अनुभव ही हमसे सच्चरित्र होनेका अनुरोध करता है। हमारी बुद्धि या हमारा हृदय सदा सदाचारका उपदेश करते हैं। सच्चरित्र होना मनुष्यके लिए स्वाभाविक है। जिनमें समझकी, ज्ञानकी, हृदयकी, कमी है वेही दुश्चरित्र होते हैं। इसलिए अधर्म, पाप, या दुराचार एक प्रकारकी बीमारी समझी जाती है। यह बीमारी अकसर ओषधि द्वारा तथा मस्तिष्कके कुछ फोड़ोंके चीरने (Operation) या स्वयंसम्मोहन (Autosuggestion) इत्यादि अन्य उपायों द्वारा आराम की गई है। मद्योन्माद—शराबकी अदमनीय तृष्णा—(Dipsomania), अफीमोन्माद (morphinomania) चौर्य्योन्माद (Kleptomania), कामोन्माद (Nymphomania), वृष्णोन्माद (Satyriasis) इत्यादि बहुतसी सदाचारसंबधी बीमारियाँ स्वाभाविक और प्राकृतिक रीतिसे आराम की गई हैं। ×

"पाप और अपराध करनेका कारण क्या है? मज़हब इसका यही उत्तर देगा कि—शैतान, या मनुष्यकी पापात्मा। परन्तु विज्ञानका क्या उत्तर है? ग्लासगोके डाक्टर मैक इबिन 'लान्सेट' पत्रमें

× देखो Vivian—The Churches and Modern Thought P. 259.

लिखते हैं कि एक मजदूर सीढ़ीसे गिरने पर अपराधी स्वभावका हो गया । चोट आनेके कारण उसके दिमाग़में एक गिल्टी पैदा हो गई थी जो नश्तर द्वारा हटाई गई । उसी समयसे उस मनुष्यका बुरा स्वभाव भी जाता रहा । डाक्टर लिङ्स्टन कहते हैं कि फ्लेक्स साहबने पचास अपराधियोंके दिमाग़की परीक्षा की । सभोंमें कुछ न कुछ अपूर्णता पाई गई । डाक्टर लिङ्स्टन कहते हैं कि "यह एक दिन पूरे तौरसे सिद्ध हो जायगा कि बुराइयाँ और अपराध डाक्टरों द्वारा छुड़ाये जा सकते हैं; धर्म और कानूनके दण्ड द्वारा नहीं ।" बुराई उसी समय अन्तर्हित होगी जिस समय यह समझा जायगा कि उसका आविर्भाव दिमाग़की अपूर्णता या मानसिक विकारों द्वारा होता है—***जब कि दिमाग़की बीमारीको लोग आत्मा या रूहकी बीमारी नहीं समझेंगे*** * ।"

सदाचारकी साधारण प्रवृत्ति ।

सदाचार द्वारा ही समाजकी उन्नति या बढ़ती होती है । इसे प्रायः हर कोई मानता और समझता है । केवल यथेष्ट बलसे युक्त न होनेके कारण वह अपने विचारके अनुसार नहीं चल सकता । उसमे सत्प्रवृत्तियोकी अपेक्षा कुप्रवृत्तियाँ ही अधिक बलवती होती हैं और इस लिए वे विजय प्राप्त करती हैं । सत्प्रवृत्ति उसे कुप्रवृत्तिके कुपरामर्श पर चलनेसे नहीं रोक सकती। इसलिए सदाचारके महत्त्वको समझते हुए भी लोग इसे धारण नहीं करते । बुरेसे बुरा मनुष्य भी यह नहीं चाहेगा कि सब लोग उसीके समान हो जायँ, बुरेसे बुरा मनुष्य भी दूसरोंको सदुपदेश ही देगा । अतएव सदाचारकी शिक्षा देनेके लिए हमे मनुष्यको बाहरसे कुछ नहीं देना है, वरन् हमें उसकी अन्तरस्थ प्रवृत्तियोंको मजबूत करना है ।

---

* Vivian—The Churches & Modern Thought, P. 334 (Watts)

दसवाँ अध्याय।

मज़हब और सदाचार।

१-संसार-स्वप्न।

मज़हबी लोगोंका कथन कि मज़हब ही सदाचारका मुख्य स्तंभ है।

जिन पाठकोंने हमारे पूर्व अध्यायोंको ध्यानपूर्वक पढ़ा है और उन पर विचार किया है उनको यह पूर्णरूपसे विदित हो गया होगा कि सदाचारकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई और इसकी नीव कितनी गहरी और प्रबल है। साथ ही वे यह भी जान गये होंगे कि वंशानुक्रम और परिस्थितियोंके नियमों तथा शिक्षाके द्वारा सदाचार किस प्रकार सभ्य मनुष्यके स्वभावका एक अंग हो गया है और प्रत्येक राष्ट्रके उन्नत और स्थायी होनेके लिए इसकी कितनी आवश्यकता है। पाठकोंने यह भी देखा होगा कि केवल नैतिक शिक्षाहीके द्वारा सदाचार हमारी रगों और रेशोंमें किस प्रकार भरा जा सकता है और वे यह भी अनुमान कर चुके होंगे कि बिना मज़हबके भी सदाचार सम्भव है। परन्तु मज़हबी लोगोंका यह कथन है और सर्व साधारणका भी यही विश्वास है कि मज़हब ही सदाचारका मुख्य स्तम्भ है और इस स्तंभके हटाये जानेके साथ ही तत्क्षण सदाचारका सुन्दर गगन-स्पर्शी मन्दिर धराशायी हो जायगा। अब हम मज़हबी लोगोंके इसी कथन पर विचार करना चाहते हैं।

यदि हम लोग यह विचार करें कि मज़हब कितने समयसे और किस दृढताके साथ मनुष्यके ऊपर अपना आधिपत्य जमाये हुए है तो मज़हबी लोगोंका उपर्युक्त कथन हमें सर्वतः स्वाभाविक प्रतीत होगा। निःसन्देह संसारमें धर्मकी शक्तिके बराबर दूसरी कोई शक्ति नहीं है। पाठको, एक बार संसारके इतिहास पर दृष्टिपात कर देखो। मज़हबके नाममें कैसा जादू है! धर्मके नाम पर मनुष्यने सर्वस्व त्याग किया है; स्वार्थको तिलांजलि दी है, वह मानवहितके लिए कटिबद्ध हुआ है एवं प्रल्हाद और क्राइस्टके समान आत्मोत्सर्गसे भी नहीं डरा है। नहीं नहीं, संसार-कल्याणके निमित्त उसने प्रसन्न-वदन, और धीर-हृदयसे अपने सुख, शान्ति, आराम, स्त्री, पुत्र, जीवन, प्राण, सभीको माता जगदम्बाके सामने धधकती अग्निमें स्वाहा कर डाला है, केवल एक ईश्वरके नामका आसरा रखकर वह संसारके क्लेशविमोचनको तैयार हुआ है और यदि पहाड़ भी सामने आया है तो उसे भी उल्लंघन करनेसे वह नही डरा है। धर्मबलसे युक्त होनेके कारण साधारण मनुष्योंने भी राजराजेश्वरोंकी धमकी तकको कुछ नहीं समझा है और सारी दुनियाके क्रोध तककी कुछ परवाह नहीं की है। यदि अग्निमें डाला गया है तो उस अग्निको चन्द्रमासे भी शीतल अनुभव किया है, यदि सूली पर चढ़ाया गया है तो सूलीकी नोकको गुलाबके काँटेसे भी साधारण समझा है। परन्तु हाय, उसी मज़हबके नामपर मनुष्यने शोणितकी सरितायें भी बहाई हैं, देश विदेश विजय किये हैं, अत्याचार किये हैं, रक्तपात किया है, पिताने पुत्रकी, पुत्रने पिता-की, इष्टमित्रोंने इष्टमित्रोंकी हत्यायें की हैं; ज्ञानका द्वार बन्द किया है;

मज़हबका बल और प्राचीनत्व। उसके कार्य्य—अच्छे और बुरे।

ब्रूनो और गलीलियो प्रभृति वैज्ञानिकों और दार्शनिकों पर अत्याचार किये हैं; सुकरातको जहरका प्याला पिलाया है; बुद्ध पर जुल्म किया है और क्राइस्टको सूली पर चढ़ाया है। मज़हबहीके कारण मनुष्यने ज्ञानकी ज्योतिकी अपेक्षा मूर्खता और मूढ़ विश्वासके अन्धकारको पसन्द किया है तथा सभी प्रकारकी उन्नतियोंका पथावरोध किया है। मज़हबहीके नामपर मनुष्यने वेद पढ़नेके लिए शूद्रोंका जिह्वाच्छेद और शरीर-भेद किया है; मज़हबहीके कारण अनेक कुत्सित जघन्य और पैशाचिक रीतियोंका जन्म हुआ है और अनेक अश्लील पूजाओंका आविष्कार हुआ है * । मज़हबहीके नाम पर मनुष्यने अपने हृदयको कठोर बनाया है और दया सहानुभूतिको निर्वासित कर उसे घृणा और निर्दयताका निवासस्थान बनाया है। मज़हबहीके नाम पर लड़ाइयाँ छिड़ी हैं; मज़हबहीके कारण एक धर्म और एक सम्प्रदायके आदमीने अन्य धर्म और अन्य सम्प्रदायके आदमीको कुत्तेसे भी बुरा समझा है ! !

मज़हबकी असीम शक्ति।

इस लिए मज़हबी लोगोंके उपर्युक्त कथनमें जरा भी अस्वाभाविकता नहीं है। नहीं, बहुतसे सच्चे और विचारवान् पुरुष भी जो स्वयं किसी धर्ममें विश्वास नहीं रखते उपर्युक्त कारणसे मज़हबके सत्यासत्यके विषयमें न कोई जाँच पड़ताल करते हैं और न विचार ही करना चाहते हैं। पाठकोंको चाहिए कि वे थोड़ी देरके लिए मज़हबकी प्राचीनता पर और मानव-इतिहास पर उसके जो अद्भुत परिणाम हुए हैं उनपर विचार करें।

---

* कौलिक और वाममार्ग आदि सम्प्रदाय इसके प्रमाण हैं। योरोपमें भी ऐसे सम्प्रदायोंकी कमी नहीं है।

"शताब्दियोंसे मज़हब, देवता, और ईश्वरविश्वासने मनुष्यके हृदय तथा मस्तिष्कमें बहुत गहरी जगह कर रक्खी है। उस प्राचीन समयमें—जो इतिहासकी दृष्टिसे बाहर है—मज़हब ही मनुष्यके जीवनका केन्द्र था। जरा मोलककी भीषण पूजाका भी अनुमान कर लें जिसमें कि मातायें अपने लाड़ले, जीवनाधिक, प्राणसे भी प्यारे बच्चोंको मूर्तिके अग्निमय हृदयमे डाल आती थीं ! ×टेट्ज़कैटिलिपोकाकी रोमांच पैदा करनेवाली पूजाका स्मरण करें

× प्राचीन मेक्सिकोके नरमेधको स्मरण करके किसे रोमांच न हो आयगा। मेक्सिकोके देवता सदा नररक्तके प्यासे रहते थे। सभी इतिहासज्ञ सहमत होकर कहते है कि इस साम्राज्यमें प्रति वर्ष २०,००० से कम मनुष्योंका बलि नहीं होता था। अनेक इतिहासज्ञ इस संख्याको ५०,००० बतलाते है। सिर्फ एक देवताको प्रसन्न करनेके लिए एक मर्तबा (प्रेस्कॉटकी गणनानुसार) कमसे कम ७०,००० लड़ाईके कैदी बलिदान किये गये थे।

प्राचीन मेक्सिकोका नरमेध।

देवताओंके लिए बलि प्राप्त करनेके निमित्त प्राचीन मेक्सिकोके लोग अकसर लड़ाई आरम्भ करते थे। देवताओंके लिए बलि प्राप्त करना कितना आवश्यक समझा जाता था इसको दिखलानेके लिए प्रेस्कौटने मेक्सिकोकी दो जातियोंके बीचके एक विचित्र समझौतेका उल्लेख किया है। उसके अनुसार एक समरक्षेत्र निश्चित किया हुआ था जहाँ नियत समय पर दोनों जातियोंके लोग संग्राम करते थे और विजेना पराजितोंको बन्दी करके ले जाते थे और उन्हें देवताओं पर भेंट चढ़ा देते थे। परन्तु विजेताको पराजित जातिके देशपर आक्रमण करने या उसपर आधिपत्य जमानेका कोई अधिकार न था और अन्य सभी बातोंमें ये दोनों जातियाँ मित्रता निबाहा करती थीं।

मेक्सिकोके देवी-देव केवल पुरुषोंहीका नहीं स्त्रियों और बच्चोंका भी रक्तपान करते थे। वहाँकी प्रधान देवी 'सेण्टिऔटूल'को स्त्रियोंकी बलि दी जाती थी। (See Pagan Christs by J. M. Robertson, p. 392)

जिसमें कि पिता अपनी सबसे सुन्दर पुत्रीको बलिदानके निमित्त यज्ञके छुरेके समर्पण कर आता था।

मेक्सिकोके वरुण (ट्लैलोक)को बच्चोंकी बलि दी जाती थी और यह बलिदानकार्य बड़े समारोहके साथ सम्पादित होता था। उन बच्चोंको लोग सुन्दर वस्त्रों, आभूषणों और वसन्तके नये सौरभपूर्ण पुष्पोंसे सुसज्जित करके पालकियोंमें बिठलाकर देवताओंके निकट ले जाते थे और इसके बाद उनका बध किया जाता था।

बलिदानकी विधि भी बड़ी भीषण होती थी। मनुष्यको पत्थर पर लेटाकर उसे मजबूतीसे पकड़े रहते थे। तत्पश्चात् प्रधान पुजारी घातक फ्लिंट (चकमक) पत्थरके चाकूसे उसकी छाती काटकर उसमेंसे उसका कम्पायमान कलेजा निकाल लेता था। यह पहले सूर्यको दिखलाकर फिर देवताके चरणोंमें समर्पण किया जाता था। इस अवसर पर एक पूरा त्योहार मनाया जाता था। उच्चकुलसम्भूत राजपुरुषगण शेष मांसको पकाकर मित्रों और अन्य संगियोंके साथ मिलकर भक्षण करते थे। इसमें स्त्रियाँ भी शरीक होती थीं और शराबका भी दौर चलता था। इसका अवशेष क्रिस्तान मजहबमें अब भी मौजूद है। क्रिस्तान लोग यद्यपि नरमांसभक्षण नहीं करते तथापि उनका यह अनुमान है कि रोटीका वह टुकड़ा जिसे वे खा रहे हैं, क्राइस्टका मांस है और वह शराब जिसे वे पी रहे हैं क्राइस्टका रक्त है। See Prescott's—History of the Conquest of Mexico (1878) pp. 36-41.

मिस्टर जे० एम० रौबर्टसनने अपनी पुस्तक "दी पेगन क्राइस्टस"में यह सिद्ध कर दिया है कि नर-बलिदान एक समय समस्त मानव जातिमें प्रचलित था। यहाँ उसके उदाहरणोंके उल्लेख करनेका स्थान नहीं है; अतएव केवल पुस्तकका हवाला देकर ही संतोष करना पड़ता है। See Pagan christs by J. M. Robertson watts (1903) pp. 119-24. उक्त पुस्तकसे यह भी पता चलता है कि बलिमांस भक्षण करनेकी प्रथा भी एक समय व्यापक रूपसे प्रचलित थी। Ib.pp.131-36

इसके सिवाय पाठक ड्रूइड तथा प्रत्येक सभ्य जातिके पूर्वजोंके नरमेधको भी क्षण भरके लिए याद करें,* साथ ही साथ ऐसे लोगोंका भी चिन्तन करें जिनका सर्वस्व परमात्मा ही है, जो अणु परमाणुमें, बादल बिजलीमें, हवा और जलमें, ईश्वरका चमत्कार देखते हैं। आओ, इन पर नज़र डालो और तब कहो कि मज़हबमें क्या शक्ति, क्या जादू, क्या असर है! परन्तु सत्य सभी मज़हबों, सभी मतों, सभी धर्मसम्प्रदायोंसे महान् और श्रेष्ठ है। मज़हब बदलता, है पर सत्य नहीं बदलता। मज़हबकी मृत्यु हो जाती है, पर सत्य अजर, अमर और अपरिवर्त्तनीय है। प्रत्येक युगके वेद और बाइबुल भिन्न भिन्न होते हैं, पर सत्य कदापि नहीं बदलता।

परन्तु सत्य मजहबसे भी महान् है।

परित्यजेयं त्रैलोक्यं राज्यं देवेषु वा पुनः।
यद्वाप्यधिकमेतेभ्यां न तु सत्यं कथंचन॥
त्यजेच्च पृथिवीं गन्धमापश्च रसमात्मनः।
ज्योतिस्तथा त्यजेद्रूपं वायुः स्पर्शगुणं त्यजेत्॥
प्रभां समुत्सृजेदर्को धूमकेतुस्तथोष्मतां।
त्यजेच्छब्दं तथाकाशं सोमः शीतांशुतां त्यजेत्॥
विक्रमं वृत्रहा जह्यात् धर्मं जह्याच्च धर्मराट्।
नत्वहं सत्यमुत्स्रष्टुं व्यवसेयं कथंचन॥

—महाभारत, आ० प० १०३; १४–१८।

भावार्थ—"त्रैलोक्यके राज पर लात मारना, स्वर्ग साम्राज्यको परित्याग करना, एवं इनसे भी बढ़ कर यदि कोई भी वस्तु हो तो उसे भी परित्याग करना मुझे स्वीकार है; परन्तु सत्यसे विलग होना मुझसे कदापि सह्य न हो सकेगा। पृथ्वी, जल, वायु, ज्योति, सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा ये सब अपने गुण, अपनी प्रकृतिको छोड़ दें; परन्तु मैं सत्य-

* Religion of Woman by Joseph McCabe.

अतएव मज़हबके सत्यासत्य पर विचार करनेमें कोई हर्ज नहीं है।

को किसी भी प्रकार न छोड़ूँगा।" ये बाबा भीष्मके वचन हैं। अतएव यदि किसी वस्तुके सत्य या असत्यका प्रश्न हो तो हमें उस पर विचार करनेसे कुण्ठित नहीं होना चाहिए। इमरसनने कहा है कि "परिणामके भयसे विचारको छोड़ देना कापुरुषताका लक्षण है।"

क्योंकि प्रचलित मजहब सदासे नये मतों, विचारों और आदर्शोंका प्रतिरोध करता आया है।

जब जब मानव-इतिहासमें किसी नये धर्म, नये विचार, या नये आदर्शने जन्म ग्रहण किया है, तब तब यही चिल्लाहट मचाई गई है कि देखो प्राचीन धर्म, आदर्श या विचार पर किसी प्रकारका साधारण आघात भी मत करो; इससे सारा समाज टुकड़े टुकड़े हो जायगा, धर्म और सदाचारका पूर्ण विनाश हो जायगा, मानव-हितका गला घुट जायगा। इसी कारण लोग क्राई-स्टको सूली देकर शान्त हुए थे, मुहम्मदके रक्तके प्यासे और बुद्धकी जानके गाहक हो गये थे। आधु-निक समयमें वैज्ञानिकों पर इसी कारण योरोपमें इतना अत्याचार हुआ था। अतएव मज़हबकी उपयोगिता पर विचार करनेमें हमें तनिक भी भयभीत होनेकी आवश्यकता नहीं है। हमें दृढ़ता, निष्पक्षता और गम्भीरताके साथ विचार करना चाहिए। साथ ही साथ हमें मज़हबकी प्राचीनता और इसके बलको भी न भुला देना चाहिए।

मज़हबी लोगोंका यह कथन सर्वथा भ्रमपूर्ण है कि मजहब ही सदा-चारका रखवाला है और बिना मजहबके सदाचारका सर्वथा नाश हो जायगा। स्वर्ग और नरकके भयसे मनुष्यको सच्चरित्र बनाना बच्चेको हौआ या भूतके भयसे शान्त करनेके समान है। यह मनुष्यके गौरवको शोभा

मज़हबी लोगोंका उक्त कथन सर्वथा भ्रम-मूलक है,

नहीं देता और उसे बहुत कम कर देता है । मनुष्यको इस उपायसे सच्चरित्र बनाना मानों उसे पशु, सम्पूर्णतः ज्ञानहीन और दया सहानुभूति इत्यादि सभी गुणोंसे रहित माननेके बराबर है । इतना ही नहीं । हम देख चुके हैं कि ईश्वरका तथा स्वर्ग नरकका विश्वास भी मनुष्यको सच्चरित्र बनानेमें सर्वथा असमर्थ है ।

सदाचार मज़हबसे स्वतंत्र है ।

सदाचारकी स्थिति किसी मत या मज़हब पर नहीं है जो प्रति दिन बदला और मरा करता है। सदाचारकी उत्पत्ति मनुष्यके अनुभव तथा प्राकृतिक नियमों द्वारा हुई है। प्राकृतिक चुनावके नियमने ही मनुष्यको सच्चरित्र होनेकी शिक्षा दी है। अतएव सदाचार चिरस्थायी रहेगा, चाहे मजहब रहे या न रहे। सदाचार हमारे स्वभावका एक अङ्ग है और यह जेन्दावस्ता, कुरान, वेद और बाइबुलसे प्राचीन है। किसी मनुष्यको वेद वेदांग, उपनिषद पुराण, ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर, गणेश, सबमें, अविश्वास हो सकता है; परंतु प्रेममें, सत्यमे, कर्तव्यमें, दयामें, सहानुभूतिमें किसे अविश्वास होगा? यदि किसीको है तो वह मनुष्य नहीं, मनुष्यसे बहुत ही नीचा——पशु है, नहीं नहीं उसे अवश्य कोई मानसिक बीमारी है। अतएव यदि मज़हब सदाचारप्रचार या नैतिक शिक्षा प्रदान करनेको अपना कर्तव्य न समझे, यदि पंडित और पुरोहित, गिरजा और मन्दिर, रीति और रिवाज, यज्ञ और उपवास तथा अन्य भ्रमप्रमाद और हठोक्तियोंसे अपना पिण्ड न छुड़ावे, तो उसे सदाचारका सहायक और संरक्षक नहीं वरन् उलटा उसका प्राणघातक शत्रु समझना चाहिए ।

अब हमें मज़हबी लोगोंके उपर्युक्त तर्कका उत्तर देना चाहिए। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि *अति प्राचीन*

समझमें मज़हबने मनुष्यजातिका बहुत कुछ उपकार किया है।

मज़हबी लोगोंके तर्कपर विचार। प्राचीनताका पक्षपाती होनेके कारण मज़हब सभी प्रकारकी उन्नतियोंके प्रतिकूल है।

सभी प्राचीन जातियोंने साधारणतः मज़हबहीके द्वारा अपनी नीति, अपने नियम, अपना विश्वास, अपने रहन सहनके कायदे, नहीं नहीं व्यवहारिक जीवनके समस्त आईन भी, प्राप्त किये हैं और कदाचित् अन्य प्रकारसे वे इन्हें एकदम ग्रहण भी न करते। परन्तु इस स्थान पर हमें विचार करना होगा कि नैतिक उन्नति मज़हबकी स्पष्ट सहायतासे हुई, या मज़हबको उलटा इससे विरोध था। यदि संसारके इतिहास पर एक बार नज़र डाली जाय, यदि बुद्ध और क्राइस्ट, लूथर और नौक्स, कैलविन और ज्विगली, चैतन्य और मुहम्मद, दयानन्द और राममोहन, सौक्रेटिज़ और डिमौक्रिटस, ब्रूनो और गलीलियो, लायल और हक्सली, डारविन और स्पेन्सरकी उन यन्त्रणाओंका स्मरण किया जाय जो उन्हें मज़हब और समाजके हाथों भुगतनी पड़ी थीं तो कहना पड़ेगा कि *मज़हब उन्नतिका पथ-प्रदर्शक नहीं बल्कि उसका पथावरोधक है। प्रत्येक मज़हबने प्राचीन रीति-रस्म, प्राचीन नीति और विचारके संरक्षणको अपना परम कर्तव्य माना है और इसी लिए यदि कभी किसी नूतन विचारने संसारमें जन्म ग्रहण किया है तो उसे 'येन केन प्रकारेण' मार डालनेको ही अपना परम कर्तव्य माना है* और इस निमित्त किसी भी यत्नको उठा नहीं रक्खा है। बहुत खेदके साथ कहना पड़ता है कि *जो मज़हब स्वयं बड़े बड़े कष्ट झेल कर पहाड़के समान कठिनाईयोंको टाल कर विजयी हुआ है वह भी विजय प्राप्त करने पर अपनी कठिनाईयोंको एकदम भूल गया है और*

नूतन मत और नूतन विचारको उसने उसी प्रकार दुःख पहुँचाया है जिस प्रकार उसे स्वयं पहुँचा था। सारांश यह है कि मजहब उन्नतिके अनुकूल नहीं, वरन् प्रतिकूल है; क्योंकि मज़हब प्राचीनता और स्थिरताको पसन्द करता है, उन्नति, परिवर्तन और नवीनताको नहीं। उन्नतिका अर्थ ही परिवर्तन या नवीनता है। *स्वतंत्रता, और नवीनता उन्नतिके ही लक्षण हैं और मज़हब इन दोनोंका शत्रु है।*

इसी कारण हम देखते है कि मज़हबी लोग नीच जातियोंकी उन्नति तथा अन्य आवश्यकीय सुधारोंको रोकनेके लिए वेदो तथा सनातन धर्मकी दोहाई देते हैं और इन सबको घोर कलियुगका प्रभाव समझ कर अपने व्यथित चित्तको संतुष्ट किया करते हैं।

मजहब और सदाचारके क्षेत्र और उद्देशमें बड़ी भिन्नता है।

मज़हब कहाँतक नीतिका सहायक है इसे स्पष्ट करनेके लिए हमें दोनोंके क्षेत्र पर विचार करना होगा। मजहबका उद्देश मनुष्यको इस लोकमें सच्चरित्र बनाना नहीं है, वरन् परलोकमें उसे मुक्ति या स्वर्ग प्रदान कराना है। परन्तु नीतिका क्षेत्र यही दुनिया है; उसे परलोकसे कोई सरोकार नहीं। ईश्वर या देवताके साथ नहीं वरन् मनुष्यके साथ हमारा क्या व्यवहार और क्या सम्बन्ध होना चाहिए, नीति-शास्त्र इसी पर विचार करता है। मज़हब और नीतिका क्षेत्र कभी कभी मिल भी जाता है; परन्तु यह एकदम आकस्मिक है। मज़हब और नीतिमें मौलिक भेद है। मज़हबका क्षेत्र ही दूसरा है। इस मौलिक भेदको हमें सदा याद रखना चाहिए। यदि मज़हब हमें इस दुनियामें भी सच्चरित्र होनेको कहता है तो इसका मतलब यह नहीं कि सदाचार-प्रचार महज़बका काम ही है, बल्कि इस निमित्त कहता है कि हमें मरनेके पश्चात् एक सत्कर्मके बदले स्वर्गके हज़ारों

सुख प्राप्त हों, हमें अपने कुकर्मोंके लिए परलोकमें दुःख और दण्ड न सहना पड़े तथा नरककी अग्निमें न जलना पड़े।

गरज़ अच्छा काम करना एक प्रकारसे व्यापार करना है—हमारे देशके आधुनिक महाजनोंकी तरह किसीको कर्ज़ देना है जिसके लिए सूद क्या दर सूद तक मिल सकता है। सत्कर्मको आक़बतका सौदा समझना चाहिए। मज़हब सम्पूर्णतः परलोककी चीज़ है और सदाचार इस लोककी। जब मज़हब और नीतिके उद्देशमें इतना अन्तर है तब हम स्वभावतः विचार कर सकते हैं कि हेतु-साधनके उपायोंमें भी कितना अन्तर होगा। स्वर्गके आनन्द तक ले जानेवाली सड़क उस सड़कसे अवश्य भिन्न होगी जो हमें केवल इसी संसारके आनन्द तक ले जाना चाहती है। *इस लिए सत्य या सदाचार मज़हबके लिए उतने महत्त्वका नहीं है जितना कि पूजाकी विधि, किस मन्त्रको किस प्रकार उच्चारण करना चाहिए एक या अनेक बार, पूजाके समय मुख किस ओर होना चाहिए, इत्यादि इत्यादि।* याद रहे कि सदाचारका उल्लङ्घन ईश्वर क्षमा भी कर सकता है; परन्तु धर्मके इन नियमोंका उल्लङ्घन कदापि नहीं कर सकता *। मज़हबी लोगोंके लिए

अतः हेतु-साधनके उपायोंमें भी बहुत अन्तर पाया जाता है।

---

* मजहबके द्वारा मनुष्य किस प्रकार शुद्ध सदाचारको छोड़कर मिथ्या और निरर्थक आचार-नियमोंको सब कुछ मानने लगता है, यह कर्नल इंगरसौलकी निम्न कथासे पूर्णतः व्यक्त होता है;—

"किसी आदमीने हत्या की। गवाही और सबूतका परिमाण इतना था कि उसने अपराध स्वीकार कर लिया। जज और अभियुक्तसे इस प्रकार बातचीत हुई—

"तुमने यह महान् दुष्कर्म क्यों किया?"

मजहबकी सभी आज्ञायें नैतिक नहीं होतीं।

संसार स्वप्न है ।

संसार अनित्य है, जीवन क्षणभंगुर है, यह लोक मिथ्या है। यथार्थ केवल परलोक ही है, नित्य केवल ईश्वर है। *तब वे इस दुनियाकी परवाह—इसके उन्नत और श्रेष्ठ बनानेकी चेष्टा—क्यों करेंगे* ? क्षणिक सुखके लिए अनन्त सुख, और अनित्यके लिए नित्यको क्यों परित्याग करेंगे? क्या कोई बुद्धिमान आदमी ऐसा कर सकता है? अनुमान करो कि कोई मनुष्य रेल पर सवार होकर कहीं जा रहा है। गाड़ीमें भीड़ बहुत है। उसे पैर

"धनके लिए ।"
"क्या तुम्हें कुछ धन प्राप्त हुआ ?"
"हाँ ।
"कितना ?"
"चार आने ।"
"तुमने उसका क्या किया ?"
"खर्च कर डाला ।"
"किस चीज में ?"
"शराबमें ।"
"उस मनुष्यके पास और क्या था ?"
"एक वर्तनमें उसका भोजन—कुछ मांस और रोटी ।"
"तुमने उसका क्या किया ?"
"रोटीको मैं भक्षण कर गया ।"
"और मांसको ?"
"उसे मैंने फेंक दिया ।"
"क्यों ?"
"इस लिए कि वह शुक्रवारका दिन था ।"

शुक्रवारके दिन मांस खाना इतना बड़ा पाप और अपराध समझा जाता था कि मध्य युगके अन्ततक लोग इस अपराधके करनेपर जीवित अग्निमें जला दिये जाते

फैलानेको भी स्थान नहीं मिलता। उसके पास सामान भी बहुत थोड़ा है। क्षुधा तृष्णा भी उसे सता रही है। इस तरह उसे अनेक प्रकारका कष्ट है। अब इस अवस्थामें वह मनुष्य क्या करेगा? वह इन तकलीफ़ोंकी परवाह न करेगा। सोचेगा कि दो चार घण्टेका मामला है, जिस तरह कटे काट लेना चाहिए। उसका ध्यान अपने इच्छित स्टेशन पर लगा रहेगा। क्या मज़हबी लोगोंकी ठीक यही हालत नहीं है? दुनिया सराय है, मुसाफिरखाना है, हम भटकते हुए पथिक हैं, रात काटनेके लिए ठहर गये हैं। पौ फटते ही अपना रास्ता लेंगे। हमें तकलीफ़ आरामकी क्या परवाह?

कंकर चुन चुन महल उठाया लोग कहें घर मेरा रे।
ना घर मेरा ना घर तेरा चिड़िया रैन बसेरा रे॥

वैराग्यसे हानि।

उस फ़कीरकी कथा सब लोग जानते होंगे जो दिन भरका थका माँदा सन्ध्याको एक बादशाहके महलमें घुस गया था और कारण पूछे जाने पर उसने महलको सराय सिद्ध कर दिखलाया था। सभी मज़हबी लोग वैराग्यके महत्त्व पर ज़ोर देते हैं। त्यागका उपदेश हर एक पीर, पैगम्बर, साधु

थे-(Christianity and civilization P. 15)। इसी पुस्तकमें हम यह भी पढ़ते हैं कि तीसरी शताब्दिमें रोमका बिशप कैलिस्टस हत्या और परस्त्रीगमनको भी उतना बड़ा पाप नहीं समझता था जितना कि बप्तिस्मा (baptism क्रिस्तान मजहबका एक संस्कार-विशेष) के न होनेको। उक्त लेखकहीने लिखा है कि आचारके सम्बन्धमें कुस्तुन्तुनियाके एक ब्रह्मचारी साधुके कुछ पूछनेपर एक अबॉटने यह उत्तर दिया था कि "क्राइस्ट और उनकी माताके मूर्ति-पूजन करनेको एक बार भी भूल जाना शहरकी सारी वेश्याओंके साथ दुष्कर्म करनेसे घोरतर पाप है।" लेकीने लिखा है कि शार्लमेनके एक नियमके द्वारा ईस्टरके चालीस दिन पूर्व तक मांस खाना निषिद्ध था। नियम भंग करनेवालेको मृत्युकी सजा दी जाती थी। History of European Morals II P. 102

और महात्माने दिया है । इसी कारण बहुतसे लोगोंको *सुख और आरामसे एक प्रकारकी नफ़रत हो जाती है । इतना ही नहीं, यह वैराग्य बाज़ मर्तबा भीषण रूप धारण करता है । पिता अपने पुत्रको, पति अपनी पत्नीको, पत्नी अपने पतिको परित्याग करती है ।* और यह किसलिए ? इसीलिए कि ये स्वर्गके पथावरोधक हैं । ये जीवात्माको संसारमोहमें फँसाये रख कर उसका भयानक अनिष्ट करते हैं ।

संसारके मधुर मधुर नातोंका टूटना ।

जरौ सो सम्पति सदन सुख, सुहृद मातु पितु भाय ।
सम्मुख होत जो रामपद, करैं न सहज सहाय ॥

कितने ही प्रचलित मज़हबी गीतोंकी यही टेक है कि हे मनुष्य, पुत्र, पत्नी, भाई, बहन, माँ, बाप, कुटुम्ब परिवारके लिए तेरा जीवन एकदम वृथा है । उस घड़ीको सदा अपने सामने रख, इनके बनावटी प्रेममें मत फँसा रह । उस मुहूर्तके आपहुँचने पर कोई तेरे साथ न जायगा । नहीं नहीं, इन्हें नरकका द्वार समझ । ये तेरी आत्माको ससारमें रत और परमात्मासे विरक्त रखते हैं । केवल इनहींके लिए तू इतना कष्ट झेलता है । इनहीकी उदरपूर्तिके लिए तू अनेकों उपाय करता है, झूठ तक बोलता है—चोरी डकैती हत्या पर्य्यन्त करता है । परन्तु इन सबमेंसे एक भी तेरे साथ जानेवाला और तेरे दुःखका भाग लेनेवाला नहीं है ।

बटमार अजलका रस्तेमें जब भाला मार गिरावेगा,
तब धन दौलत और नाती पोता, कोई काम न आवेगा ।
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बनजारा ॥

मज़हबी आदमी संसारी लोगोंके बारेमें कहता है,—

जलचरवृन्द जालअन्तर्गत, होत सिमिट इक पासा।
एक हि एक खात लालचवश, नहिं देखत निज नाशा॥

वह कहता है,—

माधवजू मो सम मन्द न कोऊ।
यद्यपि मीन पतंग हीनमति मोहि न पूजैं ओऊ॥
रुचिर रूप आहार वश्य उन पावक लोह न जान्यौ।
देखत विपति विषय न तजत हौं, तातें अधिक अयान्यौ॥
महा मोह सरिता अपारमंह, संतत फिरत बह्यौ।
श्रीहरि कमल चरण नौका तजि, फिरि फिरि फेन गह्यौ॥
अस्थि पुरातन छुधित श्वान अति, ज्यों भरि मुख पकरयौ।
निज तालुकगत रुधिर पान करि, मन संतोष धरयौ॥
परम कठिन भवव्यालग्रसत हौं, त्रसित भयौ अति भारी।
चाहत अभय भेक शरणागत, खगपति नाथ बिसारी॥

पुनः—

हरि बिन कोऊ काम न आयौ।
इस माया झूठो प्रपंच लगि, रतन सो जन्म गंवायौ॥
कंदन कलश विचित्र चित्र करि, रचि पचि भवन बनायौ।
तामेंते तेही छन काढ्यौ, पल भरि रहन न पायौ॥
हौं तेरे ही संग जरौंगी, यह कहि त्रिया धूति धन खायौ।
चलत रही चित चोरि मोरि मुख, एक न पग पहुँचायौ॥
बोलि बोलि सब बोलि मित्र जन, लीन्हौं जो जेहि भायौ।
परयौ जो काज अंतकी बिरियां, तिनहीं आनि बंधायौ॥
आशा करि करि जननी जायौ, कोटिक लाड़ लड़ायौ।
तोरि लयौ कटिहूंको डोरा, ता पर बदन जरायौ॥
पतित उधारन गणिकातारन, सो मैं शठ विसरायौ।
लियो न नाम नेक हूं धोखे 'सूरदास' पछतायौ॥

और भी—

झूठहि लगि जन्म गंवायौ।
भूल्यौ कहां स्वप्नके सुखको, हरिसों चित न लगायौ॥
कबहुंक बैठ्यौ रहसि रहसिके, ढोटा गोद खिलायौ।
कबहुंक फूलि सभामें बैठ्यौ, मूछन ताव दिवायौ॥
टेढ़ी चाल पाग सिर टेढ़ी, टेढ़े टेढ़े धायौ।
'सूरदास' प्रभु क्यों नहिं चेतत, जब लगि काल न आयौ॥

क्रिस्तान मजहबसे त्यागके कुछ उदाहरण।

भारत तो अपने त्याग और वैराग्यके लिए प्रसिद्ध है ही, परन्तु अन्य मज़हबोंमें भी भीषण त्यागके उदाहरण मिलते हैं। यदि यहाँ पर क्रिस्तान मज़हबसे कुछ उदाहरणोंका उल्लेख किया जाय तो अनुपयोगी नहीं होगा। म्यूटियस नामका एक मनुष्य सारी धन-सम्पत्तिको त्याग कर अपने आठ वर्षके बच्चेके साथ संन्यास धारण करनेके लिए एक मठमें पहुँचा। साधुओंने उसे एक बारगी अङ्गीकार कर लेना ठीक न समझा और उसकी परीक्षा लेना उचित समझा। म्यूटियस अपना धनवान् होना तो भूल ही गया था अब उसे पुत्रवान् होना भी भूल जाना चाहिए। इसी हेतु उसका अबोध शिशु उससे छीन लिया गया। बच्चेके वस्त्र उतार डाले गये और उसे मैले कुचैले चिथड़े धारण कराये गये। उसे बहुत प्रकारकी यंत्रणायें और कष्ट दिये गये और उसका ताड़न प्रताड़न किया गया। उसे झिड़कियाँ और गालियाँ सुनाई गईं। दिन प्रति दिन पिता अपने पुत्रको दुःख और शोकसे क्षीण होता हुआ देखता था। उसका आनन्दसे दमदमाता हुआ मुखड़ा अब आँसुओंसे तर था और हँसनेके बदले अब वह केवल सिसकियाँ लेता था। परन्तु पिताको क्राइस्टमें इतनी भक्ति थी कि दिन प्रति दिन अपने लाड़ले पुत्रकी यह अवस्था

देख कर भी उसका हृदय विचलित न हुआ; उसने अपने बच्चेके अश्रु-पातकी कोई परवाह न की और धर्ममें डटा रहा। अन्तमें मठके प्रधान संन्यासीने उसे अपने बच्चेको नदीमें डाल आनेकी आज्ञा दी। म्यूटियस इस पर भी प्रसन्नतापूर्वक उद्यत हो गया और वह बच्चेको नदीके अथाह जलमें समर्पण करना ही चाहता था कि प्रधान संन्यासीके दूतने उसे इस कामसे रोक दिया। इस तरहकी अनेक कथायें—पिता द्वारा ऐसी मज़हबी परीक्षाओंमें शिशुओंके अग्नि तकमें डाले जानेकी कथायें—लेकीकी पुस्तकमें वर्णित हैं। भीषण रोमांचकारी वैराग्यकी भी अनेक कथायें उक्त पुस्तकमें दी हुई हैं। सेंट सामियन स्टाइलाइटस अपने माँ-बापका बड़ा स्नेहपात्र था। संन्यास धारण करनेके सङ्कल्पसे—अपनी इच्छाको किसी पर प्रकट किये बिना—वह घरसे भाग गया। उसके वियोगसे शीघ्र ही उसके पिताकी मृत्यु हो गई; परन्तु उसकी माता कुछ काल तक किसी प्रकार जीवन धारण करती रही। सत्ताईस वर्षके बाद वृद्धाको अपने पुत्रके निवासस्थान-का पता चला और वह उससे मिलने गई। परन्तु उसके सारे प्रयत्न निष्फल हुए। संन्यासीकी कुटीके अन्दर कोई स्त्री प्रवेश नहीं कर सकती थी और उसने वृद्धाको अपने मुख तकके देखनेकी अनुमति न दी। वृद्धाकी विनीत प्रार्थना और कातर वचनसे पत्थर भी द्रवित होता था—"वत्स ! तूने ऐसा कठोर आचरण क्यों किया ? कितने दिनों पर्य्यन्त तू मेरे कोखमें रहा, पर तूने मेरे हृदयको शोकसे चकनाचूर कर डाला। तूने मेरे प्रेमका अच्छा प्रतिदान दिया; मेरे किये हुए उपकारोंका खूब बदला दिया।" तीन दिन और तीन रात तक वृद्धा आँसुओंकी धारा बहाती रही और दर्शन पानेके लिए प्रार्थना करती रही। परन्तु उसके रोने कलपनेका कोई फल न हुआ। अन्तमें वृद्धा-

वस्था, शोक, और अनाहारके कारण वह वृद्धा अपने पुत्रके रुद्ध द्वारके सामने गिर पड़ी और इस संसारसे चल बसी। तब उसका पुत्र बाहर निकला। दो एक बार कुछ मंत्र उच्चारण कर उसने ईश्वरके प्रति उसकी आत्माको शांति प्रदान करनेके लिए प्रार्थना की और तत्पश्चात् वह अविचलित-हृदय अपनी कुटीमें घुस गया और फिर भजन आराधनामें तल्लीन हो गया ! उक्त पुस्तकमें माता पिताके अपने पुत्र पुत्रियोंके छोड़नेकी, पतिके अपनी पत्नी तथा पत्नीके अपने पतिके परित्याग करनेकी—तथा मजहब द्वारा संसारके मधुर मधुर नातोंके टूटनेकी—अनेक कथायें हैं। उन सबको यहाँ उद्धृत नहीं किया जा सकता। एक और कथा लिखकर यह प्रकरण समाप्त किया जाता है। एक स्त्रीका वृत्तान्त है कि अपने पतिके मरनेके बाद उसने गृहपरित्यागका निश्चय किया। उसके पुत्र पुत्रियोंने बहुत अनुनय विनय किया, परन्तु उसने एक भी न सुनी और अपने संकल्पसे न डिगी। उसके बाल-बच्चोंका रोना कलपना एकदम निष्फल हुआ और अन्तमें वह भाग कर साधुओंके मठमें पहुँच गई। अश्रुकी एक बूँद भी उसकी आँखोंसे न निकली। उसने यह अभिलाषा प्रकट की कि मरनेके समय वह एक पैसेकी भी स्वामिनी न रहे और अपने बाल बच्चोंके लिए कुछ न छोड़ जाय। उसने अपने जीवन-कालमें ही दान पुण्यमें अपनी सारी सम्पत्तिको लुटा दिया और अपनी सन्तानके लिए वह कर्जका भारी बोझ छोड़ गई। और ऐसा करना सर्वथा न्याय-संगत भी था, क्योंकि दान पुण्यका सहस्रगुना बदला मिल सकता है; परन्तु अपनी सन्तानको रुपया देनेसे कोई लाभ नहीं है !

ऐसी शिक्षाओंके रहते हुए भी वे लोग धन्य हैं जो अपनी स्त्रीके आलिंगनको सर्पका पाश समझ कर परित्याग नहीं करते—जो महाराज युधिष्ठिरकी तरह अपनी स्त्री बच्चे और परिवारके साथ रहनेको स्वर्गके आनंदसे भी उत्तम अनुभव करते है। महाप्रस्थानके पश्चात् महाराज युधिष्ठिर स्वर्गको गये और चारों ओर अपनी स्त्री और भाईयोंको ढूँढ़ने लगे। अन्तमें व्याकुल होकर वे चिल्ला उठे—"हे देवताओ! क्या यही तुम्हारा स्वर्ग है? मुझे इस स्वर्गमें कुछ भी आनन्द नहीं मिल सकता। मेरा स्वर्ग वहीं है जहाँ मेरी स्त्री और भाई निवास करते हैं। मुझे वहीं ले चलो, हमारी यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है। मैं उनसे विलग यहाँ एक क्षण भी नहीं टिक सकता।" युधिष्टिरके बार बार अनुरोध करने पर इन्द्रने एक देवदूतको बुलाकर आज्ञा दी कि तुम महाराज युधिष्टिरको उनके आत्मीय जनोंके पास ले जाओ। महाराज युधिष्ठिरको एक भयानक और दुर्गम रास्तेमे जाना पड़ा। इसमें घनघोर अन्धकार छाया हुआ था। समस्त पथ मांस और खूनके कीचड़, तथा कीड़ों मकोड़ोंसे भरा हुआ था। जलती हुई आग और भयंकर मूर्तिके प्रेत चारों ओर दिखाई देते थे। हवाके झोंकेके आते ही हजारों दु:खी मनुष्योंका आर्तनाद सुनाई पड़ता था। परन्तु इस दुर्गन्धमय स्थानमें चलनेसे भी महाराज युधिष्टिर न हिचके। चलते चलते उन्हें आत्मीय जनोंसे भेंट हुई। उनके दु:ख और सन्तापको देख कर युधिष्टिर अधीर हो गये और देवदूतसे बोले—"तुम जिन लोगोंके दूत हो उनसे जाकर कहो कि मैं यहीं रहूँगा। मुझे पाकर मेरे दुखी आत्मीय जन बड़े प्रसन्न हुए हैं। अतएव मेरे लिए यहीं स्वर्ग है।"

युधिष्ठिरका कौटुम्बिक प्रेम।

मज़हब संसारको केवल उदासीनताहीसे नहीं देखता, वरन् शत्रुतासे भी देखता है—

मजहबको संसार और सांसारिक सुखोंसे शत्रुता है।

तुलसी जब लगि जगतकी, सुधा माधुरी मीठ।
तब लगि सुधा सहस्त्र सम, राम भक्ति सुठि सीठ॥

मज़हबी लोगोंको इस संसारको सुन्दर और रम्य तथा सुख शान्तिसे भरपूर बनानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि—

अर्ब खर्ब लों द्रव्य है, उदय अस्त लों राज।
तुलसी जो निज मरण है, तो आवे केहि काज॥
तीन टूक कोपनिके, अरु भाजी विन नोन।
तुलसी रघुबर उर बसै, इन्द्र वापुरो कौन॥

परन्तु सदाचारका लक्ष्य इसी संसारको स्वर्ग बना देना है। केवल इतना ही नहीं, मज़हब यहाँ तक उपदेश देता है कि इस संसारकी हीनावस्था भावी मङ्गलमय जीवनका लक्षण है।* दारिद्र और दु:खकी मज़हबमें हर जगह प्रशंसा और धन और सुखकी हर जगह निन्दा है।

विपति नहीं रघुपतिकी दाया।
कर्म भुगाय छुड़ावत माया॥

यदि रोगग्रस्त हो तो कोई परवाह नहीं, यदि तुम शोकनिमग्न हो तो ईश्वरको धन्यवाद भेजो, क्योंकि ये ही सब तुम्हें ईश्वर तक ले जाने-

---

* Blessed be ye poor, and ye that weep now and mourn, for great is your reward in heaven. But woe unto you that are rich for ye have received your reward. —Kee Bilele.

वाले हैं। दुःख और शोक तुम्हें ईश्वरके क्रोधसे नहीं वरन् उसकी दयासे मिलते हैं। क्योंकि इन्हींके द्वारा वह तुम्हारी धार्मिक दृढताकी परीक्षा लेता है। यदि अनाहार, अनशन और रोगसे शरीर जर्जर हो रहा हो, तो इसकी क्या परवाह! इस हाड़ चामके शरीर पर इतनी ममता क्यों?

अतर फुलेल देउँ जेहि तनको, नित मलि मलि अन्हवाउँ।
सोऊ संग चले नहिं मोरे, अब केहि प्रिय ठहराऊँ॥
कोऊ दिलदार न पाऊँ, कासे मनै लगाऊँ।

अतएव निष्पक्ष निरीक्षकको यह कहना ही पड़ेगा कि प्रतेपूजाका समय अभीतक नहीं गया है। विचार कर देखा जाय तो यह विदित होगा कि हममेंसे बहुतसे लोग—वह भी जो अपने धर्म तथा नैतिक विचारोंकी पवित्रताका गर्व रखते हैं—वस्तुतः अभीतक प्रेम और करुणासम्पन्न ईश्वरके पूजक नहीं हैं, वरन् हिंस्र, निष्ठुर और दयारहित प्रेतों या ईश्वरोंके पूजक हैं। मज़हबी लोगोंके सुख और आरामसे शत्रुता करनेमें—ईश्वरकी तृप्ति और प्रसन्नताके लिए दुःख और शोकको उत्तम और आवश्यक समझनेमें—तथा जंगलियोंके देवताओंको प्रसन्न करनेके निमित्त नर-बलि चढ़ानेमें या नहीं तो निज शरीरको ही अनेक प्रकारकी यंत्रणा देनेमें कम सादृश्य नहीं है। *वास्तवमें इसीसे मज़हबी लोगोंके नैतिक सिद्धान्तकी उत्पत्ति हुई है।* यदि जंगली मनुष्यका ईश्वर नरबलिदान लेकर—असंख्यों जीवोंका रक्तपान करके संतुष्ट होता था, तो आधुनिक मज़हबी आदमीका ईश्वर—यद्यपि बाज़ देशोंमें उसने मांस खाना छोड़ दिया है—मनुष्योंको दुःख देकर, अपने भक्तोंको विपत्तिमें फँसाकर, उनकी पार-

लौकिक भलाई करता है ! मजहबी आदमीका ईश्वर भी लोगोंको दुःख और कष्टमें फँसा देख कर संतुष्ट होता है !!

मज़हबी लोग सुख और आनन्दका तिरस्कार करते हैं और शरीरको निरर्थक कष्ट देते हैं।

आह! इस भ्रम प्रमादमें पड़कर कितनोंने अपने शरीरको अपरिमित कष्ट दिया है, मनुष्य-समाजको छोड़कर—मनुष्यके हँसने रोने आनन्द और दुखसे मुँह मोड़ कर—कितनोंने गुफाओंमें निवास किया है, कितने ऐसे ऐसे घोर वनोंमें—दुर्गम पहाड़ों और जंगलोंमें रहे हैं कि जहाँ पक्षी भी पर नहीं मार सकता, घास और पत्ते पर ही कितने त्यागियोंने जीवन-निर्वाह किया है, नख, शिखा, जटाजूट और बल्कलसे अपने शरीरको इतना कुरूप बनाया है कि पशु भी उनकी बराबरी नहीं कर सकते। कितनोंने सुखको गरल अनुमान किया है, संसारसे तनिक मात्र संसर्गको भी पाप गिना है, तथा स्त्रीजातिमात्रको—अपनी माता, पत्नी और भगिनी तकको भी—व्यालसे भी अधिक विकाराल समझा है। अपने देशकी हालत तो पाठकों पर विदित ही है और उसे वे प्रति दिन अपनी आँखोंसे देखते ही है। अतः क्रिस्तान मज़हबसे कुछ उदाहरणोंका उल्लेख किया जाता है। अपने देशकी जानी हुई बातोंको—जिन्हें पाठक नित्य प्रति अपनी आँखोंसे देखते हैं—छोड़कर अन्य मज़हबोंसे भी उदाहरण देनेका कारण यही है कि इससे सिद्धान्तोंकी व्यापकता अधिक पूर्णताके साथ प्रमाणित होती है। जिस सिद्धान्तकी पुष्टि सब ओरसे होती है उस सिद्धान्तके सत्य होनेमें संशय नहीं रहता। साथ ही साथ इसका एक और तात्पर्य्य भी है—इससे यह भी पता चलता है कि हमारा वर्तमान मज़हब अन्य मज़हबोंसे कहाँ तक मिलता है।

अन्य मज़हबोंसे उदाहरण।

शरीरको कष्ट देनेवाले त्यागियोंकी एकसे एक बढ़कर कथायें अँगरेजी पुस्तकोंमें वर्णित हैं। एक साधुने तीस वर्ष केवल एक टुकड़े जौकी रोटी और थोड़े गँदले जल पर व्यतीत कर दिये थे। एक दूसरा साधु नित्य पाँच अंजीरसे अधिक भोजन न करता था और एक पशुके माँदमें निवास करता था। एक और साधु सालमें एक मर्तबा—प्रति ईस्टर—अपने केश कटवाता था और कभी स्नान न करता था। कपड़ेके फट कर बदनसे स्वयं गिर जानेके पूर्व वह कभी वस्त्र न बदलता था। कठोर तपस्याके कारण उसका शरीर झामाके समान हो गया था। बहुतसे साधु सड़े हुए अनाजके व्यतिरिक्त कुछ न खाते थे, बाज़ नींद आनेके समय भी न लेटते थे। सेंट वसारियनने चालीस वर्ष पर्य्यन्त ऐसा ही किया था। स्नान करना तो दूर रहा, बाज़ साधु मुँह और पाँव धोने तकको पाप समझते थे। सेंट साईमनकी कथा शायद अद्वितीय है। उसने अपने शरीरको एक रस्सीसे इतनी दृढ़ताके साथ बाँध रक्खा था कि रस्सी उसके शरीरमें गड़ गई थी। बहुत दिनों तक इसी प्रकार रहनेसे रस्सीके चारों ओरका मांस सड़ गया था। उसके शरीरसे इतनी तेज़ दुर्गन्ध निकलती थी कि नज़दीकके लोग बेचैन हो जाते थे। ज़रा भी इधर उधर खसकने पर उसके शरीरसे कीड़े गिरने लगते थे और इन कीड़ोंसे उसका बिस्तरा भर जाता था। उसने एकके बाद एक तीन स्तंभ बनवाये। अन्तिम स्तम्भ साठ फीट ऊँचा था और पूरा दो फीट भी चौड़ा न था। इस स्तंभ पर वह—जाड़ा गर्मी तथा बरसातकी कुछ भी परवाह न कर—पूरे तीस वर्ष पर्य्यन्त रहा। वह प्रायः चौबीस घंटे ईश्वर-भजनमें लीन रहता और हमेशा तेजीके साथ

क्रिस्तान देशोंसे कुछ उदाहरण।

अपने मस्तकको झुकाता ही रहता । एक मनुष्यने उसके सिरकी गतिको गिनना चाहा, परन्तु वह इसमें असमर्थ रहा । वह इतनी तेजीके साथ अपना सिर झुकाता था कि एक हजार दो सौ चवालीस पर्य्यन्त गिनते गिनते वह मनुष्य थक गया और अपने उद्देशसे बाज़ आया । वह पूरे एक वर्ष तक केवल एक पग पर खड़ा रहा । उसके दूसरे पगमें बड़े बड़े जख्म हो गये थे । उसका शिष्य आण्टनी (जिसने उसका जीवनचरित्र लिखा है) उसके समीप खड़ा रहता और उसके शरीरसे जो कीड़े गिरते उन्हें चुन चुन कर पुनः जख्ममें रख देता। सेण्ट साईमन उन कीड़ोंके प्रति कहा करता था कि " ईश्वरने तुम्हें जो कुछ दिया है उसे भक्षण करो । "

मज़हब जीवनके स्रोतको शुष्क करता है और इस लिए नीति-विरुद्ध है ।

परन्तु सदाचारका क्षेत्र संसार ही है । सच्ची नीतिका उद्देश वासनाओंको एकदम निर्मूल करना नहीं है, वरन् वासनाओंको संयमके साथ—परिमित रीतिसे तृप्त करना है *। मज़हबी सुखकी परवाह नहीं करता; परन्तु संसारके सुखका बढ़ाना ही नीतिका परम लक्ष्य है । *सदाचारकी हमने जो परिभाषा दी है, उसके अनुसार जिस वस्तके द्वारा जीवनकी वृद्धि, उन्नति और विकास होता है वही नैतिक है और जिसके द्वारा जीवनका क्षय, ह्रास और नाश होता है वह अनैतिक है । हम यह भी देख चुके हैं कि आनन्दकामनासे जीवन-प्रयासमें सहायता मिलती है तथा आनन्दका तिरस्कार करना नीत्यनुरूप नहीं है ।* * परन्तु मज़हब हमारे जीवनके स्रोतको शुष्क करता है—हमारे हृदय-स्पन्दनको रोक देता है । यह हमारी कुल वासनाओं और उमंगोंको

* देखो अध्याय तीसरा ।

निर्मूल करना चाहता है, हमें संसारसे विलग कर हमारी सहानुभूतिका गला दबाना चाहता है। अतएव मज़हब नीति-विरुद्ध है। मज़हबका आदर्श तपस्या या वासनाओंका मारना है और तपस्या तुषारतुल्य कठोर है। इसमें किसी प्रकारकी मृदुलता या कोमलताको स्थान नहीं है। स्नेह यहाँ निवास नहीं कर सकता। प्रेमका वासस्थान दूसरा है। मृत्युकी तसवीर और संसारकी अनित्यता हर क्षण मज़हबी लोगोंकी आँखोंके सामने नाचा करती है। वे कहते हैं, संसार कितना बेवफ़ा—

मज़हबमें नैराश्य।

कितना विश्वासघातक—है। यह किसीकी इच्छा पूर्ण नहीं करता, किसीके काम नहीं आता। मौत किसीको नहीं छोड़ती। बड़े बड़े सूरमा और योद्धाओंको—जिनकी जीवितावस्थामें केवल उनके नामसे सारा संसार काँप उठता था—कालने न छोड़ा। दुनिया माया है, मिथ्या है, स्वप्न है। यदि कुछ यथार्थ है तो धर्म और यही मनुष्यके संग जायगा। दुनियाकी चाहमें, अप्राप्य इच्छाओंमें, ममतामें अपने जीवनको बर्बाद मत कर—

बहुत गई थोड़ी रही, रे मन अबहु तो चेत।
काल चिरैया चुग रही, निश दिन आयू खेत॥

सफ़र है दुश्वार ख्वाब कब तक, बहुत बड़ी मंजिले अदम है।
नसीम जागो कमरको बांधो, उठाओ बिस्तर कि रात कम है॥

अब यदि मज़हबके साथ साथ प्रारब्धमें भी विश्वास हुआ—(प्रायः हर मज़हबका प्रारब्धमें दृढ विश्वास है) तो सारी सांसारिक उन्नतियों पर पानी फिर जायगा। सारी आकांक्षाओं, अभिलाषाओंका अन्त होगा, आशाका अंकुर ही न जमने पायगा। हमारे सारे भावों, आवेगों और आकुलताओं पर पाला पड़ जायगा। संसारमें वसन्त ऋतुका नाम भी न बचेगा, तमाम हिमका ढेर हो जायगा, कहीं भी किसी पत्ती पंखड़ीका निशान न रहेगा!

क्या सदाचारका अर्थ यही है ? मान भी लिया कि मज़हबकी ऐसी शिक्षासे सदाचारको बड़ी सहायता मिलती है, तो क्या उद्देशसाधन-का सर्वोत्तम उपाय यही है ? सैकड़ोंको जिन्दगीसे उदासीन कर देना, हज़ारोंकी लहलहाती हुई आशालताओंपर तुषार गिराना, उनमें सौन्द-र्य्यसे विरक्ति और निष्ठुरता, कठोरता, भीषणतासे प्रीति उत्पन्न कर देना, क्या इसीका नाम सदाचार-प्रचार है ? हजारोंकी सभी उमंगों पर पानी फेर देना, लाखोंसे प्रति क्षण मृत्युकी बाट जोहाना, क्या इसीको सदाचार-प्रचार कहते हैं ?

ग्यारहवाँ अध्याय।

मज़हब और सदाचार।

२—विश्वासका माहात्म्य।

यह समझने लिए कि मज़हब और सदाचारमें कोई सम्बन्ध नहीं है, हमें बहुत दूर जानेकी अवश्यकता नहीं है। यह प्रत्येकके अनुभवमें आया होगा कि अत्यन्त धार्मिक अत्यन्त सच्चरित्र नहीं होते, प्रत्येक क्षण 'राम राम' कहनेवाले दया और सहानुभूतिके आगार नहीं होते, प्रत्येक लम्बे टीकेवालेका हृदय आर्द्र नहीं होता, प्रत्येक अहिंसावादी (चिउँटियों, चिड़ियों और बकरियों पर दया रखनेवाला) मनुष्य पर दया नहीं रखता। सभी वेदों पुराणों अवतारों देवताओं तथा ईश्वरमें दृढ़ विश्वास रखनेवाले अकसर दया, प्रेम और सहानुभूतिमें विश्वास नहीं रखते। ईश्वरके अनेकों आस्तिक प्रेम और दयामें आस्तिकता नहीं रखते।

मजहब और सदाचारमें कोई सम्बन्ध नहीं है।

और इसका कारण भी है। मज़हबकी जड़ विश्वासमें है। विश्वास ही मज़हबका मुख्य अङ्ग है। इसलिए हर स्थान पर विश्वासकी ही प्रधानता है, विश्वासका ही माहात्म्य है। अन्धभक्तिसे सारे तर्क वितर्कोंको परित्याग कर एक अबोध बालकके समान बन जानेसे ईश्वरकी प्राप्ति होती है। शंका, तर्क, ज्ञान, अन्धभक्तिके शत्रु हैं। नहीं नहीं, साफ़ शब्दोंमें यह मज़हबका आदेश है कि ज्ञानके द्वारा कभी ईश्वर मिल ही नहीं सकता और इस कलियुगके लिए तो भक्ति और अन्ध विश्वासके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय ही नहीं है।

क्योंकि मज़हबकी जड़ विश्वासमें है और सदाचारकी कर्ममें।

जे अस भक्ति जानि परिहरहीं,
केवल ज्ञानहेतु श्रम करहीं ।
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी,
खोजत आक फिरहिं पय लागी ॥

... ...

ते सठ महासिन्धु बिनु तरनी,
पैरि पार चाहत जड़ करनी ।

... ...

ज्ञान कि पंथ कृपाणके धारा,
परत खगेश न लागे वारा ॥

... ...

चहुं युग चहुं श्रुति नामप्रभाऊ,
कलि विशेष नहिं आन-उपाऊ ॥
कहहुं कहां लगि नाम-बड़ाई,
राम न सकहिं नाम-गुण गाई ॥
साहबसे सेवक बड़ो, जो निज धर्म सुजान ।
राम बांधि उतरे उदधि, नांघि गयो हनुमान ॥
कलियुग सम युग आन नहिं,
जो नर करु विश्वास ।
गाइ रामगुणगण विमल,
भव तरु बिनहि प्रयास ॥

विश्वासका माहात्म्य अनन्त है । यदि सहस्रों शारदा, शेष, गणेश, महेश इत्यादि भी मिल कर इसे वर्णन करने लगें तो इसके एक अंशके भी समाप्त होनेकी आशा नहीं । नहीं नहीं, जैसा कि गुसाईं तुलसीदासजीने कहा है, स्वयं राम भी इसके गुण नहीं गा सकते । इसीके प्रभावसे देवताओंने अपना बल और पराक्रम प्राप्त किया है और काम, क्रोध, मोह, लोभसे छुटकारा पानेके लिए इससे बढ़ कर अन्य कोई उपाय नहीं है ।

राम नाम मणि दीप धरु. जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहरौ, जो चाहसि उजियार॥

अतएव मज़हबी आदमी ज्ञान या कर्म पर अधिक ज़ोर नहीं देता।

नहिं कलि कर्म न भक्ति विवेकू,
राम नाम अवलम्बन एकू॥

सत्कर्मके साथ मज़हबका निषेधात्मक सम्बन्ध है।

सत्कर्म (Actions-Good deeds) के साथ मज़हबका एक प्रकारसे निषेधात्मक सम्बन्ध है। मज़हबका आदेश बुरे कामोंसे बचनेका अवश्य है, पर मज़हब सत्कर्म करनेका कड़ा हुक्म कहीं नहीं देता। मुक्तिका सहज साधन सत्कर्म नहीं, वरन् भक्ति और अन्धविश्वास है।

अतुलित महिमा वेदकी, तुलसी किये विचार।
जो निन्दत निन्दत भयो, विदित बुद्धअवतार॥

परन्तु सदाचारके लिए परम आवश्यकता इसीकी है। अतएव सच्चा मज़हबी बुरे कामोंसे निस्सन्देह बचेगा, पर सत्कर्मके लिए कमर कस कर तैयार न होगा। क्यों कि सदाचारसे संसारके क्लेश-विमोचनसे अधिक आवश्यक उसके लिए उसकी माला और सुमरनी है।

रसना सांपिन वदन बिल, जे न जपहिं हरिनाम।
तुलसी प्रेम न रामसों, ताहि विधाता वाम॥
तुलसी श्रीरघुबीर तजि, करे भरोसा और।
सुख सम्पतकी काचली, नरक हु नाहीं ठौर॥
तुलसी परिहरि हरि हरहि, पांवर पूजहिं भूत।
अन्त फजीहत होहिंगे, ज्यों गनिकाके पूत॥
साहिब सीतानाथसों, जब घटिहै अनुराग।
तुलसी तबहीं भाल ते, भभर भागिहैं भाग॥
बिधन इंधन पाइये, सागर जुरै न नीर।
परै उपास कुबेर घर, जो विपक्ष रघुबीर॥

अहा और नामका भी कितना बड़ा माहात्म्य है ! एक बार राम नाम लेनेसे पूर्वके सारे पाप ही नहीं समस्त पापमय जीवन शुद्ध और पुनीत हो जाता है, सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। अजामिलकी कथा किससे छिपी है ? गज, गणिका, व्याध, कसाईकी कथा कौन नहीं जानता ?

विश्वास और नाम-कीर्तनसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

नाम प्रसाद शंभु अविनाशी,
साज अमंगल मंगल राशी।
शुक सनकादि सिद्ध मुनि योगी,
नाम प्रसाद ब्रह्मसुखभोगी॥

... ...

अपर अजामिल गज गणिकाऊ,
भये मुक्त हरिनामप्रभाऊ।

... ...

महिमा जासु जान गणराऊ,
प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ।
जान आदि कवि नाम प्रतापू,
भये सिद्ध करि उलटा जापू॥
सहस नाम सम पुनि शिवबानी,
जपि जेई पिय संग भवानी॥

... ...

नाम प्रभाउ जान शिव नीके,
कालकूट फल दीन्ह अमीके।

कितना ही बड़ा पाप क्यों न हो, हरिनाम उसको भी मेट सकता है। ठीकसे तौबा कर लेने पर कोई पाप नहीं बचा रहता। *स्वर्गके द्वारको बन्द करनेवाला कुकर्म या पाप नहीं, परन्तु अविश्वास है*। बुरेसे बुरा मनुष्य भी—यदि उसे ईश्वरमें विश्वास है तो—स्वर्गमें स्थान प्राप्त कर सकता

ईश्वरका न्याय। एक कथा।

है; परन्तु अविश्वासके साथ—चाहे मनुष्य कितना बड़ा ही सत्कर्म करे ईश्वरकी दयाका भागी नहीं हो सकता ।

एक दिन खुदाका इजलास लगा था। फ़रिश्ते हाथ बाँध कर अदबसे इर्द गिर्द खड़े थे । सन्नाटेका साम्राज्य था । किसकी मजाल कि एक छींक तक मारे या जमुहाई तक ले सके । सारे ज़मीन आसमानके मालिक, इन्सान, हैवान, फ़रिश्ते मलायक आदिके और सारे-राज-राजेश्वरोंके पति किसी विचारमें निमग्न थे। समाधि टूटने पर उन्होंने मुसकराती हुई नजरसे अपने अनुचरोंकी ओर देखा और उनके प्रति मीठी बातें करना शुरू किया। प्रभुको अनुकूल देख कर जिबरील साष्टांग दण्डवत कर हाथ बाँध नतमस्तक हो अत्यन्त कातर भावसे सिंहासनके समीप जा खड़े हुए। अपने प्यारे फ़रिश्तेको इस प्रकार देख कर अन्तर्य्यामी खुदा उसके मनकी बातको समझ गये; परन्तु तौभी जिबरीलसे बोले—जिबरील, तुझे क्या कहना है, कह । प्रभुकी आज्ञा पाकर जिबरील बड़े आदर और आहिस्तगीके साथ कहने लगे—"स्वामी मेरे हृदयमें एक क्षोभ—एक शंका उत्पन्न हो रही है। मैं जानता हूँ कि शंका ही गुनाहकी जड़ है। मुझे विश्वास है कि सरकारके साम्राज्यमें अन्याय नहीं रह सकता; परन्तु तौभी यह विस्मय मेरा पीछा नहीं छोड़ता, यह मेरे हृदयको दग्ध किये डालता है। यह मेरे मन और प्राण सभीको भस्म कर रहा है। स्वामिन्! कई दिन व्यतीत हुए कि मैं टहलता टहलता मर्त्य लोककी ओर चला गया था। वहाँ एक धार्मिक फ़क़ीरको देखा कि जिसने सम्पूर्णतः वस्त्रहीन होनेके कारण अपने आधे शरीरको बालूमें गाड़ रक्खा था । अनाहारके कारण उसके शरीरमें रक्त और मांसका नाम तक नहीं था। उसका शरीर सूख कर काँटा हो गया था। इसपर भी उसे कुष्ठकी बीमारी

थी। शरीरमें कीड़े पड़ गये थे। परन्तु प्रभो, तौभी वह धर्म्मात्मा आपसे ग़ाफ़िल न था। वह अपने शरीरसे कीड़ोंको चुनता था और आपको स्मरण करता था। माला फेरते फेरते उसके हाथमें छाले पड़ गये थे। हे स्वामिन्! इसे छोड़ कर जब मैं आगे बढ़ा, तो इससे एकदम उलटा मुझे एक दूसरा दृश्य देखनेमें आया। मैंने देखा कि एक पापी नशेमें मस्त होकर किसी वेश्याके घरमें घुसा जाता था। दरयाफ़्त करने पर मालूम हुआ कि चोरी, डकैती, हत्या और जुआ ही उसके पेशे हैं और शराब पीना और वेश्याओंके यहाँ भ्रमण करना यही उसका मुख्य काम है। हे प्रभो, इसे देखनेके साथ सन्देहकी अग्नि मेरे हृदयमें प्रज्वलित हो उठी, उसी क्षणसे भूख और आरामने मुझसे विदा ले ली। एक धर्म्मात्माको इतना दु:ख और एक पापीको इतना आराम, सरकारका यह रहस्य मेरी समझमें नहीं आया।" इतना कहते कहते जिबरीलका कण्ठ रुद्ध हो गया और वे पृथ्वी पर धड़ामसे गिर कर विलख विलख कर रोने लगे। दयासागर प्रभुसे जिबरीलका दु:ख देखा न गया। उन्होंने जिबरीलको उठनेकी आज्ञा दी और अनेक प्रकारसे उन्हें सान्त्वना प्रदान की। खुदा बोले—"देख जिबरील, निस्सन्देह शंका और अविश्वास ही सारे पापोंकी जड़ है; परन्तु मैं तेरी इस शुद्ध शंकासे तनिक भी अप्रसन्न नहीं हूँ। तू मेरा प्रधान और प्यारा अनुचर है। मैं तुझे आज्ञा देता हूँ कि तू दोबारा संसारमें जा और इन दोनों आदमियोंके सच्चे विश्वास और धर्मका पता लगा। जिबरील फिर भी मर्त्यलोकको पधारे। पहले वे धर्मात्मा फ़क़ीरके पास गये और सलाम बन्दगीके बाद उसके निकट बैठ गये। दो चार बातोंके बाद उन्होंने उस फ़क़ीरसे जिज्ञासाकी कि "दोस्त, तूने क्या अभी थोड़ी देर पहले एक कौतुक देखा था?" फ़क़ीर ने कहा-"नहीं तो, क्या हुआ था?" जिबरीलने उत्तर दिया "अभी एक क्षण पहले इसी सड़क पर सत्तर

हजार ऊँट एक सुईके छिद्रसे पार हुए थे।" फ़क़ीर जिबरीलके इस कहने पर बहुत हँसा और उन्हें उसने सिडी और ठट्ठेबाज़ समझ कर तिरस्कारके साथ अपने समीपसे दुरदुरा दिया। अब जिबरील उस पापीके पास पहुँचे और उससे भी उन्होंने वही प्रश्न किया। प्रश्नके सुनते ही वह जूता लेकर खड़ा हुआ और उसीसे उसने जिबरीलकी खबर लेनी चाही। उसने कहा कि "बदमाश, तुझे क्या ठट्ठेबाज़ी सूझी है? खुदाकी कुदरतके सामने क्या असंभव है? सत्तर हजार ऊँट क्या कोटानुकोटि हाथी भी एक सूईके छेदमेंसे पार हो सकते हैं।" जिबरील अपनी शंकाका पूरा समाधान पाकर खुश खुश बहिश्तको चल दिये। खुदा अन्यायी नहीं है और किसीको निरपराध दण्ड नहीं देता। इस तरहकी केवल एक ही नहीं, वरन् लाखों कथायें हर देश और धर्ममें मौजूद हैं। क्रिश्चियन धर्मके सम्बन्धमें कुछ कथाओंका उल्लेख कौटर मौरिसनने अपने 'सर्विस ऑफ मैन' नामी ग्रन्थके पाँचवें अध्यायमें किया है।

कयामतका चित्र।

धर्मके इसी अंश (Aspect) पर व्यंग करते हुए कर्नल इंगरसौलने क़यामत (Day of judgement)—विचारके दिन—का निम्नलिखित हास्योत्पादक चित्र खींचा है।

"थोड़ी देरके लिए सोचो कि क़यामतके दिन हमलोग विचारके निमित्त खुदाके सामने खड़े है और लोगोंका न्याय हो रहा है। लिखनेवाला सेक्रेटरी आत्माओंसे जिरह कर रहा है। एक रूह(आत्मा)के पहुँचने पर वह उससे प्रश्न करता है:—

"तुम कहाँसे आते हो?"

"मैं दुनियासे आ रहा हूँ।"

"तुम किस तरहके आदमी थे?"

" मैं अपने बारेमें स्वयं कुछ नहीं कहना चाहता। आप अपनी किताबोंको देख कर मेरे चरित्रको खूब समझ सकते हैं।"

" नहीं नहीं, तुम्हें अपने मुखसे उत्तर देना होगा।"

" जब आपकी यही इच्छा है, तो सुनिए । मैं बहुत अच्छा ऊँची श्रेणीका आदमी था। मैं अपनी स्त्री और बच्चोंको खूब प्यार करता था। मेरा घर ही मेरे लिए स्वर्ग था। स्त्री बच्चोंके साथ अग्निके इर्द गिर्द बैठना मुझे वैकुण्ठसे भी अधिक प्रिय मालूम होता था । अग्निके समीप बैठ कर उनके मुखारविन्दके निहारनेसे, अग्निके प्रकाशसे उनके चेहरेके चमक उठने तथा परछाहींके पड़ने पर उनके चेहरेमें जो अनिर्वचनीय शोभा उत्पन्न होती थी उसका अवलोकन करनेसे मुझे परम आनन्द प्राप्त होता था। "

" अपने कुटुम्बके साथ तुम्हारा कैसा व्यवहार था ?"

"मैंने कभी एक भी कठोर शब्द किसीसे नहीं कहा ।मैंने अपनी स्त्री या पुत्र पुत्रियोंको कभी एक क्षणके लिए भी कोई दुःख नहीं दिया।"

"तुमने अपने सारे क़र्ज़को अदा कर डाला था ?"

" मरते समय मेरे जिम्मे किसीकी एक कौड़ी भी बाकी न थी और मरते समय मैं यथेष्ट सम्पत्ति छोड़ कर मरा था कि जिसमें मेरा श्राद्ध सुन्दरतासे निपट जाय और मेरे परिवारको किसी बातकी तकलीफ़ न हो।"

" तुम किस मतके अनुयायी थे और किस गिरजेके अधीन थे ?"

"नहीं जनाब, सभी मत और मजहब मुझे अति संकुचित, क्षुद्र, हृदय-हीन और भ्रमप्रमादसे परिपूर्ण मालूम होते थे। मुझे यह मालूम होता था कि यदि और लोग जहन्नुममें जायँगे, तो मुझे स्वर्गमें भी आनन्द न मिलेगा।"

"तुम अनन्त दण्ड (eternal punishment) में विश्वास करते थे या नहीं ?"

"नहीं, मुझे मालूम होता था कि बहुत थोड़े समयमें खुदाका बदला लेना पूरा हो जायगा और उसका गुस्सा ठंढा हो जायगा।"

"हौवाकी पसुलीसे पैदा किये जानेवाले किस्सेमें तुम्हें विश्वास है?"

"क्या आपका आशय आदम और हौवेके किस्सेसे है?"

"हाँ, तुम इस पर विश्वास करते थे?"

"यदि सच पूछते हो तो यह किस्सा मेरी बुद्धिमें न अँटता था।"

"अभी अभी इसे नरकमें ले जाओ।"

इसके बाद दूसरेकी बारी आई।

"तुम कहाँसे आते हो?"

"मैं भी दुनियाहीसे आ रहा हूँ।"

"तुम किसी गिरजेके अधीन थे?"

"जी हाँ, और मैं यङ्गमेन्स क्रिश्चियन एसोसियेशन (Young Men's Christian Association) का भी सभासद था।"

"तुम्हारा क्या पेशा था?"

"मैं एक सेविंग्स बैंकका खजानची था।"

"तुमने कभी कुछ रुपया उड़ाया था?"

"मैं जिस स्थानसे आ रहा हूँ वहाँका यह नियम था कि साक्षी ऐसे प्रश्नोंका उत्तर नहीं दे सकता है कि जिससे वह खुद मुजरिम साबित हो।"

"यहाँका नियम दूसरा है। तुम प्रश्नका उत्तर दो। कभी कुछ रुपया ले भागे थे?"

"जी हाँ।"

"कितना ?"

"तीन लाख नकद ।"

"तुम अपने साथ और भी कुछ ले भागे थे ?"

"जी हाँ ।"

"जल्द बोलो क्या ले भागे थे ?"

"मैं अपने एक पड़ोसीकी स्त्रीको भी निकाल लाया था । गिरजामें हम दोनों एक साथ गया करते थे ।"

"तुम्हें निजकी भी स्त्री और बच्चे थे ?"

"जी हाँ ।"

"और तुमने उन सबको परित्याग कर दिया ?"

"जी हाँ । परन्तु ईश्वरमें मुझे ऐसा दृढ़ विश्वास था कि मैंने सोचा ईश्वर उनकी जरूर खबर लेगा ।"

"उसके पश्चात् तुमने उनके बारेमें फिर कुछ सुना है ?"

"जी नहीं हुजूर ।"

"तुम पसुलीके किस्सेमें विश्वास करते थे ?"

"खुदा आपको सलामत रक्खे, निस्सन्देह । हज़ारों बार मेरी इच्छा होती थी कि बाइबिलमें इस प्रकारकी एक ही कथा क्यों है । यदि इस तरहकी हज़ारों कथायें होतीं, तो मैं अपने विश्वासकी दृढ़ता और भी स्पष्ट कर दिखलाता ।"

"तुम उस किस्सेमें अब तक विश्वास करते हो ?"

"निस्सन्देह ।"*

"इसे स्वर्गमें ले जाओ । इसके हाथमें एक वीणा दे दो और इसका पूरा सत्कार करो ।"

* Ingersoll—Lectures and Essays Part II. P. 37.

वाहरे विश्वास और वाहरे तेरा माहात्म्य ! मनुष्यके रक्तसे अपने हाथ धो डालो, पीठ पीछे निपराधी लोगोंकी निन्दा करके उनके उज्ज्वल यशामें धब्बा लगा दो, माँकी गोदमें हँसते हुए शिशुकी हत्या कर डालो, सुन्दर स्नेहकी मूर्त्तिको जो तुम्हारे लिए जान देती है और तुममें परम विश्वास रखती है धोखा दो, उसका सर्वनाश कर दो और उसे परित्याग भी कर डालो। इन सभी अपराधोंके लिए तुम्हें क्षमा प्रदान की जा सकती है; परन्तु यदि तुमने कहीं ईश्वर, देवता या बाइबलमें क्षणमात्रके लिए भी अविश्वास किया तो दयाका दिव्य सुन्दर और करुणामय मुखड़ा क्रोध और अनन्त घृणासे लाल हो उठेगा, स्वर्गके सुनहरे कपाट बन्द हो जायँगे और तुम नरककी भयानक अग्निमें झोंक दिये जाओगे। मृत्यु भी तुम्हारी सहायता नहीं कर सकती, क्योंकि नरकमें मौत नहीं है। मज़हबी लोगोंके इसी आचरणको देख कर धर्मके इसी अंधविश्वास पर व्यंग करते हुए बौलटेअर* ने कहा था कि जैसे स्कूलोंमें इतिहास भूगोल या अन्य पुस्तकोंमें लड़कोंकी परीक्षा होती है मानो उसी प्रकार मज़हबी लोगोंको वेद, बाइबल और कुरानमें परीक्षा पास करनी पड़ेगी।

विश्वास करने पर सत्कर्म और दुष्कर्ममें कोई अन्तर नहीं रहता।

निस्सन्देह, विश्वासकी महिमा अकथनीय है। नहीं नहीं, विश्वासका इतना माहात्म्य है कि फिर सत्कर्मकी परवाह ही करना वृथा है। जब एक बार राम नामका उच्चारण करनेसे, एक बार गंगास्नान करनेसे तथा ब्राह्मणोंको दान× देनेसे हजारों कुकर्म नष्ट हो जाते हैं, तब सदाचारकी तो कोई विशेष आवश्यकता नहीं दीख पड़ती!

---

* साधारण लोगोंका यह विश्वास है कि बौलटेअर नास्तिक है; परन्तु यह एकदम गलत है। बौलटेअर कट्टर आस्तिक था और आस्तिकता पर उसने कितने ही निबन्ध लिखे हैं।

× आधुनिक भारतहीके समान मध्यकालीन योरोपमें भी पुण्य रुपयों

अब यह विचार करना चाहिए कि जब भक्ति इतनी सहज, स्वर्ग इतना सुलभ है, तो लोग कर्त्तव्यकर्मका आश्रय क्यों ग्रहण करेंगे? क्या मज़हबकी ऐसी शिक्षाओंसे सदाचारकी पुष्टि होती है या उलटा उसकी जड़में कुल्हाड़ा लगता है? मान लिया कि ब्याधाके, पापीके, डाकूके, गणिकाके, शराबीके, सभोंके अपराध क्षमा कर दिये गये, उनका सारा पाप विश्वासकी पावनी गंगा द्वारा धुल गया, पर क्या उनके कुकर्मोंका नतीजा भी एकदम मटियामेट हो गया? या उनके एक बुरे कार्य्यसे हजारों बुरे कार्य उत्पन्न हुए? एक एककी अगणित संतति हुई? *ईश्वरने तो ब्याध, डाकू, गणिका, कसाई इत्यादिको क्षमा कर डाला, पर क्या जिनकी उन्होंने हत्या की थी, जिनका उन्होंने सर्वस्व हरण किया था, जिन्हें पापमें फँसाया था, जिन्हें यन्त्रणा दी थी, क्या उन लोगोंने भी उन्हें क्षमा कर दिया? इन लोगोंका तो दुःख दूर हुआ, पर क्या इससे उन सबका भी दुःख दूर हो गया जिनका इन्होंने अहित किया था?*

सदाचार पर कुठाराघात

द्वारा खरीदा जा सकता था। थोड़ासा धन व्यय करनेसे ईश्वर अपराधियोंका अपराध क्षमा करता था और इसका सर्टिफिकेट गिरजेके प्रधान पुजारीके हाथोंसे रुपया देनेवालेको मिलता था। सर्टिफिकेट पर प्रधान पादरीके हस्ताक्षर बने होते थे। प्रत्येक पापसे मुक्ति लाभ करनेके लिए द्रव्य निर्द्धारित थे। जैसे डाइन होनेके पापसे मुक्ति पानेके सर्टिफिकेटका मूल्य दो ड्यूकेट था। बहुविवाहके अपराधको ईश्वर छः ड्यूकेट(ducat एक सिक्केका नाम) में, हत्याके अपराधको आठ ड्यूकेटमें और झूठ गवाही देने तथा मजहबी बातोंमें ठट्ठा करनेके अपराधको नौ ड्यूकेटमें क्षमा करता था।

और हमारे पापके उन साथियोंका क्या होगा, जिन्हें हमहीने पापके रास्तेमें ला छोड़ा है ? उस स्त्रीका क्या होगा जिसका सतीत्व हमने भंग किया है? उन युवकोंका क्या होगा जो हमारा ही अनुसरण कर कुकर्मी हो बैठे हैं ? क्या हमारे साथ साथ इन्हें भी क्षमा प्रदान किया जायगा ? या अपने कार्य्योंका अवश्यम्भावी फल उन्हें चखना ही पड़ेगा ? हमारा प्रत्येक कार्य्य बीजके समान है । जिस प्रकार एक बीजसे अनेकों बीज पैदा होते हैं, उसी प्रकार हमारे एक बुरे कामसे अनेकों बुराइयाँ और एक सत्कर्मसे अनेकों भलाइयाँ संसारमें जन्म ग्रहण करती हैं ।

परन्तु मज़हब इसपर ध्यान नहीं देता । यदि समय पर तौबा कर लिया जाय, तो कुकर्मों और सत्कर्मों सभीका अन्त एक ही होता है । इस समय जो घोर कुकर्मी है कल वही पूजनीय और महात्मा हो सकता है, और जो इस समय बड़ा सच्चरित्र देखनेमें आता है कल वही बहुत बड़ा अधर्मी हो सकता है । इसी कारण मज़हबने सत्कर्मकी अपेक्षा विश्वास, भक्ति, नामकीर्तन पर अधिक जोर दिया है । मज़हब सदाचारका सहायक है या शत्रु, यह अब आप पर और भी स्पष्ट हो गया होगा ।

कर्तव्यको विश्वाससे कोई सरोकार नहीं है।

मज़हबकी स्थिति विश्वासपर है और सदाचारकी कर्मपर । अतएव यदि मज़हब और सदाचारका साथ नहीं होता, तो इसमें आश्चर्य्यकी कोई बात नहीं है । चाहे हम यह विश्वास करें कि इस जगतकी रचना एक ईश्वरने की है या चाहे हम यह मानें कि बीस ईश्वरोंने मिलकर इस दुनियाको बनाया है, हमारे कर्तव्यमें कोई अन्तर नही आता । मज़हबका उद्देश ईश्वरको प्रसन्न करना है और इस कारण सच्चरित्र होने-

की अपेक्षा मज़हबी आदमीको अत्यन्त नम्र तथा विनीत होकर ईश्वरकी उपासना करनेकी अधिक आवश्यकता है। *यदि वह कोई बरा काम भी करता है तो कोई परवाह नहीं। क्योंकि इसका फल सहजमें दो बार माला फेर लेनेसे, या किसी धर्मपुस्तकके दस पाँच पन्ने पढ़ या सुन लेनेसे एकदम मेटा जा सकता है।* मज़हब भी निःसन्देह हमें कभी कभी सच्चरित्र होनेके लिए कहता है। इसी लिए कि ईश्वर इससे प्रसन्न होगा और हमें इसका पुरस्कार मिलेगा। इस लिए नहीं कि सदाचार स्वयं साध्य है। सत्कर्मका कोई पुरस्कार हो ही नहीं सकता। वास्तवमें आजन्म सत्कर्म करते रहने पर भी उन लोगोंको महान् पुरुष कदापि नहीं कहा जा सकता, जो सत्कर्मको सत्कर्म समझ कर नहीं करते वरन् जो ईश्वरके कुपित होनेके डरसे दुष्कर्मोंसे अलग रहते हैं। नादिर, तैमूर, अकबर औरंगजेब प्रभृति बादशाहोंके मुसाहिबों, भृत्यों, या दरबारियोंका विनीत अभिवादन या सलाम यदि सदाचरण कहा जा सकता है, तो निस्सन्देह हमें मज़हबी लोगोंकी ईश्वर-बन्दना और चाटुकारिताको भी सदाचारमें शामिल करना पड़ेगा।

कर्मका प्रभाव अमिट है।

सदाचार-व्रत धारण करनेमें हमें इस बातके जाननेकी आवश्यकता है कि कर्मका प्रभाव कदापि नहीं मेटा जा सकता। किसी समुद्रके किनारेसे एक कंकरीको उसमें फेंक दो। उसमें तुरन्त ही लहरें उठना आरम्भ होंगी और किनारे तक अवश्य पहुँचेगी—चाहे वे लहरें कितनी ही छोटी क्यों न हो, चाहे हम उन्हें अपनी आँखोंसे भी न देख सकें। हमारे कर्मोंकी भी यही हालत है। चाहे कितने ही छोटे रूपसे क्यों न हो, हमारे प्रत्येक कर्मके द्वारा इस संसाररूप

समुद्रमें एक लहर अवश्य पैदा होती है। हमारे कर्मोंका नतीजा*
जरूर व्याप्त होता है, चाहे ईश्वर हमें लाखो बार क्यों न क्षमा कर दे।
अनुमान करो कि हम छल या पाषण्डसे किसीका सर्वस्व हरण कर
डालते हैं, उसके दूध पीते बच्चेको, उसकी स्त्रीको, दाने दानेके लिए
मुहताज बना देते हैं या किसी निरापराधीको अनेक यंत्रणायें देकर उसकी
हत्या भी कर डालते हैं, तो क्या रशियाके भूतपूर्व ज़ार या टर्कीके सुल-
तानके अपराध क्षमा कर देनेसे, कोई दण्ड न देनेसे, हमारा पाप पूर्ण-
तया मिट जा सकता है? *यदि ये हमारे पापको मेट सकते हैं, तो ईश्वर भी
ऐसा कर सकता है। जब तक हम ऐसा सोचते रहेंगे, तब तक
हमारे लिये यथार्थ सच्चरित्र होना कठिन है, क्योंकि रो कलपकर,
प्रार्थना कर, गिड़गिड़ाकर, तथा खुशामद और चापलूसी कर
ईश्वरके प्रसन्न करनेका रास्ता हमारे सामने खुला हुआ रहेगा।*

* यथा वार्धुषिको वृद्धिं दिनभेदे प्रतीक्षते।
धर्मेण पिहितं पापं धर्ममेवाभिवर्धयेत॥

—महाभारत, अनु० प० १६२–५७।

अर्थात् "ऐसे मनुष्यके दुष्कर्मका प्रभाव दिन प्रति दिन उसी प्रकार बढ़ता है, जिस प्रकार कुसीदजीवी (व्याज लेने वाले) महाजनका सूद। यदि एक बार दुष्कर्म करके मनुष्य उसे सत्कर्मोंसे ढँकना चाहता है, तो सत्कर्मके द्वारा उसके दुष्कर्मका प्रभाव नष्ट होता है और फिर उससे अन्य पापोंकी उत्पत्ति नहीं होती।"

बारहवाँ अध्याय।

मज़हब और सदाचार।

३–ईश्वरमें सदाचारका आदर्श।

ईश्वरमें सदाचारकी मात्रा कितनी है?

प्राय: सभी मज़हब एक सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान ईश्वरमें विश्वास करते हैं। इसी विश्वासके सहारे प्राय: सारे मज़हब खड़े हैं। यही मज़हबोंका मुख्य स्तम्भ है। अतएव यहाँ पर यह अन्वेषण करना असंगत न होगा कि स्वयं ईश्वरमें सदाचारकी मात्रा कितनी है। सदाचारके अवलम्बनमें ईश्वर कहाँ तक हमारा आदर्श हो सकता है। मज़हबी लोगोंके कथनानुसार ईश्वरमें विश्वास ही वह संजीवनी बूटी है जिसके द्वारा मज़हबी लोग सच्चरित्र होते हैं और मज़हबके न रहने पर जिस संजीवनीके अभावके कारण लोग दुश्चरित्र हो जायँगे।

इस प्रश्न पर विचार करनेमें भयभीत नहीं होना चाहिए।

पाठक घबरा सकते हैं, और कह सकते हैं कि ऐसा करनेका हमें कोई अधिकार नहीं है। ईश्वर अनन्त है, महान् है, हम क्षुद्र मनुष्य उसके भेदों पर, उसकी बातों पर विचार नहीं कर सकते। यदि आपका यह विचार है तो यह नि:सन्देह बलवानोंकी स्तुति करनेके तुल्य है। यदि हम सत्यव्रती—सच्चरित्र होना चाहते हैं, तो हमें सत्यपर ही दंडायमान होना पड़ेगा। हमें भयको, असत्यको परित्याग करना ही होगा। हम भले

ही क्षुद्र हों, दुर्बल हों; परन्तु सत्यको क्यों छोड़ें ? ईश्वरके भयसे हम अपने अन्तःकरणको, अपने स्वाभाविक भावोंको, क्यों दबायें ? हम सत्यवक्ता क्यों न हों ? परिणाम चाहे जो हो—ईश्वर हमें नरकमें भी फेक दे— हम अपने नैतिक स्वभावको नहीं छोड़ सकते। हो सकता है कि अपनी छोटी बुद्धिके कारण हम ईश्वरके कार्य्योंकी समालोचनामें भूल भी करें; परन्तु हमारी बुद्धिको इतना सीमाबद्ध किसने बनाया ? इसमें भी तो दोष ईश्वरहीका है।

संसारमें दुःखों और कष्टोंकी मात्रा।

दया, न्याय और अहिंसाका पालन, यह सदाचारकी आज्ञा है। पर ईश्वरमें इस दया न्याय अहिंसाकी मात्रा कितनी है ? और सदाचार पक्षपात छोड़नेकी भी शिक्षा देता है। पर क्या ईश्वर सर्वथा पक्षपातविहीन है ? देखो, सारी प्रकृति एक प्रकारका रणस्थल, एक प्रकारका श्मशान बनी हुई है। मक्खीके फँसानेके लिए मकड़ी क्या क्या चालें चलती है। बकरोंका एक दल एक क्षणमें घास चरते हुए इतने जीवोंको भक्षण कर डालता है कि जितने आदमी भी इस भूमण्डल पर न होंगे *। बहरी छोटी छोटी चिड़ियोंका शिकार करती है,

---

* **सूक्ष्मयोनानि भूतानि तर्कगम्यानि कानिचित्।**
पक्ष्मणोपि निपातेन येषां स्यात् स्कन्धपर्ययः॥

—महाभारत, शान्तिपर्व १५-२६।

"इस जगतमें ऐसे सूक्ष्म जन्तु हैं कि जिनका अस्तित्व नेत्रोंसे नहीं देख पड़ता, तथापि तर्कसे सिद्ध होता है। ऐसे जन्तु इतने हैं कि यदि हम अपनी आँखोंके पलक हिलावें तो इतनेहीसे उन जन्तुओंका नाश हो जाय।"

—गीतारहस्यका हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ३१।

आह ! और सिवाय हिंसाके इस संसारमें है ही क्या ? एक करुणार्द्र अँगरेजी लेखकने सच ही कहा है कि हमें प्रत्येक मुखको यथार्थ बध्य-भवन (Slaugh-

सिंह अनेकों जानवरोंको मार कर अपनी उदरपूर्ति करता है; परन्तु सिंह और बहरी दोनों ही मनुष्यके शिकार बनते हैं। और वह मनुष्य भी क्या निरापद है? नहीं नहीं, कदापि नहीं। लड़ाई छिड़ती है, मानवरक्तसे रणस्थल लाल होता है, उसका सिर धड़से विलग हो कर पृथ्वी पर लोटता है, दर्द और दुःखसे कातर हो कर जख्मी मनुष्य कराहने लगता है तथा बेचैन होकर प्रचण्ड ग्रीष्मके उत्तापमें बिना पानीके तृष्णाके मारे पानी पानी चिल्लाता हुआ अपने प्राण देता है और उसके मांसको चील कौवे तथा जंगली जानवर भक्षण करते हैं। इतना ही नहीं, केवल लड़नेवाले ही लड़ाईमें काम नहीं आते। एक एक

---

ter house) और प्रत्येक उदरको यथार्थ कब्र समझना चाहिए। इस प्रसंगमें कौशिकके प्रति व्याधके वचन विशेष रूपसे उद्धृत करनेके योग्य हैं। "खेती करके अन्न पैदा करना कितना आवश्यक है, पर हल चलाने और अन्य कृषि कार्योंसे कितने जीवोंकी हिंसा होती है? मनुष्य वृक्ष और ओषधियोंको काटता है। इनमें भी कितने जीव रहते है? सबके पीनेकी वस्तु जल भी तो जीवसंकुल है! ऐसी अवस्थामें सिवाय इसके और क्या निर्णय किया जा सकता है कि इस जगतमें एक जीव दूसरे जीवका आहार होता है!!! देखो, मछली मछलीको भक्षण कर डालती है और एक प्रकारके जीव अन्य प्रकारके जीवोंको वध करके अपनी उदरपूर्ति करते हैं। कुछ जीव अपनी जातिके जीवोंका ही बध करते हैं। हे ब्राह्मण, भूमि पर रहनेवाले बहुतसे जीवोंको मनुष्य अपने पैरोंसे कुचल डालता है। बुद्धिमान और ज्ञानसम्पन्न मनुष्य भी चलने फिरने, उठने बैठने, सोने इत्यादिमें बहुतसे जीवोंकी हिंसा कर डालते हैं। पृथ्वी और आकाशमें कोई ऐसा स्थान नहीं जो जीवोंसे शून्य हो। अज्ञानसे ही मनुष्य बहुतसे जीवोंकी हत्या करता है। हे पुरुषश्रेष्ठ, संसारमें ऐसा कौन प्राणी है, जिसने हिंसा नहीं की? अनेक अनुशीलन और चिन्तनके बाद मैं यही स्थिर कर सका हूँ कि संसारमें ऐसा कोई प्राणी नहीं कि जो हिंसा न करता हो।" —महाभारत, वनपर्व।

तैमूर और चंगेजके आक्रमणोंसे लाखों नगर उजाड़ हो जाते हैं, लाखों सधवायें विधवा, लाखों सतियाँ सतीत्वहीना और लाखों शिशु मातृपितृहीन हो जाते हैं। माताकी गोदमें उनकी आँखोंके सामने कितने मृदुल मुसकुराते हुए बच्चोंकी देहमें भाला चुभाया जाता है। ठहरो, ठहरो, उदाहरणोंकी कमी नहीं है, कहाँ तक उदाहरण दिये जायँ? एक साल वृष्टि नहीं हुई। धरती माताने मनुष्यके भरण पोषणका कुछ भी विचार न करके मनों बीजके बदले एक छटाक अन्न भी प्रदान न किया। अब मनुष्य खाय तो क्या खाय? कई शाम कड़ाकेके बाद जो हाथ आया उसीसे काम चला, पर यह भी कब तक हो सकता है! खैर, अन्न नहीं तो कन्द मूल, वृक्षके फल, छाल, पत्ते और इन सबके अभावमें मिट्टीहीसे अन्नका काम लेना शुरू किया। परन्तु इससे भी प्रकृतिको संतुष्टि न हुई। अपना नियम उल्लङ्घन करनेके कारण प्रकृति उन्हें दण्ड देनेमें तनिक भी कुण्ठित न हुई। उसने अनेकों बीमारियोंको इनके मध्य डेरा डालनेका हुक्म दिया। हजारों संक्रामक व्याधियाँ फैल गईं और प्रकृतिके स्वामी मनुष्यने यूथके यूथ, चिरागके नीचे पतङ्गोंके ढेरके समान, पैर रगड़ रगड़ कर, बिलख बिलख कर, ईश्वरको टेर टेर कर अपना प्राणत्याग किया। पैसिफ़िक महासागरमें एक जहाज फक फक कर पानीको चीर चीर कर अपना रास्ता बनाते हुए दनादन चला जा रहा था। उसके ऊपर लाखोंका माल था। प्रायः हज़ारों आदमी सवार थे। कुछ लोग व्यवसायके लिए अन्य देशोंको जा रहे थे। कुछ लोगोंने देशभ्रमणके लिए ही अन्य देशोंकी यात्रा की थी। विद्याके कुछ प्रेमी विदेशमें विद्याध्ययनके उद्देशसे ही इस पर सवार हुए थे। स्त्री और बच्चोंकी भी इस जहाज पर कमी न थी। कुछ मुसाफ़िर ऐसे भी थे जो बरसोंके उपरान्त अपने स्वदेशको लौटे जा रहे थे

और जिनके लिए एक एक पल एक एक सालके समान मालूम होता था, जिनका प्राण स्वदेशमें पहुँच चुका था, पर केवल उनका धड़ ही जहाज पर अटका हुआ था। जहाजकी तेज़ चाल उन्हें साधारण प्रतीत होती थी। इतनी बड़ी सफ़र काटे नहीं कटती थी। उत्कण्ठा और उद्वेग उन्हें विह्वल किये हुए थे। यदि एक क्षणके लिए उन्हें अपेक्षाकृत कुछ आराम भी मिला, तो कल्पनाकी हज़ारों तसवीरें उन्हें बेचेन किये देती थीं। घर पहुँचनेके साथ ही उनका प्यारा बच्चा मोहन—जिसे देखे हुए उन्हें आज सात वर्ष हुए—दौड़ा हुआ आकर पिता पिता कह कर उनसे चिमट जायगा। सावित्री भी जिसे वे दूध-पीती छोड़कर विदेशको चले गये थे अब खूब बोलने लग गई होगी। अब तो वह बखूबी दौड़ती होगी। घर पहुँचने पर उनकी धर्म-पत्नीको कितना आनन्द आयेगा, वह किस प्रकार प्रेमके आँसू बहा-येगी, यह सब स्मरण आते ही उनका जी उमड़ आया। कितना ही रोका न रुका, सावन भादोंने झड़ी लगा दी। खूब रोये। एक क्षणके बाद जब स्थिर हुए तो लगे काल्पनिक चित्र खींचने। मित्रोंसे भेंट होने पर वे उन्हें सफ़रकी अनेक कथा सुनायेंगे, अमुक अमुक बातें कहकर अपनी ज्योतिर्मयी स्नेहमयी अर्द्धाङ्गिनीको प्रसन्न करेंगे, इत्यादि इत्यादि। पर विधनासे यह न देखा गया। उसी क्षण जहाज एक अदृश्य चट्टानसे टक्कर खागया। एक क्षणमें जहाजमें कुहराम मच गया। चारों ओर कोलाहल छा गया। चारों ओरसे 'हाय प्राण गये, हाय प्राण गये' 'मरा' 'डूबा' की आवाजें आने लगीं। स्त्रियाँ बेहोश हो गईं। बच्चे घबरा घबरा कर रोने लगे। अनेक धार्मिक पुरुष ईश्वरको याद करने लगे—"हे सच्चिदानन्द जगद्बन्धु, भक्तभय-हरण प्रभु, तुमने गजको ग्राहसे, प्रह्लादको हिरण्यकशिपुसे बचाया था।

तुमने द्रोपदीकी लाज रक्खी थी। एक साधारण गजका भी दुःख तुमसे देखा न गया था और वैकुण्ठ छोड़ तत्क्षण गरुड़के ऊपर बैठकर उसके क्लेशविमोचनके लिए दौड़े आये थे। प्रभो यही अवसर है, तुम्हारे बिना हमारा दुःख और कौन हर सकता है?—

नैया नाथ! भँवरमें अटकी।

परन्तु किसीके किये कुछ न हुआ और बातकी बातमें वह जहाज उन सभी मुसाफ़िरों और उनकी हसरतों, सारी उमंगों, उद्वेगों, भावों और विचारोंके साथ सदाके लिए अनन्त जलराशिमें लोप हो गया! इतने आदमियोंकी एक हड्डी तकका भी पता न चला!

किसी नदीके किनारे, पहाड़ोंसे घिरा हुआ, प्रकृतिके निजके हाथोंसे सजाये हुए स्थानमें एक अति सुरम्य और उन्नत नगर बसा हुआ था। उसकी बहुत बड़ी आबादी थी और वह व्यापार वाणिज्यका केन्द्र था। लोग सुखी और शान्त स्वभावके थे और सर्वत्र शान्ति फैली हुई थी। यह नगर अति प्राचीन था, युगोंसे यह बढ़ और फैल रहा था। परन्तु अब यह बहुत काल तक शान्ति भोग चुका था, शायद इसी ख़्यालसे दैवने यहाँ ज्वालामुखीकी उत्पत्ति कर दी। जो पहाड़ इतने सुन्दर और प्राकृतिक सौन्दर्य्यके भांडार थे उन्हींमें अग्नि भड़क उठी। पहाड़ करकरा कर पिघलने लगे। आग और चट्टानोंकी गोलाबारी होने लगी और कुछ ही समयमें सारा नगर जल भुनकर खाक़ हो गया।

इस प्रकारके उदाहरण देकर कहाँ तक समय नष्ट किया जाय? *यदि संसारकी यंत्रणाओं पर, मनुष्यके शोकों पर, जीवोंके दुःखों पर ध्यान दिया जाय तो प्रतीत होगा कि दुःख और शोक सहनेके लिए ही मनुष्यका जन्म हुआ है। हम मृत्युहीके लिए पैदा हुए हैं। एक क्षण जीना मानों आयुमेंसे एक क्षण घटा लेनेके समान है।*

सहानुभूति-सम्पन्न करुणा-हृदय भगवान् बुद्ध सच कहते थे कि संसारमें सिवाय दुःख शोक और हिंसाके है ही क्या ! सच है—

हवा नहीं है यह नेचरकी सर्द आहें हैं।
सितारे कब हैं यह हसरतभरी निगाहें हैं॥

बिना हिंसा किये हम एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते। शास्त्रने सच कहा है कि *"जीवो जीवस्य जीवनम्।"* प्रत्येक श्वासमें और प्रत्येक घूँट जल पीनेमें हम असंख्य जीवोंका प्राण हरण करते हैं। जीवनप्रयास (Struggle for existence)का नियम बड़ा कठिन है। ***विचार किया जाय तो हमारे भोजनका हरएक नेवाला मांसका पिण्ड है और हमारे पानीका हर घूँट लहूके समान है।*** जब तक संसारमें एक भी भूखा है, तब तक क्या हमें भोजन करना शोभा देता है? जब तक एक भी मनुष्य वस्त्रहीन है, तबतक क्या ये रंग बिरंगके ऊनी और रेशमी कपड़े, तरह तरहके साटन और किमखाबके वस्त्र हमारे शरीरकी सुन्दरताको बढ़ानेके बदले उलटा इसे अपमानित नहीं करते ? परन्तु जीवनप्रयासका नियम ही ऐसा है। पशुसर्ग वनस्पतिसर्गको अपने काममें लाते हैं। पशुओंमें भी श्रेष्ठ पशु दुर्बलों पर ज़ुल्म करते हैं और अकसर उनके रक्तमांससे अपने शरीरमें रक्तमांस क़ायम रखते हैं। मनुष्य इन पशुओं पर अपना आधिपत्य जमाता है। वह उन्हें केवल शिकार करता और खाता ही नहीं है वरन् अन्य रीतिसे उन्हें अपने आरामका यन्त्र भी बनाता है। मनुष्योंमें भी बल बुद्धि और ज्ञानसे युक्त मनुष्य अपेक्षाकृत नीचे मनुष्योंको अपने सुखसाधनका हेतु समझते हैं। नाज किसान पैदा करता है; परन्तु पहले भूखा वही मरता है, उत्तम भोजन उसको ही नसीब नहीं होता। कपड़ा मजदूर ही बुनते हैं, पर जाड़ेमें उनहीको नंगा रहना पड़ता है। अतएव हमारे उपर्युक्त कथनमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं है कि हमारे

भोजनका हर एक नेवाला मांसके एक पिण्डके समान तथा हमारे पीनेका हर एक घूँट रक्तके सदृश है। अब जो बात व्यक्तिगत मनुष्योंकी है, अन्तर्जातीय दृष्टिसे देखनेसे जातियोंके साथ भी वही बात चरितार्थ होती है। जिस प्रकार नीचे और अपेक्षाकृत निकृष्ट मनुष्य बड़े और बुद्धिमान मनुष्योंके सुखका यन्त्र बनते हैं, वही हालत नीची जातियोंकी होती है। संसारकी प्राय: सभी आदिमनिवासी प्राचीन जातियाँ अब लोप होती जाती हैं और प्राय: हर एक नीची जाति ऊँची और सभ्य जातिकी कामधेनु बन रही है। प्राय: प्रत्येक अपक्षाकृत असभ्य देश सभ्य जातियोंकी रंगशाला बन रहा है।

संसारके दु:खोंको देखकर हम ईश्वरको दयावान् नहीं कह सकते।

इतने दु:खों, इतने क्लेशों, इतनी यन्त्रणाओंके मौजूद रहते भी क्या हम ईश्वरको न्यायशील, पक्षपातविहीन एवं दया और स्नेहका भाण्डार कह सकते हैं—*उस ईश्वरको जो भूत, भविष्य, वर्तमान सभीको जानता है, उस ईश्वरको जो सर्वशक्तिमान है?* हतभाग्य मनुष्यने उसका क्या बिगाड़ा था, जो उसने उसे जन्म दिया? परन्तु हमारे पाठक, क्रिस्तानोंके समान कह सकते हैं कि ईश्वरने मनुष्यको पूर्णत: स्वतन्त्र बनाया है। ईश्वर मनुष्यको दु:ख नहीं देता, वरन् वह अपनी मूर्खतासे अपने दुराचरणके कारण स्वयं दु:ख भोगता है। ईश्वर पर किसी प्रकारका अभियोग नहीं लगाया जा सकता। पाठक, मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान नहीं है? क्या प्रकृति, मनुष्य या समस्त सृष्टिका रचयिता ईश्वर नहीं है? उसने ऐसे मूर्ख मनुष्यकी रचना क्यों की थी कि उसे खाहमुखाह दु:ख हो तथा ऐसे संसारके मध्य ही उसने मनुष्यको क्यों रक्खा था? क्या वह मनुष्यके उपयुक्त

दूसरे प्रकारके संसारकी रचना न कर सकता था कि जिसमें मनुष्यकी सभी कामनायें पूर्ण हों और उसे कोई कष्ट न उठाना पड़े ? क्या ईश्वरकी बुद्धिका भाण्डार खाली हो गया था ? मनुष्यका हृदय इतना दुर्बल क्यों बनाया गया कि वह खाहमुखाह पापके पथमें पग देता है ? उसमें इतनी वासनायें क्यों भरी गईं ? इस पर भी मज़हब यह धमकी देता है कि ईश्वर मरणोपरान्त उससे अवश्य बदला लेगा । किसी आदमीके हाथ पैर बाँध कर उसे समुद्रमें डाल दिया जाय और इसपर भी उससे कैफ़ियत तलब की जाय कि तेरे कपड़े क्यों भीगे ? क्या ईश्वरका आचरण ठीक इसी प्रकारका नहीं है ? एक फारसीके कविने ठीक कहा है:—

दरमेआन क़ार दरिया तख़तः बन्दम कर्दई: ।
बाज़ मीगोईके दामन तर मकुन हुशियार बाश ॥

अनुमान करो कि कोई पिता अपने अबोध बालकको संखियेका एक डला खेलनेके हेतु दे देता है । बच्चा उसे पाकर अत्यन्त प्रसन्न होता है। वह उसके रंग पर मोहित हो जाता है, तथा उसे मिसरीका डला समझ कर चाटना आरम्भ करता है । क्षण मात्रमें हालाहल पैवस्त हो जाता है और बच्चेका मुखड़ा नीलवर्ण हो जाता है। उसके हाथ पैर और सारा शरीर ऐंठने लगता है; परन्तु तौ भी उसका पिता धीर और उदासीन ही रहता है । वह कहता है कि मैं बच्चेकी मृत्युका उत्तरदाता किसी प्रकार नहीं हो सकता । क्योंकि जहर खा कर बच्चेने अपने प्राण स्वयं दिये हैं । इसमें मेरा क्या दोष ? क्या परम पिता परमात्माको यह उत्तर शोभा देगा ? क्या मनुष्यको ईश्वरसे यह प्रश्न पूछनेका अधिकार नहीं है कि आपने मुझे जन्म क्यों दिया, और यदि जन्म भी दिया तो इतना दुर्बल क्यों बनाया ? इसपर इतनी वासनायें हमारे हृदयमें क्यों

भर दीं ? और यदि कामनायें उत्पन्न कीं, तो उन्हें पूर्ण क्यों न किया तथा जन्म देकर इतना दुःख क्यों दिया ?

मनुष्यको यंत्रणा पहुँचानेके सूक्ष्मातिसूक्ष्म उपाय।

अहा ! और मनुष्यको दुःख और यंत्रणा पहुँचानेके लिए उपाय भी कैसे कैसे किये गये हैं। कैसी कैसी व्याधियोंके और कैसे कैसे विषोंकी रचना की गई है। पुनः ये बीमारियाँ किस सुगमताके साथ—किन किन अदृष्ट रीतियोंके द्वारा अपना लक्ष्य बनाती हैं। बीमारीके कीड़े (Bacteria) भी किस चतुरता और बुद्धिमानीके साथ बनाये गये है। बारीकसे बारीक यन्त्रोंके द्वारा भी बाज़ दफ़ा इनका पता चलना बड़ा कठिन हो जाता है। तब बेचारा मनुष्य अपनी नंगी आँखों द्वारा इनसे कहाँ तक सतर्क रह सकता है। वायुके साथ, भोजनके साथ, या अन्य तरल पदार्थोंके साथ ये हमारे शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं और अपना भीषण कार्य्य आरम्भ कर देते हैं। और ये बढ़ते भी कितना जल्द है। एक अकेला कीड़ा (जीवाणु Bacteria) केवल बारह घंटेमे १६,८००,००० कीड़ोंकी उत्पत्ति कर सकता है ! *प्रकृतिको देखकर, संसारको देख कर, यदि कुछ स्पष्ट होता है, तो यही कि प्राणियोंके सुखकी अपेक्षा उनके दुःखका ही अधिक प्रबंध किया गया है*—मनुष्यके सुखी बनानेकी अपेक्षा उसके दुखी बनानेके लिए ही ईश्वरने अधिक प्रयत्न और परिश्रम किया है।

आप कहेंगे कि ईश्वर सब कुछ हमारी भलाईहीके लिए करता है। हमें जो अमङ्गल या बुराई देख पड़ती है वह भी यथार्थमें मंगल और भलाईहीके लिए है। पर *क्या ईश्वर सर्वशक्तिमान नहीं है ? सब कुछ सामर्थ्य रखते हुए भी वह निर्दयता और हिंसासे क्यों काम लेता*

है ? जो बात मनुष्यके लिए अन्यन्त निन्दनीय है, क्या वह ईश्वरके लिए उपयुक्त है ? अच्छा (ईश्वरके सर्वशक्तिमान होने पर भी) क्षण-भरके लिए मान लेते हैं कि ईश्वर कोई दूसरा प्रबंध न कर सकता था। इससे उत्तम प्रबन्ध करना उसके लिए असम्भव था। तब उसे *सृष्टिरचनाहीकी क्या आवश्यकता थी ?* क्या चुपचाप बैठे बैठे ईश्वरका जी उकता गया था ?

इसपर भी यह कहना कि जो कुछ होता है वह मनुष्यकी भलाई-हीके लिए होता है, उसको चिढ़ानेके तुल्य है। *मानों यह उसके ताजे जख्मोंपर नमक छिड़कना है।* मित्रो, दुखियोंके दुःखसे दुखित होओ—सहानुभूति-सम्पन्न होओ—हृदयको कठोर मत बनाओ।

दुःख और शोकके द्वारा ईश्वर संसारका मंगल करना चाहता है—इस विश्वाससे हमारा नैतिक चरित्र उन्नत नहीं हो सकता।

अच्छा, खैर मान लिया कि सब कुछ ईश्वरकी इच्छासे होता है। दुःख, शोक, हिंसा या अन्य सब बुराइयोंके द्वारा ईश्वर अच्छा करना चाहता है। तो क्या इस विश्वाससे हमारा कुछ उपकार होता है ? हमारी सदाचारबुद्धि बढ़ती है ? यदि ये सारी बुराइयाँ ईश्वरकी इच्छासे ही मौजूद हुई हैं और इनके द्वारा ईश्वर संसारका भला करना चाहता है *तो इसमें दखल देनेका—संसारके दुःख और संतापके कम करनेके निमित्त प्रयत्न करनेका हमें क्या अधिकार है ?* क्या ईश्वरकी इच्छाके विरुद्ध काम करना हमारे लिए मुनासिब है ? ईश्वर अनन्त है, सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान है। वह सब कुछ संसारके हितके लिए करता है। उसमें निर्दयता नहीं। *मनुष्यको शोक और संताप, दुःख और रोग उसके भावी मंगलके लिए मिलते हैं—इसमें ईश्वरका गूढ़ अर्थ छिपा हुआ है। अतएव हम किसीका*

क्लेशविमोचन क्यों करें ? हम रोगियोंकी चिकित्सा क्यों करें ? हम दुखियोंका शोक क्यों मेटें ? हम अनाथोंकी सहायता क्यों करें ? जब उनके ही भावी मंगलके लिए ईश्वर उन्हें रोगी और दुखी बनाता है, तब हम ईश्वरके कार्य्यमें क्यों हाथ डालें ? हमारा दख़ल देना उनकी सहायता करना नहीं, वरन् उनकी यथार्थ शत्रुता करना है।

अब आप स्वयं विचार कर सकते हैं कि ईश्वरमें हमें सदाचारके क्या क्या लक्षण मिलते हैं और क्या सदाचारव्रत धारणमें ईश्वर हमारा आदर्श हो सकता है ?

दुःख और शोककी समस्या पर मनुष्य बहुत दिनोंसे विचार करता आ रहा है। ईश्वरकी बातोंको वह अब तक नहीं समझ सका है।

निस्सन्देह जिस समयसे विचारने मनुष्यके जीमें अपना जन्म ग्रहण किया है उस समयसे ही ईश्वरके तरीक़े—खुदाकी खुदाई—मनुष्यके हृदयमें खटकने लगी है। ईश्वर न्यायशील है, कृपालु है, स्नेहपूर्ण है, तो भी उसके साम्राज्यमें इतना क्लेश क्यों है ? मनुष्यको इसका कोई उत्तर न मिला। ईश्वर न्यायी है, पर हर एक धर्मग्रन्थमें ऐसी अनेक कथायें मिलती हैं जिससे यह पता चलता है कि वह मनुष्य जिसने जीवनपर्य्यन्त दुष्कर्म किया है, दूसरोंका अनिष्ट किया है, केवल क्षण भरके लिए ईश्वरको याद कर हँसता हँसता वैकुण्ठमें गया है और वह मनुष्य जिसने कि अपना सारा जन्म सत्कर्मोंमें, संसारकी भलाईमें व्यतीत किया है, एक साधारण दोषके कारण अनन्त नरकमें भेज दिया गया है। *क्या ईश्वर ऐसा खुशामद-पसन्द है ?* स्वाभाविकतः ये सब प्रश्न मनुष्यके हृदयमें उठने लगे हैं। निसन्देह शुरूसे ही मनुष्यके सामने इससे और कोई बड़ी समस्या न थी और इसके हल करनेमें इतनी बुद्धि ख़र्च की गई है कि जितनी और किसी

काममें नहीं की गई। हर एक मज़हबने इसको हल किया है और अपना अपना मत दिया है। किसीने पुनर्जन्मका आविष्कार किया है, कोई कहता है कि ईश्वर अन्यायी नहीं, बिना अपराधके वह दण्ड नहीं देता, वे सभी पुरुष, स्त्री, बच्चे जो समुद्रमें डूब कर, ज्वालामुखीकी अग्निसे जल कर, अथवा दुर्भिक्षकी यन्त्रणाओंको सह कर या अन्य प्रकारसे मरे हैं, पापी थे। बहुतेरे मत इस समस्याका कोई उत्तर न पा कर हताश हो गये हैं और इसके हल करनेके श्रमको ही वृथा समझते हैं। ईश्वर अनन्त है, उसकी बुद्धि अनन्त है, मनुष्य परिमित है, उसकी बुद्धि छोटी है। वह ईश्वरकी निगूढ़ बातोंका पता कैसे लगा सकता है? क्या चिड़िया उड़ कर आकाशकी ऊँचाईका पता लगा सकती है? क्या सागरको गागरमें बन्द किया जा सकता है? परन्तु धर्मोंद्वारा इतने उत्तरोंके पाने पर—इस जटिल समस्या पर इतनी पुस्तकोंके लिखे जाने पर भी आजतक मनुष्य संतुष्ट नहीं हुआ है। शंकाकी अग्नि अब तक नहीं बुझ सकी है और वह अबतक नित्य प्रति हाथ जोड़ कर भक्तिभरे भावसे ईश्वरके सामने निम्नलिखित भजन गाया करता है और इस समस्याका उत्तर चाहता है—

दयानिधि तेरी गति लखि न परे।
धनते धर्म धरमते अधरम, अकरम कर्म करे॥ दयानिधि०
पिता वचन मैटे सोइ पापी, सो प्रह्लाद करे।
ताको बन्दि छुड़ावनको प्रभु, नरसिंहरूप धरे॥ दया०॥
एक गऊ जो देत विप्रको, सो सुरलोक तरे,
कोटिन गउ राजा नृग दीन्हीं, गिरगिट होइ कूप परे॥दयानिधि॥
गुरु वसिष्ठ अति ही गुनआगर, रुचि रुचि लग्न धरे।
सीता हरन मरन दसरथको, विपतिमें विपति परे॥ दयानिधि०॥

वेदविदित तेरो जस गावै, सो बलि यज्ञ करे।
ताको बांधि पताल पठायो, कैसे सूर तरे॥ दयानिधि०।

अतएव धर्मका उद्देश्य इस ईश्वरको प्रसन्न करना है न कि मनुष्यको सच्चरित्र बनाना। चाहे हम मुँहसे कुछ कहें, साधारण मनुष्यके हृदयमें ईश्वरके नामसे भयका ही संचार होता है, प्रेमका नहीं। वह ईश्वरकी बातोंको नहीं समझ सकता। उसे ईश्वर दयालु नहीं वरन् भयानक प्रतीत होता है। *परन्तु वह अपने भावोंको प्रकट* नहीं कर सकता—*शायद ईश्वरको इससे और भी बुरा लगे।*

साधारण मनुष्य ईश्वरको कैसा समझता है।

खुदा हरचे खाहद कुनद बन्दः बाश।
रज़ां पेश गीर वो सर अफगन्दः बाश।

अर्थात्—ईश्वर जो चाहे करे, तू उसका भृत्य बना रह। उसकी इच्छाको शिरोधार्य कर और गर्दन झुकाये रह।

ईश्वर चंगेज़, नादिर तथा तैमूरके समान अत्याचारी है और वह स्पष्ट बात कदापि नहीं सह सकता। इसीलिए मज़हबी लोग हब्शी गुलामोंसे भी अधिक भीरु और कापुरुष होते हैं। क्योंकि जालिम आदमीको खुशामद और चुपचापे आज्ञापालनसे अधिक और कुछ पसन्द नहीं आता। ईश्वर किसी प्रकारके अभिमानको बर्दाश्त नहीं कर सकता। उसका नाम ही गर्व-प्रहारी है। लाखों बरस भी कोई ईश्वरकी सेवा क्यों न करे, पर ज़रासे अभिमानसे सम्पूर्ण नाश हो जाता है। क्योंकि—

यह विश्वास मनुष्यको भीरु और कापुरुष बनाता है।

गया शैतान मारा एक सिजदेके न करनेमें।
अगर लाखों बरस सिजदेमें सर मारा तो क्या मारा॥

सूरदासने सच ही कहा है। ईश्वरकी रीतियाँ ही निराली हैं। ईश्वर पर भरोसा नहीं किया जा सकता। हम नहीं कह सकते कि वह कब और कौनसे कार्य्योंसे प्रसन्न होता है और कब और कौनसे कार्योंसे अप्रसन्न। ईश्वरमें कोई नियमाधीनता या स्थिरता नहीं है। इसी लिए मजहबी आदमी एक पतित भृत्यके समान बन कर ईश्वरकी खुशामद करने लगता है और अपने अन्तःकरणमें उसे निष्ठुर और निर्दय समझ कर भी दयालु करुणासिन्धु कहता है। वह इस प्रकार प्रार्थना करता है (और सिवाय इसके वह कर भी क्या सकता है?) कि—

"हे प्रभो मैं पतितन सरदार।"
"हकीकतमें बन्दा गुनहगार है, जो चाहो सजा दो सज़ावार है।"
"पापोहम् पापकर्माहम् पापात्मा पापसम्भवः।
त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरो मम॥"
"नहिं विद्या नहिं बाहुबल, नहिं खरचेको दाम।
ऐसे पतित अपंगुकी, पत राखहिं श्रीराम॥"
"मेरे अघ शारद अनेक युग, गनत पार नहिं पावै।
तुलसी पतित पतितपावन प्रभु, यह भरोस जिय आवै॥"

गरज दीन बन कर, हीन बन कर, कायर कापुरुष बन कर, अधम और पापी बन कर, अपने मनुष्यत्व और गौरवको नष्ट कर वह ईश्वरके सामने कंगालके समान भिक्षाका प्रार्थी बनता है। आईनके अनुसार प्रति सभ्य देशसे गुलामीकी प्रथा उठा दी गई है, परन्तु न जाने लोग यह खुदाकी गुलामी करना कब छोड़ेंगे! उदाहरण कहाँ तक दिये जायँ। धर्मग्रन्थोंको छोड़िए, भक्तिपथका कोई भी ऐसा प्रचालित गीत न निकलेगा, जिसमें यह भाव न भरा हो। वे साधारण भजन भी जिन्हें लड़के बाजारों बाजार गाते फिरते हैं इन्हीं विचारोंसे परिपूर्ण हैं। प्रायः हर

एक भक्त भारतवर्षके आधुनिक मंगतोंके समान ईश्वरके साथ ज़िद्द करता है। वह कहता है कि "चाहे तू मुझे मार या डाँट, जो तेरी इच्छा हो, कर डाल; परन्तु मैं तुझे छोड़नेवाला नहीं।" धन्य हैं लाखोंमें एक श्रीरामकृष्णके समान महात्मा, जिनका ईश्वर सर्वस्व प्रेम होता है और जो अपना सर्वस्व ईश्वरको समर्पण कर डालते हैं। ईश्वर जिनका मालिक नहीं बल्कि सखा, मित्र या भाई होता है। नहीं नहीं, जो सब कुछ ईश्वरको समर्पण कर स्वयं ईश्वर हो जाते हैं। जो कालीको पहराई जानेवाली मालाओंको पहले स्वयं पहिन कर देख लेते हैं कि सुन्दर लगती है या नहीं, जो सेवरीकी तरह ईश्वरके नेवैद्यको पहले स्वयं खाकर देख लेते हैं कि सुस्वादु है या नहीं। परन्तु ऐसे महात्मा विरले हैं और हर एक धर्मके इतिहासमें शायद ऐसे महानुभाव दो चारसे अधिक न निकलेंगे। और हम उन्हें मज़हबी कह भी नहीं सकते, क्योंकि ऐसे महात्मा किसी मजहबके अक्षरश: भृत्य कभी नहीं होते। वे मजहबके प्रत्येक आदेशको कभी नहीं मानते।

परन्तु *साधारण आदमीका ईश्वर ज़िद्दी, ज़ालिम और अस्थिरचित्त होता है और मजहबका उद्देश उसी ईश्वरको प्रसन्न करना है। इसलिए मज़हबके लिए सदाचारकी अपेक्षा व्रत उपवास पूजा और पाठ अधिक आवश्यकीय हैं।* यदि कभी सत्यका उल्लघंन हो जाय तो कोई हर्ज नहीं, ईश्वर दयालु है क्षमा कर देगा; परन्तु खाद्याखाद्यके नियमका कभी उल्लघंन नहीं होना चाहिए। स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, परिवार तथा मनुष्य जातिके साथ हमारा जो कर्त्तव्य है उसमें त्रुटि हो जानेमें कोई क्षति नहीं; परन्तु नीच जातिका छुआ हुआ जल नहीं पीना चाहिए। जब नामकी महिमा अपार है, तब सदाचार, ज्ञान, धर्म, कर्म इत्यादिके बखेड़ेमें कौन फँसे?

को करि तर्क बढ़ावे साखा ।
होइहै वहि जो राम रचि राखा ॥

आओ किसी कोनेमें बैठ जायँ, हाथमें माला ले कर राम राम जपा करें। बस बेड़ा पार है। और अब तो तिब्बतके लामाने माला जपनेके कामको भी सहज बना डाला है। उन्होंने एक यंत्रका आविष्कार किया है जिसके द्वारा माला हाथकी अपेक्षा अधिक सुगमता और शीघ्रताके साथ जपी जा सकती है !

मज़हब और सदाचारका क्षेत्र पृथक् है। वास्तवमें यदि विचारकी दृष्टिसे देखा जाय तो यह समझमेंही नहीं आता कि हमारे दिन रात राम राम रटनेसे, केदार-बदरिकाभ्रमणसे, एकादशीके दिन भूखे रहनेसे, रविवारके दिन तेल न लगानेसे, शनिवारको हजामत न बनानेसे, अमुक वस्तुके न खानेसे, या अमुकका छुआ हुआ जल न पीनेसे (शायद हमारा कुछ भला होता हो) संसारको क्या लाभ पहुँचता है? मज़हबी आदमी यह नहीं चाहता कि उसका जीवन सत्कर्ममें समाप्त हो जाय। नहीं नहीं, उसकी कामना दूसरी होती है। वह कहता है:—

मदीने जाऊँ मदीनेसे लौट कर आऊँ,
इलाही उम्र इसीमें तमाम हो जाये ॥

तेरहवाँ अध्याय ।

मज़हब और सदाचार ।

४–मनुष्यके हृदय पर मज़हबका प्रभाव ।

मज़हबोंका सार ईश्वरसे प्यार और मनुष्योंसे घृणा करना है ।

यदि पक्षपात छोड़ कर देखा जाय तो यह सिद्ध हो जायगा कि हमारी बुद्धि और हृदय पर मज़हबका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है । यह सच है कि मज़हब आदमीको एकताके सूत्रमें गाँथता है । साधारण विपत्तिके आ पड़ने पर—मज़हबकी पुकार सुनने पर—सारे सधर्मी श्रीकृष्णकी बाँसुरीके द्वारा मुग्ध गोपियोंके समान इकट्ठे हो जाते हैं। एक सहधर्मीके समीप उसका दूसरा सहधर्मी भाईसे भी अधिक प्यारा होता है । परन्तु इसके साथ ही मज़हब इसी दर्जेका भेद और द्वेष भी पैदा करता है । क्रिश्चियनोंकी कुल सहानुभूति केवल क्रिस्तानोंहीके साथ है, और सो भी उन्हीं क्रिस्तानोंके साथ है जो उन्हींके गिरजेके अधीन हैं । मुसलमान हिन्दूको कुत्तेसे भी अधिक घृणित समझता है, उसके लिए 'हिन्दू' शब्द ही अपमानसूचक है । हिन्दू अन्य जातियोंको केवल घृणाहीकी दृष्टिसे नहीं देखता, बल्कि उनका छुआ हुआ जल तक नहीं पीता । जरा ध्यान देकर देखोगे तो मालूम होगा कि'जेन्टाईल' (Gentile), 'हिथेन' (Heathen), 'काफिर,' 'यवन,' 'म्लेच्छ' इत्यादि शब्दोंमें कितनी निष्ठुरता, और कितनी घृणा भरी हुई है ! दूरदर्शी दयालु वाल्टेअर

(Voltair) ने क्या ही सत्य कहा है कि *"ईश्वरको प्यार करना और मनुष्यसे घृणा करना ही शायद सब धर्मोंके सिद्धान्तोंका सार है।"*

जाके प्रिय न राम वैदेही ।
सो छाँड़िये कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही॥

सहानुभूतिका विनाश ।

लोगोंने एक हाथमें कुरान या बाइबल और दूसरे हाथमें खड्ग लेकर धर्मका प्रचार किया है। दयाके स्थान पर रक्तपात किया है। । अहिंसाके स्थान पर देश विजय किये हैं। एक धर्मके अनुयायीके नजदीक अन्यधर्मावलम्बी सभी मनुष्य नरकके भागी हैं। नरकाग्निकी भयानक रोशनीको छोड़ कर स्वर्गकी सुन्दर आभा मज़हबी लोगोंके हृदय पर कभी नहीं पड़ती। उसी नरकाग्निके प्रकाशमें वे अपने धर्मग्रन्थोंको बाँचते हैं, और उसीके सामने बैठकर अपने हाथोंको सेंकते हैं। केवल यही एक बात यथेष्ट रीतिसे सिद्ध कर देती है कि हमारी सहानुभूति और हमारी बुद्धि पर मज़हबका कैसा प्रभाव पड़ता है। मज़हबके तापसे हमारी सहानुभूतिका शीतल और शान्तिप्रद स्रोत सदाके लिए शुष्क हो जाता है। गंगाका पवित्र तट सहारेका मरुस्थल बन जाता है। जहाँ मृदुल मलयानिल बहता था वहाँ

परलोककी धमकी ।

लू चलने लगती है। आरामकी जगह श्मशान उपस्थित हो जाता है। अहा ! किस शीघ्रताके साथ एक मतका आदमी अन्य मतके लोगोंको जहन्नुममें भेजता है, एवं यह सोच कर कि अन्य सभी मतवाले जहन्नुममें जायँगे उसे कितनी प्रसन्नता होती है। किस पैशाचिक प्रसन्नताके साथ, किस दमदमाते हुए चेहरेसे, किस जोशके साथ वह नरकका सम्पूर्ण चित्र खींचता है और वहाँकी यन्त्रणाओंका वर्णन करता है। मज़हब लोगोंको यथार्थ

मनुष्य नहीं वरन् पिशाच, प्रह्लाद नहीं वरन् हिरण्यकश्यपु बनाता है। बलिहारी है मज़हबी लोगोंके हृदयकी ! अजी हज़रात, क्या नरकके दारोगा आप ही लोग हैं ? मोछों पर ताव देकर किस गर्व और तानेके साथ एक मज़हबी आदमी अन्य धर्मावलम्बी भाइयोंके प्रति बातचीत करता है ! वह कहता है—

जो अपराध भक्तकर करई।
राम-रोष-पावक सो जरई॥

अथवा—

"ऐ मनुष्य, तू कितना ही चतुर क्यों न हो, परन्तु ईश्वरके साथ तेरी चतुराई नहीं चल सकती। तेरे गुप्तसे गुप्त पाप ईश्वरसे छिपे नहीं रह सकते। तेरे सभी कर्म तेरे नाम-ए-अमालमें—खुदाके रजिस्टरमें—लिखे जाते हैं, एक भी बात नहीं छूट सकती। खुदा न्यायी है। सज़ा देनेमें वह किसी प्रकार भी कुण्ठित नहीं होता। यथोचित दण्ड देनेमें ईश्वरको दुःख नहीं बल्कि प्रसन्नता होती है। ईश्वरकी दया भी तुझे ईश्वरकी सज़ासे नहीं बचा सकती। ईश्वर अपने स्वभावको, अपने न्यायको, किस प्रकार छोड़ सकता ह ?" एकोआइनस (Equinas) जोनाथेन एडवार्डस (Jonathen Edwards)के समान बड़े बड़े धर्म-दिग्गज, पापियोंकी यंत्रणाओंको पुण्यात्माओंके सुखका कारण समझते थे और अभी कुछ ही समय पहले टाइम्सके (Times) एक लेखकने भी क्रिश्चियन मतके इस सिद्धान्तको बड़े जोरोंसे समर्थन किया है। (देखो ९ अगस्त, सन् १९०५का टाइम्स।) उसने कहा है कि पापियोंको अनन्त दण्ड देनेसे ईश्वरका गौरव बढ़ता है। *

---

* देखो Ethics by Dr. Saleeby P. 39.

बाइबलमें स्वयं ईश्वर कहता है कि मैं उन्हें अपने क्रोधसे भस्म कर डालूँगा और इससे मुझे तृप्ति होगी। ("I will cause my fury to rest upon

ईसाई देशोंसे इस प्रकारके और भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं; परन्तु इसकी कोई आवश्यकता नहीं देख पड़ती और शायद वे पाठकोंको रोचक भी प्रतीत न होंगे । सेंट जॉन, सेंट पॉल, टर्टूलियन, पीटर लोम्बार्ड आदि बड़ेबड़े धर्मदिग्गज भी कहते थे कि परलोकमें मजहबी लोगोंको स्वर्गका पूर्ण आनन्द तो निस्सन्देह प्राप्त होगा; परन्तु स्वर्गसे भी अधिक आनन्द उन्हें अपने मजहबके न माननेवालों तथा उनकी बातोंके उल्लंघन करनेवालोंकी यन्त्रणाको देख कर होगा । और तर्क करनेवाले दार्शनिकों तथा ज्ञानगर्वसे चूर विद्वानोंको धधकती हुई अग्निके मध्य देख कर तो वे फूले भी न समायँगे ।

क्या कोई मनुष्य जिसमें तनिक भी मनुष्यत्व, तनिक भी सहृदयता है वह अपने असंख्य भाइयोंको नरकमें भेज सकता है ? वह ऐसे स्वर्ग पर लात मारेगा जिसका द्वार केवल किसी सम्प्रदाय विशेषके लिए खुला हुआ है और स्वयं प्रसन्नवदन हँसता हुआ अनन्त नरककी अग्निमें प्रवेश करेगा; साथ ही अपने असंख्य भाइयोंके साथ रहने और उनके दुःखमें भाग लेनेके कारण वह अग्नि उसे चमेलीके बाग जैसी प्रतीत होगी । अकेला एक मनुष्य या एक सम्प्रदाय स्वर्गका सुख लूटे और समस्त मनुष्यजाति अनन्त नरकमें जले, इससे अधिक स्वार्थपरता, इससे अधिक पशुत्व, इससे अधिक पैशाचिकता और क्या हो सकती है !

---

them and I will be comforted"—Ezak. V, 13) तुम्हारे दुःखोंको देख कर मैं अट्टहास करूँगा । (I also will laugh at your calamity. Prov. I,26.)

घनघोरसे घनघोर समर, भीषणसे भीषण लड़ाइया मज़हबहीके कारण उपस्थित हुई हैं। मज़हबहीकी प्रेरणासे मनुष्यने मनुष्यको पैशाचिक यन्त्रणायें दी हैं, और स्वयं भी सही हैं। मज़हबहीने मनुष्यको मनुष्यके विरुद्ध, कुटुम्बको कुटुम्बके विरुद्ध, जातिको जातिके विरुद्ध, और देशको देशके विरुद्ध खड़ा किया है। रक्तका महासागर बहाया है तथा संसारको दुखियोंके रुदन और कोलाहलसे परिपूर्ण कर दिया है। *संसारका इतिहास धर्मोन्मादका इतिहास ह।*

मज़हब-जनित भेद भाव।

यों तो सभी मज़हबोंके हाथों बड़े बड़े अत्याचार हुए हैं और सुख शान्तिकी हत्या हुई है, पर हम जहाँ तक समझते हैं शायद ईसाई मज़हबसे अधिक रक्तपात और किसी मज़हबने नहीं किया है। अतएव यहाँ पर ईसाई मज़हबके अत्याचारोंका थोड़ासा उल्लेख पाठकोंको अरुचिकर प्रतीत न होगा। अत्याचारकी प्रधान संस्था इन्क्वीज़ीशन (Inquisition) थी। इसीसे हम अपना वक्तव्य आरम्भ करते हैं। इन्क्वीजीशन एक प्रकारकी अदालत थी। इसके विचारपति ईसाई साधु होते थे। यह किसी दूसरी कचहरीके अधीन न थी। यह सभी कचहरियोंसे ऊँची थी और इसके फ़सले पर कोई अपील न हो सकती थी। रोमन कैथोलिक मतके न माननेवालोंको, उसमें या उसके किसी भी विषयमें शंका करनेवालोंको, या पोपकी आज्ञाओंके पालनमें आगा पीछा करनेवालोंको दण्ड देना ही इसका मुख्य काम था। इस संस्थाको पाप-निवेदन (Confession) की संस्थासे बड़ी सहायता मिलती थी। प्रत्येक ईसाईके लिए पादरीके समीप अपने सभी दोषों अपराधों तथा गुप्तसे गुप्त बातोंको प्रकाशित करना

ईसाई अत्याचार—इन्क्वीज़ीशनका वर्णन-

अनिवार्य्य था। अतः इन्क्वीजीशनने इस संस्थाके द्वारा एक प्रकारसे सर्वज्ञता और सर्व-व्यापिता लाभ कर ली थी। कोई आदमी निरापद न था। पादरी इस पाप-निवेदनके द्वारा स्त्री, पुत्र, पुत्री, तथा दास दासियोंसे प्रायः प्रत्येक मनुष्यके सम्बन्धमें हर तरहकी बातें जान लेते थे। अर्थात् उस मनुष्यकी स्त्री, पुत्र या पुत्री एक प्रकारसे पादरियोंकी जासूस बन कर उसके सर्वनाशका कारण होती थी। इन्क्वीजीशन सिर्फ़ कार्य्योंके लिए नहीं, वरन् विचारोंके लिए भी सज़ा देता था। इसकी कार्यवाही अत्यन्त सरल थी। जरासा शक होने पर भी मनुष्य फ़ौरन गिरफ्तार कर लिया जाता था और जब तक अपराध स्वीकार न कर लेता तबने उसे नाना प्रकारके कष्ट दिये जाते थे। क़ैदीको कब तक कष्ट भुगताना पड़ेगा, इसके लिए कोई निश्चित समय न था। अपराध स्वीकार करने ही पर इन यंत्रणाओंसे छुटकारा मिल सकता था। किसी मनुष्यको कारागारमें भेजनेके लिए दो गवाहोंकी गवाही काफ़ी होती थी। ये दोनों गवाह दो बातोंके भी हो सकते थे। यानी किसी दूसरे गवाहके द्वारा किसी गवाहका साक्ष्य-समर्थन अनावश्यक अनुमान किया जाता था। कारागारमें क़ैदीको बहुत कम भोजन दिया जाता था और किसीसे बातचीत करनेकी भी उसे मनाही रहती थी। कुछ दिनों तक पीड़ा सहनेके बाद उसकी फिर जाँच की जाती थी। यथार्थमें निर्दोष होने पर भी यदि वह अपना अपराध स्वीकार कर लेता और अविश्वासको परित्याग कर देता, तो उसकी सारी सम्पत्ति हरण कर ली जाती थी और वह छोड़ दिया जाता था। परन्तु दृढ़ रहने पर—अपनेको निर्दोष बतलाने पर—यदि दो गवाह होते तो उसे स्टेक (Stake)* में बाँधे जानेका और यदि एक ही गवाह होता तो उसे

* 'स्टेक' उस खूँटेको कहते थे कि जिसमें बाँध कर लोग जीवित जलाये जाते थे।

रैक(Rack)×के समीप भेज दिये जानेका फैसला सुनाया जाता था। अभियुक्तको यह बतला दिया जाता था कि उसके खिलाफ़में कौन कौन और कितने सुबूत हैं, परन्तु गवाहोंसे उसका साक्षात् कभी न कराया जाता था और न उसे अपनी निरपराधता साबित करनेका मौका दिया जाता था। उत्पीड़नके द्वारा ही अभियुक्तका न्याय होता था। भयानक कारागारमें, मशालोंके धुँधले प्रकाशमें, अर्द्ध रात्रिके समय, अभियुक्तसे अपराध स्वीकार करानेका कार्य्य आरम्भ किया जाता था। अभियुक्त—चाहे वह पुरुष हो या कोई प्रौढ़ा या कोमलांगी कुमारी—नंगा कर दिया जाता था। उसके सभी वस्त्र उतार लिये जाते थे और वह लकड़ीके बेंच पर लेटा दिया जाता था। फिर ऐसे ऐसे यंत्रोंका प्रयोग किया जाता था कि जिनसे अभियुक्तके शरीरकी समस्त रगें खूब खिंच जाय और उसकी हड्डियोंमें खूब चोट पहुँच जाय; परन्तु वे टूटें नहीं। जल्लाद—जो साधुओंके उर्वर मस्तिष्कसे निकले हुए नाना प्रकारके यंत्रणा पहुँचानेवाले यंत्रोंका*व्यवहार

×'रैक' यंत्रणा पहुँचानेका एक प्रकारका यंत्र था। इसके द्वारा अभियुक्तके अवयव खींचे जाते थे यहाँ तक कि वे कभी कभी उखड़ भी जाते थे। इससे कितनी यंत्रणा होती होगी यह अनुमान करना भी कठिन है। इसीसे 'रैक' अँगरेजीमें अत्यन्त पीड़ाका एक पर्य्यायशब्द हो गया है।

* केवल रैक ही नहीं, मनुष्यको यंत्रणा पहुँचानेके लिए इसके अतिरिक्त और भी अनेक यंत्रोंका आविष्कार हुआ था। यहाँ पर तीन यंत्रोंका संक्षिप्त वर्णन दिया जाता है। १–थम्ब स्क्रू (thumb screw) यंत्र लोहेके दो टुकड़ोंका बना होता था। इसके भीतरी भागमें दो चार फोड़ेसे उठे हुए मुकाम होते थे। लोहेके इन दोनों टुकड़ोंके सिरोंपर पेंच लगे रहते थे। अविश्वासीकी उंगलीमें इस यंत्रको पहरा कर इसके दोनों सिरोंका पेंच बहुत सख्तीसे कस दिया जाता था। दर्दसे बेचैन होकर निरपराधी मनुष्य भी अपने अपराधको स्वीकार कर लेता था और इस तरह प्राण देकर दुःखसे मुक्त होता था।

करता था तथा साधुओंके कथनानुसार अन्य रीतियोंसे भी अपराधियोंको दुःख पहुँचाता था—ऊपरसे नीचेतक काले कपड़ेसे ढँका होता था। उसका मुँह भी काल कपड़ेसे छिपा रहता था। केवल उस कपड़ेके दो छिद्रोंमेंसे उसकी दो आँखें नज़र आती थीं जो इस भयानक दृश्यको और भी भीषण बना देती थी।

इस प्रकार कैदीको कितने दिनोंतक यंत्रणा सहनी पड़ेगी, इसके लिए कोई निश्चित समय न था।

बिना अपराध स्वीकार किये इससे छुटकारा नहीं था। और छुटकारा भी किस प्रकारका? क्या अपराध स्वीकार करने पर अभियुक्त स्वतंत्रता लाभ कर सकता था? नहीं, मृत्युके द्वारा ही वह इन पैशाचिक यंत्रणाओंसे निस्तार लाभ करता था। क्योंकि अपराध स्वीकार कर लेने पर उसको फाँसीका हुक्म दे दिया जाता था। इन्क्वीजीशनका

२–कॉलर ऑफ टॉरचर (Collar of Torture) एक दूसरा भीषण यंत्र था। एक कंठहारमें सैकड़ों सूइयाँ टकी होती थीं। यह कॉलर अविश्वासीके गर्दनमें पहराया जाता था और इसका नतीजा यह होता था कि मनुष्य उठने बैठने चलने फिरनेसे मजबूर हो जाता था। अंगके जरा भी हिलानेसे सूइयाँ चुभने लग जाती थीं। कुछ समयके बाद उसकी गर्दन सूज जाती थी और उसका दम घुटने लगता था। इसी प्रकार कुछ समयके बाद श्वास बन्द हो जानेके कारण उसकी मृत्यु हो जाती थी।

३–स्कैवेंजर्स डौटर (Scavenger's daughter) नामका यंत्र कैंचीके सदृश होता था। इसके दोनों सिरोंपर दस्ते होते थे और बीच में धारोंको एक दूसरेसे मिलानेवाले पेंचके कुछ ऊपर एक चक्र होता था। ऊपरके दस्तोंमें अभियुक्तके दोनों हाथ और नीचेके दस्तोंमें उसके दोनों पैर डाल कर कस दिये जाते थे। तत्पश्चात् अपराधीका सिर जबरदस्ती बीचवाले चक्रमें डाल दिया जाता था। इसी अवस्थामें झुका हुआ वह बहुत समयके लिए छोड़ दिया जाता था। यहाँ तक कि दुःख और क्लेशसे मनुष्य पागल हो जाता था।

प्रधान ऐतिहासिक लिखता है कि लोगोंने पन्द्रह पन्द्रह वर्ष पर्य्यन्त यंत्रणायें सही हैं और अन्तमें वे स्टेकमें बाँधकर जला दिये गये हैं।

कैदी एक एक दो दो करके तुरत न जलाये जाते थे। बल्कि जब यह देखा जाता कि उनकी संख्या अधिक हो गई है तब उनके वधके लिए एक दिन निश्चित किया जाता था और इस दिन समस्त लोग त्योहार मनाते थे। लोग खुशी मनाते और तमाशा देखनके लिए उत्सुकता प्रकट करते थे। स्वयं बादशाह भी अपने पूर्ण ऐश्वर्य्य और वैभवके साथ इस अवसरको सुशोभित करते थे। निश्चित दिनको मनुष्य कैदखानेसे बाहर निकाले जाते और उन्हें पीत वर्णका अँगरखा पहिनाया जाता था। यह अँगरखा बिना आस्तीनोंका होता था। समस्त वस्त्रमें शैतान और भूतोंके काले काले चित्र बने होते थे। एक बहुत ऊँची टोपी—जो नीचेसे त्रिकोणाकार और ऊपरसे नुकीली होती थी—उनके सर पर रक्खी जाती थी। टोपीके ऊपर अग्निमें जलते हुए एक मनुष्यका और अग्निके चारों ओर उस मनुष्यको घेरे हुए भूतोंके चित्र अङ्कित होते थे। तब अपराधियोंमेंसे प्रत्येककी जिह्वा बड़ी दृढ़ताके साथ कस कर बाँध दी जाती थी जिससे वह न तो अपना मुँह पूरे तौरसे बन्द ही कर सकता और न खोल ही सकता था। तत्पश्चात् भोजनोंसे भरे हुए थाल उनके सामने लाये जाते थे और व्यंगपूर्वक उनसे अपनी जठराग्नि शान्त करनेके लिए अनुरोध किया जाता था। बड़ी धूमधामके साथ कैदीगण जलाये जानेके स्थान पर पहुँचाये जाते थे। जलूसमें सबसे पहले छोटे बच्चे होते थे और उसके बाद उपर्युक्त वेशमें कैदी। इनके पीछे हाकिम, उच्चकुलसम्भूत रईस, अमीर और गिरजेके प्रधान पदाधिकारी और पादरी होते थे। सबके पीछे अपने अमलों और कर्मचारियोंके साथ घोड़ों पर सवार इन्क्वीजीशनके पवित्र जज-

होते थे। इनके सरपर इन्क्वीजीशनका लाल फरेरा उड़ता था। इस सज्जित समारोहके पीछे लोगोंकी भीड़ होती थी। जब सब लोग इच्छित स्थान पर पहुँच जाते और कतार बाँध कर खड़े हो जाते थे तब प्रधान पादरी व्याख्यान देना आरम्भ करता था। इन्क्वीजीशनकी प्रशंसा की जाती थी और क़ैदियोंको गालियाँ सुनाई जाती थीं। इसके पश्चात् पादरी लोग एक मज़हबी भजन आरम्भ करते थे जिसे समस्त लोग एक साथ गाने लगते थे। भीषण कोलाहल उपस्थित होता था। यदि कैदियोंमें कोई अविश्वासी पादरी होता तो उससे उसका धार्मिक लिबास छीन लिया जाता और उसका मुड़ा हुआ सर, उसके हाथ और ओष्ठ, शीशेके टुकड़ेसे खरोंच डाले जाते थे। तत्पश्चात् वह साधारण आदमियोंमें ढकेल दिया जाता था। प्रत्येक क़ैदीको एक चबूतरे पर चढ़ना पड़ता था जहाँ कि जल्लाद उसे धधकती हुई अग्निमें डालनेके निमित्त प्रस्तुत रहते थे। इसी स्थान पर इन्क्वीजीशनका जज कैदियोंको जल्लादोंके हवाले करता था। जो कैदी अन्तिम समय तक दृढ़ रहते थे वे तो जीवित अग्निमें जला दिये जाते थे; परन्तु उन क़ैदियोंको—जो इस असह्य यातनासे भय खा कर अन्तिम समय अपने स्वतंत्र विचारोंको छोड़ कर अपनेको दोषी मान लेते थे—पहले गला दबा कर मार डाला जाता था और इसके बाद उनका शव अग्निमें डाल दिया जाता था।*

अब इस बातपर भी विचार कीजिए कि किन किन अपराधोंके लिए लोगोंके प्रति ऐसा कठोर व्यवहार किया जाता था। बाइबल या उसके किसी अंशको किसी भी भाषामें पढ़ना मना था। पादरियोंको छोड़कर

देखो Moteby " Dutch Republic Routledge" 1899 Part II Chapter III.

साधारण मनुष्योंको इसके पढ़नेका बिल्कुल अधिकार नहीं था। (हमारे यहाँकी अवस्था भी अबतक कुछ कुछ ऐसीही है। ब्राह्मणोंने यह अबतक भी स्वीकार नहीं किया है कि साधारण मनुष्य भी धर्मग्रन्थोंको पढ़ सकते हैं या धार्मिक पुस्तकोंको सब कोई पढ़ सकता है।) मज़हब पर या पोपकी आज्ञाओं पर तर्कवितर्क करना भी बड़ा भारी अपराध था। मनुष्योंका कर्तव्य केवल आज्ञापालन करनेका था। मज़हबमें कोई स्वतंत्रता न थी। गिरजेमें न जाकर घरमें ही ईश्वरकी आराधना करना भी अक्षम्य दोष था जिसके लिए परिवारके परिवार—अबोध बच्चे तक —जीते जलाये जाते थे। कुछ धार्मिक भजनोंकी नकल करनेके कारण एक मनुष्यका शरीर उसकी स्त्रीके सामने एक मैथली तलवारसे टुकड़े टुकड़े किया गया था। प्रचलित मज़हबमें अविश्वास करनेवाले एक और मनुष्यकी कथा सुनिए। विश्वके सारे शैतान और राक्षसगण भी एकत्र होकर कदाचित् इससे उत्तम दण्ड न सोच सकते। वह मनुष्य घसीट कर बाज़ारमें पहुँचाया गया, उसके मुँहको खुला रखनेके लिए उसमें लोहेका एक यंत्र दे दिया गया। दो तप्त और अग्निके समान लाल लोहेके यंत्रोंके बीचमें रखकर उसका दायाँ हाथ और पैर मरोड़ा और जलाया गया। तब जड़से उसकी जिह्वा खींच ली गई। तब भी उस मनुष्यने ईश्वरका नाम उच्चारण करनेकी चेष्टाको न छोड़ा। इसलिए उसे और भी मूक बनानेके निमित्त वह लोहेका यंत्र पुनः उसके मुँहमें दे दिया गया। तब उसके हाथ और पैर मिलाकर पीठके तरफ़ बाँध दिये गये। इसके बाद अपने शरीरके ठीक मध्य भागसे वह एक लोहेकी ज़ंजीरके सहारे लटका दिया गया। नीचे धीमी धीमी आग जल रही थी। एक आदमी उस ज़ंजीरके हिलानेके लिए नियुक्त किया गया। इस प्रकार शनैः शनैः उस मनुष्यको

सिझा कर उसका कबाब बनाया गया। परन्तु अन्त समय तक उसने अपने दृढ़ विश्वासको न छोड़ा और अपने सिद्धान्तों पर डटा रहा।

पाश्चात्य ऐतिहासिकोंने मनुष्यके द्वारा मनुष्यको ऐसी पैशाचिक यंत्रणायें दिये जानेके असंख्यों उदाहरणोंका उल्लेख किया है। एककी पैशाचिकता दूसरेसे बढ़ी हुई है। उनमेंसे दो एकका चुन लेना अत्यन्त ही कठिन है। जो हो, इन दो एकसे ही उस समयकी अवस्थाका बहुत कुछ पता चल जायगा।

ईसाई मज़हबके हाथों सताये गये लोगोंकी संख्या।

विद्वानोंने ईसाई मज़हबके हाथों मरे हुए लोगोंकी संख्याके पता लगानेकी भी चेष्टा की है। इन्क्वीजीशनके स्थापित होनेके पहले ही वर्षमें केवल एक प्रान्तमें दो हज़ार यहूदी जलाये थे। इनके सिवाय कई हज़ार कब्रें खोद कर और उनमेंसे लाशें निकाल कर जलाई गई थीं। सत्रह हज़ारको आर्थिक दण्ड या आजन्म कारावासका हुक्म दिया गया था। लेकीने लिखा है कि ईसाइयोंके जुल्मसे तंग आकर यहूदी लोग अक्सर आत्मघात कर लेते थे। वे उस जीवनसे मृत्युमें ही अधिक सुख समझते थे। सन् १०९५ ईसवीमें फ्रांसमें ५०० और यौर्कमें ५०० से भी अधिक यहूदियोंने एक साथ आत्मघात कर डाला था!

अनेक अत्याचारोंके बाद भी जब यहूदियोंने ईसाई मत अङ्गीकार न किया, तब टौर्कीमेडाने उन्हें देशसे निर्वासित कर देनेका निश्चय किया। यहूदियोंको स्पेन छोड़ देनेका हुक्म दे दिया गया और यह घोषित किया गया कि पुनः लौटने पर उन्हें प्राणदण्ड दिया जायगा। निर्वासित लोगोंमेंसे कुछ आफ्रिका चले गये और कुछ इटलीमें आये जहाँ एक

प्रकारके ज्वरसे उनकी संख्या बहुत ही कम हो गई। कुछ टर्की गये और कुछ इँग्लैण्ड भी आये। मार्गमें हज़ारों नव-प्रसूत बच्चे, उनकी मातायें, छोटे छोटे बालक, बालिकायें और बूढ़े, मृत्युके शिकार बन गये।

सत्रहवीं शताब्दिमें मूर जाति भी इसी प्रकार अपने बापदादाओंके जन्मस्थानसे—अपने सदाके घरसे—निर्वासित की गई थी। उन्हें यह हुक्म दिया गया था कि वे मुसलमान देशोंमें न जायँ। उनके दुःखों और यातनाओंका आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं। बक्क कहते हैं कि स्पेनमें एक बहुत बड़े दलकी यह इच्छा थी कि स्त्रीबच्चोंसमेत सभी मूरोंका वध कर डालना चाहिए और इस दलके नेता स्पेनके प्रधान पादरी थे!

इन्क्वीजीशनके मुख्य इतिहासलेखक लौरेण्टीने बहुत खोज और अन्वेषणके बाद यह स्थिर किया है कि अकेले टौर्कीमेडाने अपने १८ वर्षके प्राधान्यमें दस हज़ार दो सौ बीस आदमियोंको जीता जलाया था, छः हजार आठ सौ साठ अविश्वासियोंके जीवित शरीरोंको न प्राप्त कर सकनेके कारण उनकी मूर्तियाँ बनवा कर उनका दहन किया था और सत्तानवे हज़ार तीन सौ इक्कीस आदमियोंको अन्य प्रकारका दण्ड दिया था। लौरेण्टीके कथनानुसार अकेले इसी मनुष्यने एक लाख चौदह हज़ार चार सौ एक कुटुम्बोंका सर्वनाश किया था। टौर्कीमेडा-ने हिब्रू भाषामें मूल बाइबलको जहाँ कहीं पाया भस्म कर डाला और सैलैमैंका नगरमें प्राच्य ज्ञानकी छः हज़ार पुस्तकोंको अग्निके हवाले कर दिया। *

बक्क कहते हैं कि पंचम चार्ल्सके राजत्वकालमें प्रायः एक लाख अविश्वासियोंको प्राण दण्ड दिया गया था। मोटली कहते हैं कि नीद-

---

* Draper–conflict-between Religion and science p. 146.

रलैण्ड्समें पचास हज़ारसे अधिक मनुष्य धार्मिक अत्याचारके बलि बने थे । डारविन भी बहुत सोच विचार और ढूँढ़ खोजके पश्चात् लिखते हैं कि केवल स्पेनमें लगभग तीन शताब्दियों तक प्रतिवर्ष एक हजार आदमी मज़हबके हाथों मारे जाते थे । हाल ही गणना करके यह स्थिर किया गया है कि अविश्वासियों पर पोपोंके अत्याचारसे, इन्क्वीजीशन (Inquisition)से, तथा ईसाई सम्प्रदायोंकी पारस्परिक लड़ाइयोंसे एक करोड़से अधिक आदमियोंकी मृत्यु हुई है ! ×

लिटररी गाईड नामक पत्रमें एक लेखकने लिखा है कि केवल सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दिके मध्य समस्त योरोपमें ढाई लाख स्त्रियाँ डाइन होनेके अभियोगमें जलाई गई थीं ! (Literary Guide Oct. 1920 P. 159)

यह कौन बतला सकता है कि इनके सिवाय अज्ञातरूपसे और कितनोंको दुःख हुआ है और कितनोंकी जानें गई हैं ?

जब इतने आदमियोंके मरनेका पता पुस्तकों और ग्रन्थकारो द्वारा ही चलता है तब अज्ञातरूपसे कितने आदमियोंकी जानें गई होगीं यह कौन बतला सकता है ! और उन लोगोंकी संख्या भी कौन बतला सकता है कि जिन्हें कोई शारीरिक यंत्रणा न सहनेपर भी असीम मानसिक क्लेश भुगतना पड़ा होगा ! अनेकोंने जानके भयसे, बच्चोंके भयसे, अपने असल विचारोंको छोड़कर प्रचलित विचारोंके माननेका मिष किया होगा । मन और हृदयमें प्रातिकूल विचारोंके रखने पर भी कितनोंने अपने बाहिरी आचरणोंमें प्रचलित रीति नीतिके माननेका प्रयत्न किया होगा और इस प्रकार कपटका सिर ऊँचा और सत्यका सिर नीचा किया होगा । इससे समाजको कितनी

× Hæckel's 'Riddle of the Universe'—P. 293.

हानि पहुँची होगी, कौन अनुमान कर सकता है! सत्यप्रियताके सिर पर कितना गहरा कुल्हाड़ा लगा होगा, कौन बतला सकता है! दम्भको कितनी उत्तेजना मिली होगी, कौन स्थिर कर सकता है!

संकीर्ण होनेके कारण मज़हबी लोग स्वभावतः निर्दय होते हैं।

ईसाई धर्मके केवल कैथोलिक सम्प्रदायोंहीने इतना अत्याचार नहीं किया है, पैशाचिकता और अत्याचारमें प्रोटेस्टैण्ट सम्प्रदायोंने भी उनका सामना करनेके लिए कम प्रयत्न नहीं किया है। निर्दयताकी दौड़में यद्यपि वे कैथोलिक मतके साथ साथ—कन्धेसे कन्धा सटा कर—नहीं दौड़े हैं, तथापि बहुत पीछे भी नहीं रहे हैं। और कैथोलिक मतकी अपेक्षा इनके कुछ कम निष्करुण होनेका एक कारण भी है। प्रोटेस्टेण्ट मतोंमें पादरियोंकी इतनी प्रधानता नहीं है। इसमें साधारण मनुष्योंको भी बहुत कुछ अधिकार प्राप्त हैं। बाइबलका पढ़ना या उसका स्वतंत्र अर्थ करना अपराध नहीं है। *परन्तु निर्दयता अत्याचार और ज्ञानावरोधका बीज मज़हबकी संकीर्णतामें अवश्य है और वह केवल प्रोटेस्टेण्ट मतमें ही क्यों संसारके प्रायः सभी मज़हबोंमें विद्यमान है।* मज़हब जब तक अपनी सङ्कीर्णता न छोड़ेगा तब तक अत्याचार अवश्य होंगे, ज्ञानका पथ बन्द अवश्य किया जायगा। संकीर्णतामें प्रायः सभी मज़हब समान हैं—सभीको पूर्ण ज्ञान प्राप्त है—सभीको स्वयं ईश्वरने रचा है और स्वयं ईश्वर सबकी रक्षा करता है। इनके पवित्र धर्मग्रन्थ स्वयं ईश्वरके वाक्य हैं, क्या वे असत्य हो सकते हैं? क्या इनके अतिरिक्त संसारमें और कोई बात भी जाननेके योग्य है? नहीं, कदापि नहीं। *तब वे लोग जो तनिक भी मज़हबके विरुद्ध लिखते या बोलते हैं अवश्य अपराधी हैं—केवल मनुष्यके ही नहीं, स्वयं*

ईश्वरके भी बड़े अपराधी हैं। इन ईश्वरके शत्रुओं और शैतानके दोस्तोंको अपने अपवित्र जीवनके द्वारा संसारको कलुषित करनेके लिए नहीं छोड़ देना चाहिए। इनका मूलोच्छेद ही न्याय-संगत है। जिन मज़हबोंमें यह भाव विद्यमान है—और संसारका शायद ही कोई मज़हब ऐसा होगा जिसकी भावना इस प्रकारकी न हो—वे अवश्य अत्याचार करेंगे—अवश्य मनुष्योंका अहित करेंगे, अवश्य ज्ञानरूपी सूर्य्यको राहु बन कर ग्रास करना चाहेंगे और संसारको दुखियोंके कोलाहलसे और स्त्रियों और बच्चोंके आर्तनादसे परिपूर्ण करेंगे।

सभी मज़हबोंने समान अत्याचार क्यों नहीं किये?

अब प्रश्न यह हो सकता है कि संसारके सभी मज़हबोंने समान अत्याचार क्यों नहीं किये। इसके दो कारण हैं। पहला यह कि सभी मज़हब समान रूपसे संकीर्ण नहीं हैं। जिस मज़हबमें जितनी अधिक संकीर्णता है उसमें निर्दयता भी उतनी ही अधिक है। दूसरा बाह्य कारण यह है कि सभी मज़हबोंको अत्याचार करनेका समान अवसर प्राप्त नहीं हुआ है। कुछ बाह्य कारणोंसे उन्हें अपनी तीव्र रक्तपिपासाको दबाना पड़ा है। परन्तु सभी मज़हबोंने अत्याचार निस्सन्देह किये हैं और *सभीमें अत्याचार करनेकी बलवती इच्छा सदा मौजूद रही है।*

प्रोटेस्टेण्ट सम्प्रदायोंके अत्याचारोंके उदाहरण देनेके लिए पर्याप्त स्थान नहीं है। कैल्विनके हाथों दार्शनिक सर्विटस (यह एक प्रकारसे वेदान्ती था) का जीता जलाया जाना, डेस्कार्टिज़के समान दार्शनिक पर अत्याचार होना आदि बातें यथेष्ट रूपसे विख्यात हैं। बक्ल कहते हैं कि "प्रोटेस्टेण्टोंके अत्याचार कैथोलिक सम्प्रदायोंके अत्याचारोंसे किसी अंशमें भी कम बीभत्स नहीं हैं और प्रोटेस्टेण्टोंकी संख्या

और बलके लिहाज़से तो उनके अत्याचारोंकी संख्या कैथोलिकोंके अत्याचारोंसे किसी तरह कम नहीं हो सकती *।"

जब एक मज़हबका यह हाल है तब इस बातका अनुमान कौन कर सकता है कि भिन्न भिन्न मज़हबोंकी लड़ाइयों—संसारकी सभी मज़हबी लड़ाइयों और संसारके सभी मज़हबोंके द्वारा अब तक कितने आदमियोंकी मृत्यु हुई होगी। मज़हबके द्वारा आदमियोंको कितनी यन्त्रणा दी गई है, इसका वर्णन शेषनाग भी नहीं कर सकेंगे। गेटीने सच कहा है कि *मनुष्य बकरों, भेड़ों, बैलों और भैंसोंसे भी अधिक संख्यामें बलि चढ़ाये गये हैं।*

लड़ाइयोंका कारण।

और इन सब लड़ाइयोंका कारण क्या था? केवल भ्रम-प्रमाद। साधारणसे साधारण बातके लिए लड़ाईका नगाड़ा ठोंका गया है। कोई कहता था कि वेद सत्य है, कोई कहता था कि बाइबल या कुरान सत्य है। कोई कहता था कि किसी मन्त्रको एक बार उच्चारण करना चाहिए और कोई कहता अनेक बार। कोई पूजाकी एक विधिको अति उत्तम समझता था और कोई दूसरी विधिको, कोई ईश्वरका एक प्रकारका चित्र खींचता था, और कोई दूसरे प्रकारका। (ऐ संसारके धर्मोन्मत्त भाइयो, क्या तुम ईश्वरको देख आये हो? क्या ईश्वरने आकर सिर्फ़ तुम्हारे ही कानोंमें अपनी सब बातें कह दी हैं? अज्ञान, अविद्या और घृणाकी बदलीसे सत्य और प्रेमके सूर्य्यको कब तक ढके रक्खोगे?) "संसारका इतिहास धर्मोन्मादका इतिहास है। × × संसारसे उस

---

* History of Civilisation Vol II P. 8; also pp. 36-37; see also Draperes "Conflict between Religion and Science" and Gorham's "Christianity and Civilisation"

भ्रमप्रमादके हटानेकी सबसे अधिक आवश्यकता है जो ईश्वरको अत्याचारी बना कर मनुष्यको अत्याचारकी शिक्षा देता है। जिस मनुष्यने पहले पहल यह कहा कि हमें पापियोंसे घृणा करनी चाहिए उसने मानों सभी पुण्यात्माओंके हाथमें खड्ग दे दिया। जिन मनुष्योंका विश्वास हमारे समान नहीं है, उन्हें त्याग करनेकी शिक्षा प्रथम प्रथम जिस आदमीने दी उसने मानों युद्धकी दुन्दुभी बजा दी। ×××जिस समयसे मनुष्यने उन वस्तुओंके लिए—जो उसकी समझमें नहीं आ सकतीं—झगड़नेको अपना कर्तव्य समझा तथा कुछ अर्थहीन शब्दोंके उच्चारणको धर्मका अंतिम सोपान माना, उस समयसे सारा संसार मानवरक्तसे उपप्लावित हो रहा है। ××× भाइयो, तुम क्या यह समझते हो कि ईश्वर तुम्हारा इम्तिहान बाइबल या कुरानमें लेगा या वह तुम्हारा विचार तुम्हारे कार्य्योंके अनुसार करेगा? मूढ़ विश्वासी मनुष्य अत्युत्तम भोजनमें भी ज़हर मिला देता है। वह अपना और दूसरोंका भी शत्रु है। वह समझता है कि यदि मैं किसी विशेष दिन मांस खा लूँगा तो ईश्वर मुझसे अनन्त बदला लेगा। वह विश्वास करता है कि गेरुआ वस्त्र, जटाजूटयुक्त सिर, त्रिफटाका तिलक या लम्बी दाढ़ी ईश्वरको बहुत पसन्द आती है, और साफ सुथरा चेहरा, चिकनी दाढ़ी तथा त्रिपुण्ड तिलक ईश्वरको नहीं भाता। वह विश्वास करता है कि उसकी मुक्ति संस्कृतके उन शब्दोंमें अटकी है जो उसकी समझमें एकदम नहीं आते। तुम उस कुटुम्बको क्या कहोगे जिसमें एक पिताके सभी पुत्र इसलिए लड़ते हैं कि उन्हें पिताको किस प्रकार प्रणाम करना चाहिए? मित्रो, असल चीज पिताको प्यार करना है, अपनी इच्छाके अनुसार तुम उसे जिस प्रकार चाहो उस प्रकारसे प्रणाम करो। *जो आदमी यह कहता है कि जैसा*

मैं विश्वास करता हूँ वैसा ही तुम भी विश्वास करो, नहीं तो ईश्वर तुम्हें दण्ड देगा, वही मनुष्य शीघ्र ही यह भी कहेगा कि जैसा मैं विश्वास करता हूँ वैसा ही तुम भी विश्वास करो, नहीं तो मैं तुम्हें मार डालूँगा।"* मज़हबकी नज़रमें बड़ा आदमी वही है जिसमें अधिक घृणा है। इसी कारण चंगेज या तैमूरके जैसे हृदयवाले लोगोंका—औरंगजेब, इग्नेशियस, ग्रीगरी सप्तम, अलेक्जेण्डर षष्ठको वह सम्मान हुआ है जिससे कि वे महात्मा, औलिया या सिद्धके पदको प्राप्त हो गये हैं।

पहले ही कहा जा चुका है कि मज़हब हमारे हृदयको मरुभूमि बना देता है। वह दया और सहानुभूतिके कोमल पौधेको उगने नहीं देता और हमारे हृदयरूपी आकाशको भादोंकी अँधेरी रातके समान काला बना देता है। यहाँ प्रेमका इन्द्रधनुष उदय नहीं हो सकता।

मज़हब स्थूल और स्वार्थपूर्ण है। उसमें आध्यात्मिकता नहीं है।

मज़हब इस दृढ़ताके साथ हमारे मन और हृदय पर अपना आधिपत्य जमाता है कि हम सर्वथा मृतक, प्राणहीन यन्त्र—कठपुतली—के समान हो जाते हैं। निष्पक्ष हो कर देखनेसे मज़हबमें कोई आध्यात्मिकता नहीं नज़र आती। यह सम्पूर्ण रीतिसे स्थूल है। आओ, हम सब अपने छोटे छोटे स्वार्थोंको परित्याग कर संसारके दुःखसे दुखी हों, संसारकी उन्नतिके लिए कमर कस कर तैयार हो जावें, तथा उस गिलहरीके समान जो लङ्का जानके निमित्त पुल बनानेमें श्रीरामचन्द्रको सहायता देती थी, हम सब

---

* Voltaire--Homilyon Superstiti on Translated by Joseph McCabe. लेखकने वाल्टेयरके शब्दोंमें कुछ परिवर्तन कर दिया है।

भी संसारकी उन्नतिमें भाग लें। सत्कर्म करो, जीवनको सुन्दर बनाओ, स्वार्थपरता और हिंसाका परित्याग करो। ईश्वर तुमसे तनिक भी नाराज़ न होगा। वास्तवमें यदि ईश्वर है तो हम उससे तुम्हारे सारे अपराधोंके क्षमा करानेका जिम्मा लेते हैं। अपनी बुद्धि—अपनी ज्योतिके अनुसार चलनेसे, निःस्वार्थ होनेसे, तथा भ्रम-प्रमादों और हठोक्तियोंको छोड़कर संसारमें प्रेमके फैलानेसे विश्वास रक्खो कि ईश्वर तुमसे कभी क्रुद्ध न होगा, चाहे तुम उसके अस्तित्व तकमें विश्वास न रक्खो। प्रचलित मज़हबसे काम न चलेगा। इसकी अनेक बुराइयोंको तुम देख चुके हो। यह मज़हब तुम्हारे मनुष्यत्वको कम करता है। इसकी जड़ स्वार्थपरतामें है। मुक्ति पानेके लिए ही तुम मज़हबी होते हो। मज़हबका सम्बन्ध तुम्हारी नीची स्वार्थी प्रकृतिसे है। यह तुम्हारे उच्च और दिव्य स्वार्थशून्य स्वभावको छूता तक नहीं है। क्या यह पतित और पंगु बनना तुमको शोभा देता है? यह स्वार्थपरता, यह स्वर्ग और मुक्तिकी कामना, तुम्हें शोभा नहीं देती। सत्कर्ममें कोई कामना न होनी चाहिए। इसीलिए मज़हब सदाचारके विरुद्ध है। हम इस लोकमें इन्द्रियसंयम क्यों करें? क्या परलोकमें इन्द्रियपरता ग्रहण करने, कामी बनने और अप्सराओं या हूरोंको प्राप्त करनेके लिए? सच है—

जन्नतपरस्त ज़ाहिद क्या हक़परस्त है?
हूरोंपै मर रहे हैं वह शहवतपरस्त हैं॥

अर्थात्—स्वर्गकी कामना रखनेवाले तपस्वी क्या वास्तवमें ईश्वरका पूजन करते हैं? नहीं, कदापि नहीं। अप्सराओं पर आसक्त हो कर वे तो केवल कामदेवकी उपासना कर रहे हैं *।

---

* बहुतसे हिजड़ोंका जन्म माताके पेटसे ही होता है और कुछ पुरुष कृत्रिम रीतिसे हिजड़े बनाये जाते हैं। लेकिन कुछ अच्छे लोग स्वर्गके आनन्दके लिए अपनेको हिजड़ा बनाते हैं।—बाइबल। Mathew XIX, 12.

चौदहवाँ अध्याय ।

मज़हब और सदाचार ।

५—पूर्व अध्यायोंका सिंहावलोकन और कुछ नूतन प्रमाण ।

मजहब परलोककी चीज़ है और सदाचार इस लोककी।

पूर्वके अध्यायोंमें मज़हब और सदाचारकी भिन्नताके दिखलानेका जो प्रयत्न किया गया है उससे विदित होता है कि मज़हब और सदाचार दो भिन्न वस्तुयें हैं। हम यह दिखला चुके हैं कि मज़हब परलोककी चीज़ है और सदाचार इस लोककी *। *इसी लिए मज़हबमें हर स्थान पर धन और सुखकी निन्दा तथा दारिद्र, दुःख और शोककी प्रशंसा की गई है।* इसी लिए क्रिस्तान मज़हब सभी धनी लोगोंको बिना किसी अपराधके भी जहन्नुममें भेजता है। बाइबलका कहना है कि अमीर आदमीने सारी उत्तम वस्तुओंको इसी लोकमें प्राप्त कर लिया है, अतएव उसके लिए नरक ही उचित है; परन्तु दरिद्र आदमीने सदा दुःख ही झेला है, इस लिए मरनेके पश्चात् उसको स्वर्गमें स्थान मिलना चाहिए। मज़हब और सदाचारकी भिन्नताको दिखलाते समय हमने यह भी दिखलानेका प्रयत्न किया है कि मनुष्य पूर्ण मज़हबी होने पर किस प्रकार परलोकके बनानेमें रत हो

---

* देखो अध्याय दसवाँ ।

जाता है तथा संसारसे विरक्त होकर वह किस प्रकार *सभी सांसारिक सम्बन्धों और नातोंकी उपेक्षा करने लगता है । यह भी बतलाया जा चुका है कि हमारा कौटुम्बिक और पारिवारिक जीवन भी मज़हबके द्वारा किस प्रकार विषमय हो जाता है ।* मज़हबने **स्त्रीको सदा नरकका द्वार** *अनुमान किया है ।* क्रिस्तान मज़हबके अनुसार मानव-जातिके समस्त दुःखोंका कारण स्त्री ही है । उसीने आदमको मना किये हुए वृक्षसे फल तोड़ कर खानेके लिए प्रलोभित किया और उसके खानेके कारण खुदाकी क्रोधाग्नि भड़क उठी । आदम संसारमें फेंक दिया गया और उसे वह दारुण शाप दिया गया जिसकी अग्निमें मानव-जाति आज तक जल रही है । यद्यपि इस तरहकी कथा क्रिस्तान और इस्लाम मज़हबके अतिरिक्त अन्य किसी मज़हबमें नहीं पाई जाती, तथापि स्त्रियोंके सम्बन्धमें अन्य मज़हबोंका दृष्टिकोण भी इसी तरहका है । निष्पक्ष विचारकको अपने ही देश और धर्ममें—सिद्धान्त और व्यवहार दोनोंमें—इस तरहके अनेक उदाहरण मिल जायँगे । अतएव यहाँ पर इस विषयको बढ़ानेकी ज़रूरत नहीं जान पड़ती ।

मज़हब और सहृदयता ।

सदाचारके मुख्य स्तम्भ सहृदयताका मज़हबके द्वारा किस प्रकार विनाश होता है तथा हमारे हृदय पर मज़हबका कैसा बुरा प्रभाव पड़ता है यह भी पहले बताया जा चुका है* । हम यह भी देख चुके हैं कि मज़हब जिस परिमाणमें एकता पैदा करता है उससे कहीं अधिक परिमाणमें वह भेदभाव उत्पन्न करता है । मज़हबी आदमीकी सहानुभूति केवल अपने छोटेसे मज़हब, मत, सम्प्रदाय, गिरजे, या मठके साथ होती है—अन्य मज़-

---

* देखो अध्याय तेरहवाँ ।

हब या सम्प्रदायके लोगोंको वह अपना शत्रु समझता है। वह इस लोकमें तो उनको यंत्रणा पहुँचाता ही है, मरणोपरान्त भी नरककी अग्निमें जलनेके लिए भेजता है। इस सम्बन्धमें क्रिस्तान मज़हब अद्वितीय है। सिर्फ़ प्राचीन रोमन कैथोलिक सम्प्रदायका ही नहीं, अन्य क्रिस्तान सम्प्रदायोंका भी यही विचार है। लूथर, कौल्विन, ज्विंगली आदि सुधारक सम्प्रदायोंके संस्थापकोंने भी यही कहा है कि उनके सम्प्रदायविशेषसे बाहरका मनुष्य कदापि स्वर्गमें नहीं जा सकता। अतएव अन्य सभी मज़हब, मत या सम्प्रदायके आदमी अनन्त नरकमें जायँगे—क्रिस्तान सम्प्रदायोंको इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। केवल वे ही मनुष्य नहीं, जो इस संसारमें उपस्थित हैं, वरन् जो क्रिस्तान मज़हबके जन्म ग्रहण करनेके पूर्व भी संसारमें आये थे और जिन्होंने क्रिस्तान मज़हब या क्राइस्टका नाम भी नहीं सुना था वे भी—नरककी अनन्त अग्निमें जला करेंगे। उनके दुःखोंका कभी अन्त नहीं होगा—एक क्षण, एक मिनटके लिए भी वे इन यातनाओंसे मुक्त नहीं होंगे। सारे क्रिस्तान सम्प्रदायोंका यही विश्वास है। मज़हबके इसी अंगको लेकर एक क्रिस्तान पादरीने एक बार चंदेके लिए इस तरह अपील की थी—"पचास हज़ार आदमी प्रति दिन सदाके लिए उस अग्निमें जलनेके लिए चले जा रहे हैं जो कभी बुझाई नहीं जा सकती। ६० करोड़ मनुष्य इस अग्निमें जानेवाले हैं। क्या आपको दिनमें एकाध बार भी इन अभागे पचास हज़ार मनुष्योंके बारेमें नहीं सोचना चाहिए? इन लोगोंमें क्राइस्टके शुद्ध मतका प्रचार होना अत्यन्त आवश्यक है+।"

नरकका सिद्धान्त।

+ See The Christian Hell by Hypatia Bradlaugh Bonner. P. 12-13; also P. 70 इस समस्त पुस्तकका पढ़ना भी कम उपयोगी न होगा।

केवल वयःप्राप्त अविश्वासी पुरुषोंहीके भाग्यमें नरक नहीं बदा है, वरन् जरा जरासे बच्चे भी नरकसे नहीं बच सकते । प्यूरिटन सम्प्रदायका एक पादरी क्राईस्टोफ़र लव्ह (Cristopher Love) लिखता है कि "छोटे बच्चोंको भी—जो संसारमें केवल एक दिनके लिए आये हैं—नरकका उतना ही भय है जितना कि उस मनुष्यको जो इस संसारमें सौ वर्ष तक जिया हो । लोग मूर्खतावश बच्चोंको निष्पाप अनुमान करते हैं, परन्तु यह बड़ी भूल है । बच्चे संसारमें चाहे एक मिनट मात्रके ही लिए ही जीवित रहे हों, तौ भी उनके नैसर्गिक दोषके लिए ईश्वर उन्हें दण्ड दे सकता है । ईश्वर अन्यायी कदापि नहीं कहा जा सकता ।" अठारहवीं शताब्दिके मध्य भागमें टौरण्टोके प्रधान पादरीने एक विज्ञप्ति निकाली थी । उसमें लिखा था कि "गर्भधारणके समयसे ही प्रत्येक बच्चेको क्रोधका (?) बच्चा अनुमान करना चाहिए जिससे ईश्वर अत्यन्त घृणा करता है । प्रत्येक नवप्रसूत बच्चेको शैतानका साथी और नरकका पथिक समझना चाहिए ×" अक्सर क्रिस्तान संतोंको नरकके दृश्योंके देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है और जिन संतोंने इस अनुपम दृश्यका रसास्वादन किया है उन्होंने लिखा है कि "नरकमें केवल वयःप्राप्त मनुष्य ही नहीं, वरन् बच्चे भी पाये जाते हैं ।" अलबेरिको (Alberico) नामक साधुने नरकमें एक वर्षके बच्चेको उबाले जाते हुए देखा था । इसपर सेंट पीटरने उसको यह उपदेश दिया था कि एक दिनका बच्चा भी निर्दोष नहीं माना जा सकता । क्योंकि यदि वह और कोई दोष नहीं करता तो कमसे कम माताको देख कर हाथ फैलाते समय अज्ञानतः उसके गालोंमें तमाचा लगा सकता है ।†

× Ib. P. 43.

† Ib. P. 40-41. अधिक उदाहरणोंके लिए पाठक इस पुस्तकको देखें ।

क्रिस्तान मजहबकी पाशविकताका शेष यहींपर नहीं हो जाता। दुखियोंके दुःख और आर्त रोदनसे क्रिस्तानोंको आनन्द भी असीम होता है। यद्यपि पूर्वके एक अध्यायमें ‡ इस विषयपर बहुत कुछ लिखा जा चुका है तथापि यहाँ भी दो एक उदाहरण देना अनुचित न होगा। टॉमस अक्वाइनस लिखते हैं कि "स्वर्गमें सन्तोंके आनन्दको पूर्ण करनेके लिए उन्हें नरककी यातनाओंका दृश्य भी दिखलाया जाता है।" आठवीं शताब्दिका प्रसिद्ध अँगरेज़ कवि सिन्यूल्फ़ लिखता है कि "अच्छे लोग स्वर्गमें अपनी अवस्थाको नरकके लोगोंकी अवस्थासे मिलाकर आल्हादसे फूले न समायँगे और वे ईश्वरको धन्यवाद देंगे।" प्यूरिटन-आचार्य्य क्राईस्टोफ़र लव्ह कहता है कि "जिस समय तुम अग्निमें जलते होगे—जब तुम यंत्रणाओंसे शृगालकी तरह कोलाहल मचाते होगे, उस समय ईश्वर हँसेगा और उसके पारिषद आनन्द मनायँगे तथा हर्षसे गान करेंगे।" एक दूसरा क्रिस्तान धर्मात्मा कहता है कि "यदि ईश्वर नरकको हटा दे तो इससे स्वर्गवासी मनुष्योंके आनन्दमें बहुत कमी हो जायगी। स्वर्गवासियोंके आनन्दके लिए नरककी यातनाओंका देखते रहना परमावश्यक है।" अधिक उदाहरण कहाँ तक दिये जायँ। नमूनेके लिए इतने ही काफ़ी होंगे। खोजनेसे इस तरहके असंख्यों उदाहरण प्राप्त हो सकते हैं *।

---

‡ अध्याय तेरहवाँ।

*देखो—Christian Hell by Hypatia Bradlaugh Bonner esp. pp. 37-39.

हिन्दू-साहित्यमें नरक ।

यहाँ पर यह आपत्ति की जा सकती है कि ये सब दृष्टान्त क्रिस्तान मज़हबके हैं; हमारे भारतीय धर्मोंके नहीं। इस लिए इनसे कोई व्यापक निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। यह ठीक है। हम पहले भी* मज़हबोंके तुलनात्मक अध्ययनकी कठिनता और अपने धर्म तथा अन्य मज़हबोंकी भिन्नताकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित कर चुके हैं। आगे चल कर यह और भी स्पष्ट किया जायगा ×। परन्तु हमारे यहाँ भी नरकका अभाव नहीं है। यद्यपि हमारा नरक इतना भीषण और हृदय-हीन नहीं है, तथापि हमारे धार्मिक साहित्यमें भी स्थल स्थल पर नरकके चित्र अंकित किये गये हैं। उदाहरणके लिए श्रीमद्भागवत पुराणके नरकोंका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है।

श्रीमद्भागवतके अनुसार अट्ठाईस नरक हैं +। ये त्रिलोकमें दक्षिणकी ओर भूमिके ऊपर और जलके नीचे अवस्थित हैं।

महारौरव नरकमें महा हिंस्र सर्पसे भी अतिशय क्रूर रुरु नामके दैत्य मांस खानेके लिए जीवोंको विविध प्रकारकी यातनायें देते हैं। जो मनुष्य ब्राह्मण जातिके प्रति द्रोहका आचरण करते हैं वे *कालसूत्र* नामक नरकमें निक्षिप्त होते हैं। *ब्राह्मण*हिंसक भी इसी नरकमें फेंके जाते हैं। ऊपरसे सूर्य्यकी प्रखर किरणें और नीचेसे तप्त भूमि उन्हें संतापित करती है। उनकी देह भीतर और

---

* देखो अध्याय पहला, पृष्ठ ४ और पृष्ठ १३–१४।

× देखो अध्याय पन्द्रहवाँ और सोलहवाँ।

\+ यहाँ सारे नरकोंका वर्णन नहीं दिया जा सकता। केवल दो चार नरकोंका वृत्तान्त ही दिया जाता है। इनका स्वरूप पूर्णताके साथ जाननेके लिए उक्त ग्रन्थके पंचम स्कन्धके छब्बीसवें अध्यायको देखना चाहिए।

बाहरसे सदा दग्ध हुआ रहती है। पशुकी देहमें जितने रोम हैं उतने सहस्र वर्षतक उन्हें यह यातना भुगतनी पड़ती है। *असिपत्रवन* नरकमें यमदूत जीवोंके ऊपर दण्डप्रहार किया करते हैं। उनके दारुण प्रहारकी यातनासे पापी इधर उधर दौड़ता फिरता है। उसी समय वृक्षोंके पत्ते दोहरी धारकी तलवारकी तरह पड़कर उनके शरीरको छिन्न भिन्न कर देते हैं। उस समय वह दुरात्मा "हाय मरा, हाय मरा" कहकर पद पद पर तीव्र वेदनासे मूर्च्छित हो पड़ता है। जिस प्रकार ऊखको पेलकर रस निकाला जाता है उसी प्रकार *शूकरमुखनरकमें* बलशाली यमदूत पापियोंके शरीरको पेलते हैं। पशु, पक्षी, मक्खी, चीलर प्रभृति जीव, जो इस संसारमें मनुष्यों द्वारा मारे जाते हैं अन्धकूप नामक नरकमें मनुष्योंकी प्रतिहिंसा किया करते हैं। इनके उत्पातके कारण मनुष्यको नींद नहीं आती। *कृमिभोजन* नरकमें लक्ष्य योजनका एक कृमिकुण्ड है। इस नरकमें पड़कर मनुष्य कृमियोंको खाता है और कृमि मनुष्यको। चोरी या बल द्वारा *ब्राह्मण*का सुवर्णरत्नादि हरण करनेके कारण लोग *सन्दंश* नरकमें डाले जाते हैं। वहाँ यमदूत अग्निमें लाल किये हुए लोहेके द्वारा उनके शरीरको छिन्न भिन्न करते हैं। अगम्यागमनके दोषीको *तप्त-शूर्म्मि* नरकमें जाना पड़ता है। वहाँ पुरुषोंको लोहेकी बनी हुई एवं अग्निमें लाल की गई स्त्रीकी प्रतिमासे और स्त्रियोंको इसी प्रकारकी पुरुषप्रीतमासे आलिंगन कराया जाता है और वज्रतुल्य काँटेदार वृक्षोंपर चढ़ा कर खींचा जाता है। *वैतरणी* नरकमें मगर आदि हिंसक जलजन्तु मनुष्योंको भक्षण करते हैं तथापि उनके प्राण नहीं निकलते। कुछ नरकोंमें मनुष्योंको विष्ठा, मूत्र, पीव, लहू, नख, केश, अस्थि, मेद इत्यादिका भोजन कराया जाता है।

सारमेयादन नरकमें सातसौ सत्ताईस कुत्ते वज्र जैसे कराल दाँतों द्वारा जीवोंको चबाते हैं । *अवीचि* नरकमें यमदूत जीवोंके शरीरको ज़रा ज़रा कतरते हैं तौ भी उनकी मृत्यु नहीं होती । कहीं कहीं यमदूत लोहेको आगमें लाल करके उससे जीवोंके शरीरको निरन्तर सेंका करते हैं । जो लोग अपनेको महत् समझ कर अहंकारवश तपस्या, विद्या, सदाचार, वर्ण और आश्रममें श्रेष्ठ मनुष्यका अनादर करते हैं, वे *क्षारकर्दममय* नरकमें निपतित होते हैं । कहीं कहीं तीक्ष्ण चोंचवाले शिकारी पक्षी जीवोंके शरीरको नोचते रहते हैं । किसी किसी नरकमें पंच-मुख और सप्त-मुख सर्प जीवोंको पकड़ पकड़कर चूहेके समान निगलते रहते हैं । सूचि-मुख नरकमें यमदूत मनुष्यके शरीरको छिन्न भिन्न करके उससे जुलाहोंके सदृश सूत बुनते हैं ।

यह वर्णन कितना भीषण है, तथा क्रिस्तान-नरकसे इसका कितना सादृश्य है, इसका निर्णय पाठकों पर ही छोड़ा जाता है ।

जो मनुष्य अन्य मनुष्योंका, परलोकमें भी इतना अहित सोच सकता है, जो दूसरोंको अनन्त समयके लिए—इतने सहस्र वर्षोंके लिए कि जितने रोयें किसी पशुके बदन पर हैं—नरकाग्निमें भेज सकता है, वह इस लोकमें भी मनुष्यकी हत्या या हिंसा कर सकता है । इसमें कोई आश्चर्य्य नहीं है । इसी लिए धर्मोन्मत्त मनुष्योंने मनुष्य जातिका बहुत बड़ा अपकार किया है । पूर्वके अध्यायोंमें इसका सविस्तर वर्णन किया चुका है *। लेकीने लिखा है (Rise and influence of Rationalism in Europe) कि जर्मनीके सिर्फ़ एक गिरजेमें एक वर्षके अन्दर नौ सौ आदमी जीते जलाये गये थे । मनुष्य अपने शरीरको कहाँ तक कष्ट देता है

---

* देखो अध्याय तेरहवाँ ।

यह भी किसी अध्यायमें वर्णन किया जा चुका है*। हमारे देशमें अब भी अनेक साधु काँटोंकी शय्या पर सोते हैं और गर्मीके दिनोंमें लहकते हुए आकाशके नीचे दो पहरके समय अग्निका सेवन करते हैं। इँग्लैण्डमें हाल तक कार्डिनल वोग्हन एक पहुँची पहिने रहते थे, जिसके अन्दर अनेक सूईयाँ टकी होती थीं और जो सदा उनकी कलाईमें चुभती रहती थीं। मज़हबके इस अंश पर अधिक टीका करनेकी ज़रूरत नहीं है। हम पूर्वके किसी अध्यायमें दिखला चुके हैं कि जो मनुष्य अपने सुख और आनन्दकी परवाह नहीं करता—जिसे सुख और आनन्दसे शत्रुता है—जो इन्हें बुरा समझता है—वह दूसरोंके कल्याणकी भी कदापि परवाह नहीं करेगा ×।

ईश्वरका न्याय।

अतएव मज़हबकी मूल भित्ति, प्रेम, दया, सहृदयता और क्षमा नहीं, वरन् प्रतिहिंसा, प्रत्यपकार, घृणा, और निष्ठुरता है। क्रिस्तान और इस्लाम मज़हबके सम्बन्धमें तो कुछ कहना ही वृथा है। क्योंकि एक सामान्य अपराध पर—एक वृक्षसे एक छोटासा फल तोड़कर खा लेनेके कारण—क्रिस्तान ईश्वरने अभी तक संसारको श्मशान बना रक्खा है और इससे भी सन्तुष्ट न हो कर भयंकर नरक निर्माण करके रख छोड़ा है जिसमें मनुष्योंको डाल कर वह उनसे अनन्त समय तक बदला वसूल करेगा—असंख्यों पीढ़ी दूरके एक पूर्वजके अपराधके कारण समस्त मानव जातिको निरन्तर ही अग्निमें भस्म करता रहेगा। अन्य मज़हबोंकी अवस्था भी कुछ कुछ इसी तरहकी है। ***प्रतिकार या प्रतिहिंसाका भाव सभी मजहबोंके ईश्वरोंमें विद्यमान है***। सैद्धान्तिक रूपसे

---

* देखो अध्याय दसवाँ। ×देखो अध्याय तीसरा।

चाहे जो हो; परन्तु व्यावहारिक रूपसे सभी मजहबोंका ईश्वर ज़िद्दी, ज़ालिम और अस्थिर-चित्त है। उसके दण्डविधानमें कोई नियमितता नहीं है। सामान्यसे सामान्य अपराधपर भी वह बहुत बड़ा और कड़ा दण्ड देता है। एक अँगरेजी काव्य-लेखिकाका यह लिखना बहुत ही स्वाभाविक है कि—

The earthquake whelms.
Its undistinguished thousands, making grves
Of peopled cities in its path; and this
Is Heaven's dread justice. Aye it is well.

Mrs. Heman's Vespers of Palermo.

भावार्थ—भूकम्प बसे हुए नगरोंको उजाड़कर उसके खण्डहरोंमें हज़ारोंको गाड़ देता है। ईश्वरका भीषण न्याय ऐसा ही है और यह सत्य और यथार्थ न्याय है। अतएव यह अच्छा ही है !

अतएव जब ईश्वरहीका न्याय इस प्रकारका है, तब यदि मनुष्य ईश्वरका अनुकरण करना चाहे तो इसमें उसकी भूल ही क्या हो सकती है ? जब स्वयं ईश्वर ही दोषियों और पापियोंसे इस तरहका व्यवहार करता है तब यदि मनुष्य मनुष्यको यातना दे तो इसमें कोई अनौचित्य नहीं दीख पड़ता। इसी कारण संसारमें इतनी लड़ाइयाँ हुई हैं और देशविदेश विजय किये गये हैं। पहलेके एक अध्यायमें ही वर्तमान युद्धका जिकर करते हुए हमने कहा था कि यह युद्ध भी वास्तवमें धार्मिक लोगोंका ही भड़काया हुआ है। युद्ध-भावकी पुष्टि धार्मिक साहित्यसे ही हुई है। यहाँ पर एक अँगरेज़ पादरी महोदयकी बनाई हुई कविताके निम्न भाग पर विचार कीजिए।—

मजहबके द्वारा युद्ध-भावकी पुष्टि इसके कुछ प्रमाण।

We will not cease from battle, we will not
sheathe the sword
St. George. St. George for England, and
England for the Lord!

(Refrain of a hymn, specially written for a commemoration service on St. George's day 1906, held at St. Margeret's church, Lothbury)

भावार्थ—हम लोग युद्ध बन्द नहीं करेंगे—हम लोग तलवारको कदापि म्यानमें नहीं डालेंगे। सेण्ट जॉर्ज इँग्लैण्डकी रक्षा करें। इँग्लैण्ड सदा ईश्वरकी सेवा किया करेगा।

एक दूसरा प्रमाण लीजिए:—

"For some wise but inscrutable reason it has pleased the Almighty to constitute all life in this world on a war and not on a peace basis; and is it wise of the creature to dispute the wisdom of the creator?"

Lt. Gen. Sir Reginald Hart in Nineteenth century and After Aug. 1911 *

भावार्थ—किसी उत्तम परन्तु बुद्धिमें न अँटनेवाले कारणवश ईश्वरने इस संसारके जीवोंकी रचना शांतिकी नीव पर नहीं, वरन् युद्धकी नीव पर, की है। क्या ईश्वरद्वारा पैदा कियेगये तुच्छ जीवोंके लिए ईश्वरकी बुद्धिमानी पर कटाक्ष करना उचित है?

यों तो लोग वर्तमान समयके युद्धोंके लिए विज्ञानको दोषी ठहराते है; परन्तु हमें यह स्पष्ट रूपसे जान लेना चाहिए कि योरोपके युद्धों-

* Quoted in Christianity and Conduct-by Hypatia Bradlaugh Bonner P. 44

का—वर्तमान महायुद्धका भी—पुष्टीकरण क्रिस्तान मजहबहीके द्वारा हुआ है। पाश्चात्य जगत्का मुख्य मजहब—क्रिस्तान, युद्धके ही हाथों पाला और पोसा गया है। रण-राक्षसीका दुग्ध पान करके ही वह सयाना हुआ है। युद्धकी ही संरक्षकतामें वह बढ़ा है और बलसंपन्न हुआ है। युद्धमें विजय प्राप्त करनेके लिए ही रोमका बादशाह कॉन्स्टण्टाइन क्रिस्तान हुआ था। युद्ध और मज़हब सदा साथ चलते हैं। मज़हब ही आदमीको युद्ध करनेके लिए प्रेरित करता है। मज़हब मनुष्यकी युद्ध-कामनाको बराबर प्रबल करता रहा है। योरोपका सबसे बड़ा मज़हबी युग युद्ध और दासताका ही युग था। अब तक शायद योरोपका ऐसा कोई युद्ध न हुआ होगा जिसका लड़ाकू जातियोंके गिरजोंने समर्थन न किया हो। चीनसे जो अफ्यून-युद्ध हुआ था उसके समाप्त होने पर लण्डनके पादरी-संघ (London Missionary Society) ने एक सभा की थी और इस युद्धके द्वारा चीनमें क्रिस्तानधर्मप्रचारमें सुगमता प्राप्त होनेके कारण ईश्वरके प्रति कृतज्ञता प्रकट की थी। तल-एल-कबीरके युद्धके पश्चात् यॉर्कके प्रधान पादरीने प्रत्येक गिरजेको ईश्वरके प्रति कृत-ज्ञता-प्रकाशनका हुक्म दिया था—क्यों कि इस युद्धमें ईश्वर इँग्लैण्डके पक्षमें होकर लड़ा था! बाक्सर-युद्धके पश्चात् पादरियोंने इँग्लैण्ड द्वारा उजाड़े गये खण्डहरों और प्रदेशोंमें ईश्वरको धन्यवाद दिया था! इंग्लैण्डके प्रायः प्रत्येक गिरजेने दक्षिण आफ्रिकाकी लड़ाईका समर्थन किया था। एक बहुत बड़े पादरीने सन् १८९९ में लिखा था कि "शांतिके सम्बन्धमें बहुतसी मीठी मीठी, परन्तु झूठी और मूर्खता-परिपूर्ण बातें कही गई हैं। मुझे उनमें सदा सन्देह होता रहा है। युद्धसे भी बुरी वस्तुयें इस संसारमें पाई जाती हैं। ईश्वरने अपनी विश्व-

व्यवस्थामें आँधी तूफ़ान, भूकम्प, दुर्भिक्ष आदि बहुतसी वस्तुओंको स्थान दिया है। अतएव यह क्यों कर कहा जा सकता है कि ईश्वर युद्धके विरुद्ध है ?"* इसी लेखककी एक कविता टाइम्समें छपी थी जिसका एक अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है:——

They say that "war is hell," "The great accursed,"
The sin impossible to be forgiven;
Yet I can look beyond it at its worst,
And still find peace in heaven.
And as I note how nobly natures form
Under the wars red rain, I deem it true
That he who made the earthquake and the storm
Perchance makes battles, too!

... ...

Thus, as the heaven's many coloured flames
At sunset are but dust in rich disguise
The ascending earthquake dust of battle frames
God's picture in the skies*

कैनन कार्माइकलने लिखा है—"युद्धमें कोई बुराई नहीं है। बाइबलका नूतन खण्ड (New Testament) भी यही कहता है। भगवान ईसाने लड़ाईके विरुद्ध कहीं एक भी वचन नहीं कहा है। जॉन दी बैप्टिष्ट सिपाहियोंको उपदेश अवश्य देते हैं; किन्तु उनके पेशेके विरुद्ध कुछ भी नहीं कहते। सेण्ट पॉलको लड़ाइयोंके वर्णनमें असीम आनन्द प्राप्त होता है। संसारका इतिहास युद्धोंसे परिपूर्ण है। निष्कर्ष यही है कि युद्ध ईश्वरको भाता है। ईश्वरको दुःख और मृत्युकी क्या परवाह

---

* Ib. P. 48.

है !"* वर्तमान युद्धको लण्डनके प्रधान पादरी (Bishop of London) ने सर्वोत्कृष्ट और महोज्ज्वल युद्ध कहा था। मिसेज बॉनर लाका कहना बिल्कुल सत्य है कि "कुछ समय पूर्व जिन गिरजोंसे शान्ति और मनुष्यके भ्रातृत्वकी झूठी गूँजें निकल रही थीं अगस्त १९१४ के बाद उनही गिरजोंसे युद्धके निनाद प्रतिध्वनित होने लगे। लोग इस युद्धको ईश्वर द्वारा भेजा हुआ युद्ध अनुमान करने लगे और युद्ध करना प्रत्येक ईसाई जातिका कर्तव्य हो गया।+"

मजहब सदा बलवानों तथा अधिकार-प्राप्त लोगोंहीके पक्षमें रहता हुआ और जनसाधारणके राजनीतिक तथा सामाजिक बन्धनोंसे मुक्त होनेके प्रयत्नोंका विरोध करता हुआ पाया गया है। उसने मुक्तकण्ठसे कहा है कि—

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी,
ये सब ताड़नके अधिकारी।

मजहब और स्वतंत्रता।

मज़हब विश्व-बन्धुत्व और मनुष्यके भ्रातृत्वकी डींग भले ही मारा करे; परन्तु आज तक वह इन बातोंको व्यवहारमें लाता हुआ नहीं देखा गया है। अधिक प्रमाणों और उदाहरणोंकी ज़रूरत नहीं है। इसके लिए हमें अपने ही समाज पर एक बार दृष्टिपात कर लेना चाहिए। क्या आपको अन्य कोई ऐसा समाज मिलेगा जिसमें एक समूहके मनुष्य दूसरे समूहके मनुष्योंको छूना पाप समझें? क्या आपको और कोई समाज ऐसा मिलेगा

---

* The Christian Jan. 11, 1900; Quoted in Ib. P. 49

+यहाँ अधिक अवतरण नहीं दिये जा सके। उक्त पुस्तकमें बहुतसे उदाहरण हैं जिन्हें पाठक स्वयं देख सकते हैं।

जिसमें बहुतसे मनुष्योंके ऊपर ‘ अछूत ’ का लेबिल लगा हो ? क्या आपको ऐसा और कोई समाज मिलेगा जिसका एक छोटा भाग समाजके और एक बड़े भागको मूर्खता और दासतामें फँसाये रखकर उसका खून चूसना, और उसे अपने सुख-साधनका यंत्र समझना, अपना जन्मसिद्ध और ईश्वर-प्रदत्त अधिकार समझता हो ?

अन्य देशों और मज़हबोंकी अवस्था भी प्रायः इसी तरहकी है। योरोपने भी अन्यदेशीय जातियोंके साथ वैसा ही व्यवहार किया है जो हम अभीतक अपने यहाँकी नीची जातियोंके साथ कर रहे हैं। पाश्चात्य जातियोंकी पशुता, स्वार्थान्धता और अत्याचारप्रियताके कारण बीऔथिक, टसमेनियन, ऑस्ट्रेलियन आदि जातियोंका संसारसे प्रायः नामशेष हो गया है। अमेरिकाकी डीलावेयर्स, स्यूक्स, चेअनीज़ आदि जातियाँ लोप हो चुकी हैं। सभ्य योरोपके सभ्य अधिवासियोंने असभ्य जंगली जातिकी स्त्रियोंका कोड़ोंकी मारसे प्राण हरण किया है, पुरुषोंके पीठकी खालको चिमटोंसे पकड़ पकड़ कर खींचा है, मनुष्यको बलात्कार गुलाम बनाकर रक्खा है और इस कार्यमें लाखोंकी मृत्यु हुई है। क्या क्रिस्तान मज़हबके पास इसका कोई उत्तर है ? विजित देशोंकी कितनी स्त्रियोंका इन्होंने सतीत्व हरण किया है क्या इसकी कोई गिनती कर सकता है ? गिल्बर्ट मुरे महोदय लिखते हैं—“मुझे स्वयं एक ऐसे मनुष्यसे भेट हुई है, जिसने मुझसे कहा था कि मैं काले मनुष्योंको देखते ही गोली चलाकर उन्हें मार डालता था। एक दूसरा मनुष्य मुझसे कहता था कि मैंने काले मनुष्योंको मारनेके लिए भोजनमें ज़हर मिलाकर उनके निवासस्थानके चारों ओर छींट दिया था और इससे बहुतसे काले आदमी चूहेके समान मर गये थे। मेरे भाई क्वीन्सलैण्डमें एक मनुष्यके मेहमान थे, जिसने नदीके एक

स्थानको दिखलाकर उनसे कहा था कि 'मैंने एक दिन यों ही विनो-दार्थ, सिर्फ नदीमें रहनेवाले घड़ियालोंका तमाशा देखनेके हेतु—काले मनुष्यके एक परिवार—पति पत्नी और बच्चे—को नदीमें डाल दिया था।' न्यू सौथ वेल्समें काले लोगोंको निमंत्रित करके विष मिला हुआ भोजन दिया जाता था।" क्या क्रिस्तान मज़हब इन सब बातोंके जवाब देनेका सहस कर सकता है? श्वेताङ्ग ईसाइयोंने अमेरिकाके रेड इण्डियन बच्चोंको निशाना बना बना कर बन्दूक चलानेका अभ्यास किया है, स्त्रियोंकी अँतड़ियाँ निकाली हैं, मनुष्योंके सिरोंकी खाल खींची है। क्या इसके उत्तरमें कोई भी बात कही जा सकती है?

ज्यादह दूर जानेकी क्या जरूरत है? भारतमें ही पूर्वकालीन योरोपि-यनोंने जो करतूतें की है उनका स्मरण कीजिए। इम्पीरियल गज़ेटियरके लेखानुसार पोर्तगीज लोग हिन्दुस्तानमें तिजारतके निमित्त नहीं, वरन् क्रिस्तान मज़हबके संरक्षक और योद्धाके स्वरूपमें आये थे। अनेक प्रतिष्ठित लेखकोंने लिखा है कि उनके उस समयके इतिहासमें सिवाय लूटपाट, कत्ल और खूनके और कुछ नहीं है। वे मित्रताका उत्तर विश्वासघातसे और स्नेहका उत्तर छलसे देते थे। हिन्दू मन्दिरोंका लूटना उनके लिए साधारण बात थी। सोलहवीं शताब्दीके मध्य भागमें पोर्त्तगीज़ोंका शासन क्रिस्तान पादरियोंके हाथोंमें आगया और तब सन् १५६० में भारतमें भी पवित्र इन्क्वीजीशन (Inquisition) की स्थापना हो गई। 'गोआ' प्रभृति स्थानोंके हिन्दू बलात्कार क्रिस्तान बनाये गये, उन्हें कैद किया गया और नाना प्रकारकी यंत्रणायें पहुँचाई गईं। मन्दिर और मस्जिदें तोड़ी गईं और अत्याचारसे तंग आकर बहुतसे लोग अपने बापदादाओंकी भूमिको छोड़ कर भाग गये। क्या क्रिस्तान मज़हब इसके उत्तरमें होंठ तक हिला सकता है? पुर्त-

गालियोंके सिवा अन्य योरोपियनोंके कृत्य भी लगभग इसी तरहके थे। इसे कई लेखकोंने स्वीकार किया है कि अठारहवीं शताब्दीके मध्य भागमें मुसल्मान-शासित बंगालके कृषकोंकी दशा फ्रांस और जर्मनीके कृषकोंसे कहीं अच्छी थी। क्या भारतके क्रिस्तान शासक यह बात इस बीसवीं शताब्दीमें भी कहनेका साहस कर सकते हैं? पाठकोंने डिगवी आदि लेखकोंकी पुस्तकोंमें ये सब बातें अनेक स्थानोंपर पढ़ी होंगी। देशकी दरिद्रता और दुरवस्था उनसे छिपी हुई नहीं है। इस लिए यहाँ पर अधिक विस्तारकी ज़रूरत नहीं जान पड़ती।

सारांश यह है कि मज़हबने अत्याचार और अन्यायका कभी विरोध नहीं किया है। उसने अत्याचार-पीड़ितों और अबलोंको कभी कोई मदद नहीं दी है। उसकी सहानुभूति सदा बलवानों और अधिकार-प्राप्त लोगोंके साथ रही है। उसकी उन्नति भी उत्पीड़न और अत्याचारके द्वारा ही हुई है। मज़हबने सदा शासकों और अत्याचारियोंका हाथ पकड़ा है और राजाओं और शासकोंने सदा मज़हबको अवलम्ब दिया है। पुरोहित और राजा लोग सदा ही साथ रहे हैं। मज़हबका सारा इतिहास इसी प्रकारका है। सब देशोंकी अवस्था इसी तरहकी रही है। हमारे देशमें भी जब भगवान बुद्धके आघातोंसे पुरोहितशक्ति और एक तरहसे राजशक्ति भी छिन्न भिन्न हो रही थी, तब पुरोहितोंने अपना जाल फैला दिया था और उसी समयसे भारतमें अनेकों उत्तरदायित्वशून्य, उच्छृंखल राज-शक्तियोंका जन्म होना शुरू हुआ था। *मज़हब सदा अत्याचारका पृष्ठ-पोषक रहा है।*

योरोपीय स्वतंत्रतामें मज़हबका कोई हाथ नहीं है।

वर्तमान योरोपको स्वतंत्र बनानेमें वहाँके मज़हबने कोई भाग नहीं लिया है, यह इतिहासके सभी विद्यार्थियों पर विदित है। स्वतंत्रता देवीके सारे ही योरोपीय उपासक अविश्वासी हैं। फ्रेंच-विप्लवके सारे प्रवर्तक अविश्वासी और नास्तिक थे। अमेरिकन-विप्लवका आध्यात्मिक पिता टॉमस पेन कट्टर क्रिस्तान नहीं था। डैण्टन, डेसमूलिन्स, कण्ट्ज़, मैरट, हेबर्ट, चौमट, वार्नेव्ह, मैडम रोलैण्ड आदि सभी लोग निरीश्वरवादी थे। इटली, स्पेन, पोर्तुगाल, जर्मनी और रशिया प्रभृति देशोंमें जितने लोगोंने स्वतंत्रताके सन्देशका घोषण किया है वे सबके सब अविश्वासी थे। मैज़िनी भी (यद्यपि वह एक धार्मिक पुरुष था) क्रिस्तान न था। स्वतंत्रताके सारे युद्धोंमे लोगोंको केवल बादशाहों और राजाओंसे ही नहीं वरन् पुरोहितों और पुजारियोंसे भी लड़ना पड़ा है। रशियाके प्रायः सभी स्वातंत्र्योपासक वीर—हर्टज़ेन, बौकिन, स्टेपनियैक, कुरोपाटकिन और लेनिन—निरीश्वरवादी या स्वतन्त्र-विचारक हुए हैं। संसारके प्रायः सबके सब साम्यवादी नेता अविश्वासी हैं। इटलीका प्रधान साम्यवादी नेता एनरिको फ़ेरी कहता है कि इटलीके मजदूरोंको किसी मज़हबकी आवश्यकता नहीं है। फ्रांसके लोक-मान्य नेता मज़हबको फ़जूल समझते हैं। जर्मनी, बेल्जियम, स्कैण्डिनेविया प्रभृति देशोंके साम्यवादी नेता भी अविश्वासी हैं। इसी तरह प्रायः सभी देशोंके सभी मजदूरसंघ स्थापित-मज़हबके विरोधी हैं।

इँग्लैण्डकी अवस्था भी ऐसी ही है। पेन और शेली ही इँग्लैण्डमें फ्रेंच-विप्लवके आदर्शको पहले पहल लाये थे और ये दोनों पुरुष अविश्वासियोंमें अग्रगण्य थे। पेन वोलटॅयरका शिष्य था और शेली कट्टर निरीश्वर-

वादी और वेदान्ती था। विलियम गौडविन, मेरी वुलस्टेन्क्रौफ्ट, टौमस हौल्क्राफ्ट, हौर्न टूक, आदि सभी लोग स्वतंत्र विचारक थे। उन्नीसवीं शताब्दीके साम्यवादका जन्मदाता रॉबर्ट ओवेन निरीश्वरवादी था। मज़दूर-संघका जन्मदाता फ्रैंसिस प्लेस अज्ञेयवादी था। जेरीमी बेन्थम, जेन्स मिल, सर फ्राँसिस बरटेड, जान स्टुअर्ट मिल, विलियम मोल्सवर्थ, ली हण्ट, जार्ज बर्कबेक, विलियम एलिस प्रभृति सभी लोग निरीश्वरवादी या अज्ञेयवादी थे। कौवेट, हेनरी विन्सेण्ट, ओब्रायेन, ओकोनर, लौवेट, जोन्स होलियोक इत्यादि लोग अज्ञेयवादी थे। चार्ल्स ब्राडला मशहूर निरीश्वरवादी है। निरीश्वरवादी शेलीने ही राज-सिंहासनों, पूजाकी वेदियों, न्यायालयों और कैदखानोंको तोड़ डालनेका सन्देश इँग्लैण्डको दिया था। अधिक नामोंके लिए अब स्थान नहीं है। अन्तमें मार्क्स, एंजेल्स, फूरियर, विक्टर ह्यूगो इत्यादिके नामको लेकर ही सन्तोष करना पड़ता है।

क्रिस्तान मज़हब और गुलामीकी प्रथा।

गुलामीकी प्रथाके सम्बन्धमें एक समय क्रिस्तान मज़हबके क्या विचार थे, इसपर पहले ही बहुत कुछ लिखा जा चुका है*। यहाँ एक प्रोटेस्टेण्ट मतके प्रचारक मेलांकथनका कथन और प्रकट किया जाता है। उसने कहा था कि "क्रिस्तान इतने दुरात्मा, अभद्र और रक्तपिपासु हैं कि इनका अनुशासन अब पहलेकी अपेक्षा भी अधिक कड़ेपनके साथ करना चाहिए।"

सेण्ट ऑगस्टाइन आदि क्रिस्तान साधुओंने गुलामीकी प्रथाका अच्छी तरह प्रतिपादन किया है। कैनन लॉ अर्थात् मज़हबी क़ानून

---

* देखो अध्याय चौदह, पृष्ठ ५७।

गुलामीकी प्रथाको पूर्णतया स्वीकार करता था। चर्च अर्थात् धार्मिक मठ भी बहुतसे गुलामोंके स्वामी हुआ करते थे और इन मठके गुलामोंको स्वतंत्र करना सवथा वर्जित था। अधिकतर गुलामोंके स्वामी साधु लोग ही थे। सन् १०५१ में रोममें एक 'धर्मपरिषद्' बैठी थी और उसमें यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था कि जिन पादरियोंने शादी कर ली हो उनकी पत्नियाँ दासियाँ बनाई जायं और वे देशभरके गिरजोंमें बाँट दी जायँ। पोप द्वितीय अर्बनने सन् १०८९ में इस तरहका एक एलान भी कर दिया था कि विवाहित पादरियोंकी पत्नियाँ वास्तवमें दासियाँ हैं। देशको अविश्वाससे मुक्त करनेके लिए तथा धर्मको शुद्ध रखनेके हेतु ये हतभागिनी स्त्रियाँ उस समयके व्यभिचार और पशुताग्रस्त सरदारोंके हवाले कर दी जातीं थीं और ये सरदार लोग इस लोभसे गिरजेके आदेशोंका पालन करनेमें बड़ी तत्परता दिखलाते थे। खैर इसे तो छोड़िए; क्रिस्तान योरोपकी आधुनिक दास-प्रथाको तो पाठकगण जानते ही होंगे। हमारा तात्पर्य्य योरोपके दास-वाणिज्यसे है। किस निर्दयताके साथ हब्शी लोग पकड़े जाते थे और पकड़ कर गुलाम बनाये जाते थे एवं गुलामोंका व्यापार कितना लाभदायक होता था, यह योरोपीय इतिहाससे परिचित सभी पाठक जानते हैं। इन गुलामोंकी मददसे ही अमेरिका आबाद किया गया था। यह इतिहासकी बहुत साधारण बात है। उस समय गुलामोंको पकड़ कर बेचना ही बहुतसे लोगोंका व्यवसाय हो गया था। इसके लिए कई बड़ी बड़ी कम्पनियाँ खुल गई थीं। आफ्रिकाके पश्चिमी किनारे पर योरोपके प्रायः सभी देशोंके व्यापारियोंके किले बने हुए थे। दलके दल गुलाम पकड़ कर इन किलोंमें लाये जाते और जहाजों पर लाद लाद कर वहाँसे अमेरिका या वेस्ट इण्डिया द्वीपपुंजमें पहुँचाये जाते थे। पकड़े जानेके समयसे लेकर इच्छित

स्थानमें पहुँचने तक उन बेचारोंमेंसे कितनोंकी मृत्यु हो जाती थी, इसका हिसाब लगाना असम्भव है। जहाज़ पर सवार किये गये लोगोंमेंसे यदि दो गुलाम भी जीते जागते अमेरिका या वेस्ट इण्डीजके टापुओंमें पहुँच जाते तो व्यवसाय लाभदायक समझा जाता था!

इस हृदयविदारक रोजगारके विषयमें विनउड रीडने अपनी विख्यात पुस्तक (Martyrdom of Man) में लिखा है कि "जहाजके निचले हिस्से पर अभागे गुलाम इस तरह ठूँस ठूँस कर भर दिये जाते थे कि जिस तरह किसी वर्तनमें छोटी छोटी मछलियाँ भर दी जाती हैं। गुलाम लोग समझते थे कि सभी श्वेताङ्ग पुरुष नरमांसभक्षक हैं, उनकी लाल टोपियाँ हब्शियोंके रक्तसे रँगी जाती हैं और वे जिस साबुनका व्यवहार करते हैं वह हब्शियोंका भेजा निकाल कर बनाई जाती है। पकड़े जाने पर गुलामलोग अक्सर खाना पीना छोड़ देते थे। ऐसी दशामें एक यंत्रके द्वारा—जिसे डाक्टर लोग व्यवहार करते हैं—उनका मुँह जबर्दस्ती खोला जाता और उनकी इच्छाके विरुद्ध उन्हें भोजन कराया जाता था। चूँकि स्वास्थ्यके लिए कुछ व्यायाम भी आवश्यक है, इसलिए उन्हें हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ पहने पहने ही जहाज़ पर उछलने कूदनेकी आज्ञा दी जाती थी। यदि वे इस आज्ञाके पालनमें जरा भी आगा पीछा करते थे तो कैटो-नाईन-टेल्स (Cat-o-nine-tails) से उनकी खबर ली जाती थी। यह एक प्रकारका चाबुक होता था जिसमें नव लड़ियाँ होती थीं और प्रत्येक लड़ीमें तीन चारसे कम गिरह न होते थे। इससे केवल उनके शरीरका ही नहीं फेफड़ोंका भी व्यायाम हो जाता था। क्योंकि चोट लगने पर चिल्लाना स्वाभाविक है। परिश्रमसे शरीरमें रक्तसंचालन होता है और रक्त-संचालनके द्वारा पाचनशक्ति तेज होती है। इस प्रकार उनका मांस

और सेमका भोजन पच जाता था ! तौ भी गुलाम इतने हठी होते थे कि उनमेंसे अधिकांश प्राण त्याग कर देते थे। कोई कोई तो जहाजसे समुद्रमे कूदकर ही इस दुःखसे छुटकारा पा लेते थे। वेस्ट इण्डिया द्वीपपुंजमें इन गुलामोंको काम करना सिखलाया जाता था और तब उन्हें क्रिस्तान भूमिमें रहनेका सौभाग्य प्राप्त होता था ! परन्तु फिर भी उनके दुःखोंका अन्त नहीं होता था। भोजनको जला देनेके कारण यदि किसी गुलाम रसोइएको कोई मालकिन चूल्हेमें डाल देती, यदि कोई चीनीका व्यवसायी किसी गुलामको खौलते हुए चीनीके कड़ाहमें डाल देता, यदि कोई भागा हुआ गुलाम शिकारी कुत्तोंके द्वारा नोचवाया जाता और तत्पश्चात् उसका शरीर क्षत विक्षत किया जाता अथवा जजीरों द्वारा जीवित ही लटका दिया जाता, यदि कोई बूढ़ा बलहीन गुलाम मरनेके लिए निराश्रय छोड़ दिया जाता—तो इन सब अत्याचारोंको वेस्ट इण्डियन कानून चुपचाप देखता रहता था। गुलाम, वाटिकेश्वरों (Planters)का रुपया था और उनको उस पर पूरा अधिकार प्राप्त था। सिर्फ दूसरे मालिकके गुलामको मारनेके अपराधमें लोगोंको सज़ा होती थी। और सज़ा भी कितनी ? केवल जुर्माना—अर्थात् गुलामका आर्थिक मूल्य ! बिना किसी तरहकी अतिशयोक्तिके यह निःसङ्कोच कहा जा सकता है कि गत शताब्दिमें हब्शियोंके साथ जैसा व्यवहार किया जाता था आज ब्रिटिश साम्राज्यमें कुत्तों और घोड़ोंके साथ उससे कहीं अच्छा व्यवहार किया जाता है !"

मनुष्यके रक्त और मांसका यह व्यवसाय यों तो इँग्लैण्डमें सन् १८०१ ई० में बन्द कर दिया गया; परन्तु इसका मूलोच्छेद १९ वीं शताब्दीके मध्य भागमें ही हो सका। क्रिस्तान अमेरिकासे तो इस प्रथाका लोप हुए अभी ६० वर्ष भी पूरे नहीं हुए हैं। परन्तु इस प्रथाको रोकनेका

श्रेय क्रिस्तान मजहब या और किसी मजहबको नहीं, वरन् संसारके अविश्वासी और प्रचलित मज़हबके विरोधी लोगोंको ही प्राप्त है । सबसे पहले स्वतंत्रता देवीके पुजारी फ्रेंच विप्लववादियोंने ही इसका मुँह काला किया था । यह सन् १७९४ की बात है । इसके बाद अमेरिकामें भी इसका आन्दोलन शुरू हुआ और वहाँ इसकी नींव अविश्वासी टौम पेनने डाली । यह वही टौम पेन है जिसकी रची हुई किताबों तकको बेचनेके लिए अनेक मनुष्योंकी जायदादें ज़ब्त की गई थीं और बहुतोंको कारावासका दण्ड दिया गया था।* उत्तर और दक्षिण अमेरिकामें जिस समय गुलाम-प्रथाको उठानेके निमित्त युद्ध छिड़ा हुआ था—उस समय साधारण लोग 'अविश्वासी' और 'दासप्रथा-विरोधी' इन दोनों शब्दोंको पर्य्यायवाची शब्द समझते थे।

यह तो हुई कुछ समय पहलेकी बातें, अब जरा हालकी प्रतिज्ञाबद्ध कुलीप्रथा पर भी विचार कीजिए। ऐसा कौन भारतवासी है जो इस पापपूर्ण प्रथासे परिचित न हो । श्रीमती हाइपेशिया ब्राडलौ बोनर अपनी पुस्तक (Christianity and Conduct)में लिखती हैं—"प्रतिज्ञा-बद्ध-कुली प्रथाको गुलामीकी छोटी बहन ही समझना चाहिए । क्योंकि यह भी गुलामीकी प्रथासे कम भीषण नहीं है । परन्तु सबसे पहले इसका विरोध एक अविश्वासीने ही किया था जिसका नाम सर हेनरी कॉटन है।"+ उक्त लेखिकाका ही कथन है कि "हम क्रिस्तान मजहबके विश्वबन्धुत्वके स्थापन करनेके सम्बन्धमें बहुत कुछ सुना करते हैं। परन्तु वास्तवमें यह विश्वबन्धुत्व कितना थोथा और खोखला है इसका पता

---

* See Penalties upon Opinion—by Hypatia Bradlaugh Bonner.

+ P. 33.

इस घटनाके द्वारा अच्छी तरह लग जाता है कि सन् १९१० में जो अन्तर्देशीय-रविवार-स्कूल-परिषद् (world's Sunday School convention) हुई थी उसमें काले या अन्य वर्णवाले लोगोंको श्वेताङ्ग लोगोंके साथ सम्मिलित होनेकी मनाही थी !"

लोगोंको दासतामें जकड़े रखनेके अभिप्रायसे मज़हब ज्ञान और शिक्षा का विरोध करता है।

इन्हीं कारणोंसे मज़हबने सदा ज्ञान और शिक्षाका विरोध किया है, क्योंकि ज्ञान-सम्पन्न और शिक्षा-युक्त होनेसे ही समाजकी निम्न श्रेणियोंमें असन्तोषका जन्म होता है । शिक्षाके द्वारा ही लोगोंको अपनी हीनावस्थाका ज्ञान होता है—उनके दिमागका मज़हबी आवरण हटता है—वे सोचने लग जाते हैं कि हम भी मनुष्य हैं और हमारे साथ भी मनुष्यका सा व्यवहार किया जाना चाहिए। शिक्षा-युक्त होकर ही लोग अपने अधिकारोंकी प्राप्तिके लिए चेष्टा करने लगते हैं। अतएव ज्ञान और शिक्षा मज़हबके बहुत बड़े शत्रु हैं और इसी लिए मज़हब उनका विरोध करता है। अँगरेज़ी इतिहाससे इसका एक बहुत अच्छा प्रमाण प्राप्त होता है। सन् १८०७ में प्राथमिक शिक्षाके प्रचारके लिए अँगरेज़ी व्यवस्थापिका सभामें एक बिल उपस्थित किया गया था; परन्तु हौस ऑफ़ लार्ड्स (House of Lords) ने उसे अस्वीकार कर दिया था। क्योंकि देशके प्रधान पादरी इसके बहुत बड़े विरोधी थे। उनका कथन था कि शिक्षाके द्वारा ग़रीब लोगोंके सदाचार और सुखको बहुत बड़ा धक्का पहुँचेगा। शिक्षित होनेसे वे क्रिस्तान मज़हबके विरुद्ध तर्कों और दलीलोंको पढ़ेंगे। इससे उनमें बड़ोंके प्रति आज्ञाधीनताका जो भाव है वह शिथिल हो जायगा। सन् १८२० में ब्रूहमने प्राथमिक शिक्षाके सवालको फिर उठाया और उसका बिल दो बार

पढ़ा भी जा चुका; परन्तु सारे क्रिस्तान सम्प्रदायोंने इतना बड़ा विरोध किया कि उसे अपना बिन वापस ले लेना पड़ा। उस समय विरोधी दलके लोग यहाँ तक माननेको तो तैयार हो गये थे कि लोगोंको बाइबल पढ़ाना चाहिए; परन्तु इससे अधिक शिक्षा देनेको—लिखना पढ़ना सिखलानेको—वे एकदम बेज़रूरी समझते थे।

गरज यह कि मज़हब मनुष्यकी उन्नतिके पथका काँटा है। यद्यपि मनुष्यकी आदि अवस्थामें मज़हबके द्वारा मनुष्यका बहुत कुछ उपकार हुआ है; परन्तु मनुष्य अब उस अवस्थाको अतिक्रम कर चुका है। मनुष्यकी आदि अवस्थामें लड़ाई और समाजिक अस्तव्यस्तताका युग था, इसलिए मज़हब उस अवस्थाके लिए उपयुक्त और लाभजनक हो सकता था *। परन्तु अब वह विकासके उस दर्जे पर आपहुँचा है जहाँ कि उसे अपने विचारोंके बदलनेकी ज़रूरत है। जिस समय मनुष्य पशुओंके तुल्य और असमाजिक था—जब उसने आज्ञाधीनताको नहीं सीखा था—जिस समय उसे नादिर और तैमूरके समान शासकोंकी ज़रूरत थी—उस समय अपने धार्मिक जीवनमें भी उसे एक पूर्ण-बल-सम्पन्न, अनन्त दण्ड देनेवाले यथेच्छाचारी ईश्वरकी आवश्यकता थी। जिस समय मनुष्यकी सामाजिक प्रवृत्तिका दृढ़ीकरण नहीं हुआ था—जिस समय वह स्त्रियों, दुर्बलों और निस्सहायों पर अत्याचार करता था—जिस समय वह निरन्तर लूट पाट और रक्तपातमें लगा रहता था—उसी समय उसने रक्त-पिपासु देवताओं या ईश्वरोंका आविष्कार किया था। प्राचीन समयमें मनुष्यका जीवन शायद ही पशुओंसे कुछ ऊँचा था। अतएव जीवन-संग्राममें भी युद्धके ही द्वारा निपटारा होता था। इस लिए उक्त पुराने समयके विचारों द्वारा इस

---

* देखो अध्याय पहला, पृष्ठ २०–२२।

समयके मनुष्योंका उपकार नहीं हो सकता। युद्ध और मज़हबमें सदा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। अतएव यदि मनुष्यकी वर्तमान अवस्थाके लिए युद्ध हानिकर है—और पूर्वके एक अध्यायमें× इसे प्रमाणित करनेकी चेष्टा भी की गई है—तो प्राचीन मज़हबों और मज़हबी विचारोंके द्वारा भी इस समय मनुष्यका कोई उपकार नहीं हो सकता।

मज़हब और सदाचारका विरोध स्पष्ट करनेके लिए इतना ही कहना पर्य्याप्त है कि मज़हबका उद्देश ईश्वरको प्रसन्न करना है और सदाचारका उद्देश्य मनुष्योंकी सेवा करना है। मज़हबी आदमीका ईश्वर सत्कर्मोंसे उतना प्रसन्न नहीं होता जितना कि पूजा या स्तुति, व्रत या उपवास, तपस्या या संन्यास तथा शरीरको नाना प्रकारके कष्ट देनेसे होता है। हम यह भी बतला चुके हैं कि ईश्वर-विश्वासके द्वारा हमें सत्य पथके अव-लम्बनमें सहायता नहीं मिलती *। जब संसारमें सब कुछ एक अनन्त सर्वशक्तिमान ईश्वरकी इच्छासे होता है—जब सारे दुःखों क्लेशों और यातनाओंके द्वारा ईश्वर संसारका भला करता है, तब हम क्षुद्र मनुष्योंको ईश्वरके कार्योंमें हस्तक्षेप करनेकी क्या ज़रूरत है? यहाँ पर हम एक लेखिकाकी कविताके कुछ अंशको उद्धृत किये बिना नहीं रह सकते—

The earthquake whelms
Its undistinguished thousands, making graves
Of peopled cities in its path—and this
Is Heaven's dread justice—ay, and it is well!
Why then should we be tender, when the skies
Deal thus with man?

× देखो छठा अध्याय, द्वितीय खण्ड–'युद्ध, जीवनसंग्राम और सदाचार।'
* देखो अध्याय बारहवाँ।

मज़हबके लिए सबसे अधिक आवश्यक वस्तु विश्वास है और शायद इसी लिए क्रिस्तान मज़हबने आठ, नौ, और दस दस वर्षके बच्चोंको भी अविश्वासके लिए दण्ड दिया है—परन्तु सदाचारके लिए कर्म आवश्यक है। विश्वास करने या मज़हबी कामोंके करनेसे ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है, सदाचारके द्वारा नहीं। मज़हबका सम्बन्ध विश्वाससे है आचरणसे नहीं। और यदि मज़हबका लगाव हमारे आचरणोंके साथ कुछ होता भी है, तो भी हम उसे नैतिक बातों पर पूरा ज़ोर देते हुए नहीं पाते। बल्कि मज़हब अनैतिक बातों पर ही अधिक ज़ोर देता है * । उदाहरणार्थ—क्या पहरना चाहिए और क्या नहीं, क्या खाना चाहिए और क्या नहीं, किस दिन खाना चाहिए और किस दिन उपवास करना चाहिए; × किस दिन काम करना चाहिए और किस दिन आराम करना चाहिए, ** इत्यादि।

मज़हब विश्वास-प्रधान है और सदाचार कर्म-प्रधान। नैतिक और मज़हबी कामोंकी भिन्नता।

---

* इस विषयमें पृष्ठ २११-१२ की टिप्पणी पढ़िए।

× एक मर्तबा कुछ मुसल्मान जहाजियोंको उत्तरध्रुवके क्षेत्रोंमें जाना पड़ा। उत्तरी प्रदेशके दिन रातकी अपेक्षा बहुत बड़े होते है। यह रमजानका महीना था और मुसल्मान इस महीनेमें रोजा रखनेके लिए बाध्य हैं। अतः वे दिनको भोजन नहीं कर सकते थे और कम्बख्त दिन किसी तरह खत्म ही नहीं होता था। आखिर कुछ लोगोंने तो इस नियमको तोड़ दिया किन्तु सत्तरह आदमी दृढ़ रहे और किसी प्रकार अन्न या जल न ग्रहण करनेके कारण उनकी मृत्यु हो गई!
—See Christianity and Conduct—by H. P. Bonner P. 22.

**प्रोटेस्टैण्ट इँग्लैण्डमें रविवारके दिन कानून द्वारा लोगोंको काम करनेसे या किसी प्रकारके विनोद इत्यादिमें भाग लेनेसे वर्जित किया जाता था। स्काटलैण्डमें बहुत दिनों तक रविवारके दिन अपने दरवाजे पर बैठना, स्नान करना, या हजामत

इतना ही नहीं; मज़हब कभी कभी सदाचारविरुद्ध काम भी करवाता है। हम क्रिस्तान इतिहासमें देखते हैं कि इब्राहीमने ईश्वरको प्रसन्न करनेके लिए अपने पुत्रका बध किया था। मज़हबके सभी विद्यार्थी जानते हैं कि मज़हबका रक्त और नर-बलिदानसे कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है +। हमारे भारतमें ये बातें अभीतक देखनेमें आती हैं। इस विषयमें शाक्त, वाममार्गी या कौलिक सम्प्रदायोंका नाम ले देना ही पर्य्याप्त है। हमारे देशके जनसाधारणका अबतक यह विश्वास है कि किसी पुल या मकानकी नीवमें बच्चेको जीवित पूर देनेसे देवता प्रसन्न होता है और काम निर्विघ्न समाप्त हो जाता है।

मज़हबका लक्ष्य स्वार्थ और सदाचारका लक्ष्य परार्थ है।

मज़हबका अस्तित्व स्वार्थ पर है और सदाचारका परार्थ पर। बल्कि मज़हब तो साफ़ तौरसे मनुष्यकी उपेक्षा करनेकी आज्ञा देता है। यद्यपि इन बातोंका सविस्तर वर्णन पूर्वके अध्यायोंमें किया जा चुका है; तथापि यहाँ पर देश-सेवा या मनुष्य-सेवाके विषयमें एक हिन्दू सम्प्रदायके मतको उद्धृत करनेके लोभको हम संवरण नहीं कर सकते। राधास्वामी सम्प्रदायकी एक पुस्तकसे एक अवतरण यहाँ पर दिया जाता है—

"अक्सर लोग बहुत कुछ ज़ोर इस बात पर देते हैं कि सबसे आला परमार्थ तो परोपकार और देशकी उन्नति करना है—मनुष्योंकी सेवा

बनाना अक्षम्य अपराध अनुमान किया जाता था। हम कई जगहों पर कह चुके हैं कि इस सम्बन्धमें हमारे देशकी अवस्था प्राचीन स्काटलैण्डसे अधिक भिन्न नहीं है। उदाहरणार्थ हम भी इतवार या मंगलवारके दिन तेल लगाना, सनीचर या मंगलको हजामत बनाना, इतवारके दिन सत्तू भूँजा या तिल खाना बुरा समझते हैं। उपवासोंकी कमी हमारे यहाँ भी नहीं है।

+पहले भी एक अध्यायमें इस बात पर कुछ प्रकाश डाला गया है।

मालिक ही की सेवा है—अभ्यासके लिये आज कल मौका नहीं है क्योंकि शरीरमें बल ही नहीं है और इतनी फुरसत कहां है कि परमार्थके निमित्त खोज व तलाश की जावे—लोग भूखों मर रहे हैं—अविद्या और बीमारियोंने भाईओंको दबा रक्खा है—दूसरे मुल्कके लोग अन्धाधुन्ध तरक्की कर रहे हैं और हमारे देशकी तिजारत बिल्कुल गायब हो रही है, इस लिये देशकी सेवा—कौमकी सेवा और परोपकार यही असल सच्चा परमार्थ आज कलके लिये है—इसको छोड़कर अपने उद्धार या मुक्तिके लिये चुपचाप कोशिश करना नेहायत खुदगर्जीकी बात है वगैरह वगैरह*" इस 'गलत समझौती' के उत्तरमें इस सम्प्रदायके गुरुने—

देशसेवा और मनुष्य सेवा पर एक हिन्दू सम्प्रदायका मत।

जो इस सम्प्रदायके अनुयायियोंके विश्वासके अनुसार स्वयं ईश्वर ही हैं और जिनका स्थान पृथ्वीके सभी अवतारों, राम, कृष्ण इत्यादिसे भी ऊँचा है—अपने मज़हबी दृष्टिकोणका परिचय पूर्णताके साथ दिया है। उन्होंने इस तर्कका—जिसको वे 'गलत समझौती' कहते हैं—विश्लेषण करके यह नतीजा निकाला है कि वस्तुतः इस तर्कके पीछे सांसारिक सुखोपभोगकी चाह है। अतएव सांसारिक सुखको ध्येय मान कर मनुष्यसेवा या देशसेवा करना सर्वथा हेय है। ×"जरा गौर करनेसे मालूम होगा कि इन ख्यालातकी तहमें दर असल खुदगर्जी और भोगविलासकी जबरदस्त चाह धरी हुई है—अंतरके अंतरमें मन चाहता है कि मुझको दूसरे मुल्कके बासियोंकी

---

* जिज्ञासा नम्बर १ हिन्दी (प्रकाशक—बाबू ब्रिजबासीलाल बी० ए० एल०एल० बी० वकील, अम्बाला शहर) पृष्ठ १५-१६ (प्रथम संस्करण १९१६)।

× उक्त पुस्तकका पृ० १६।

तरह धन हुकूमत और आदर मिले ताकि जिस तरहसे और लोग दुनियांके मजे ले रहे हैं मैं भी लेने लगूं और मेरी औलाद मेरे रिश्ते-दार और मेरे संगी सबके सब दूसरे कौमोंकी तरह फूलें और फलें।" आगे चल कर आपने कहा है कि नेता स्वार्थी होते हैं और देशसेवामें उनका वास्तविक उद्देश उनका निजी सम्मान और बड़ाई होती है। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि आपका यह कहना किसी हद तक सत्य हो सकता है; पर पशुप्राय और उच्छृंखल राजशक्तिके कठोर आघातों और अत्याचारोंके सहनेवाले सभी त्यागमूर्ति नेताओं पर यह अभियोग नहीं लगाया जा सकता। और यदि थोड़ी देरके लिए यह भी मान लिया जाय कि इन त्याग-वीर नेताओंके कार्य्य और आचरणका यथार्थ लक्ष्य सम्मान और बड़ाईकी लालसा ही है—यथार्थमें स्वार्थसे ही प्रेरित होकर वे दुःख और यातनायें सहन करते हैं, तौभी क्या उनका यह स्वार्थ मजहबी लोगोंके स्वार्थ—स्वर्गकी अभिलाषा, मुक्तिकी कामना—से उच्चतर नहीं है? कुछ और आगे बढ़ कर उन्होंने लिखा है कि "देश-प्रेमहीके द्वारा अक्सर लड़ाईओंका जन्म होता है।" किसी हद तक उनका यह कथन भी सत्य हो सकता है; परन्तु तौभी सरसे पैर तक बन्धनमें जकड़े हुए एक पराधीन देशकी सन्तानोंको इस तरहकी शिक्षा देना—अपने दुःख और शोकके निराकरण और प्रतिकार न चाहनेकी सलाह देना—कितनी कायरता, कापुरुपता और अकर्मण्यताकी बात है! अन्तमें संसारके दुःखों और यातनाओंको आप एक शब्दमें "तन वो मन सम्बन्धी" कह कर खत्म कर देते हैं और फ़र्माते हैं—"इसी तरह गौर करना चाहिए कि हर इन्सानमें अलावा तन व मनके निज जौहर सुरत यानी आत्माकी शक्ति मौजूद है—संसारमें अनेक प्रकारके दुःख

वो क्लेश तन वो मन सम्बन्धी फैल रहे हैं—आत्मबलके सामने तन वो मनकी शक्तियाँ निहायत तुच्छ व कमज़ोर हैं—आत्मानंदके मुकाबलेमें तन वो मनके भोगविलासके रस वा आनन्द झूठे व फीके हैं—आत्मिक दशाकी आजादगी व ज्ञानके सामने देह व मनका संग सख्त कैद वो तिमिरखण्डमें वासकी हैसियत रखता है—आत्माका परमात्मा यानी कुल मालिकसे अगर योग हो जावे तो परम आनंद परम ज्ञान और परम गति जो इन्सानकी आत्माको प्राप्त होंगे उनका वार पार नहीं है—फिर इस क़िस्मका मौक़ा और क़ाबालियत रखता हुआ अगर इन्सान अपने तुच्छ तन व मनहीकी सेवाको काफ़ी समझेगा और सेवा करके दूसरे लोगोंको तन व मनहीके छिनभंगी और तुच्छ सुख वा आनन्दके सामान पहुँचा कर मगन हो जावे तो सच्चे सेवकोंके मुक़ाबलेमें क्या हैसियत इसकी हो सकती है—अगर किसी वक्त *इसको सुमत आवे और दूसरोंकी फ़िक्रको तज कर यह तवज्जहके साथ खुद करनी करे* और आत्मशक्तिको जगावे, क्या उस वक्त आँख खुलने पर खुद इसको *अपनी पिछली परोपकार व उन्नतिकी काररवाई* वैसी ही न दरसेगी जैसा कि हम लोगोंको नादान बच्चोंकी कमाईके ख्यालसे पल्लेमें रेत व कंकर भर भरके लाना व बड़े हर्ष व फखरके साथ पेश करना और इस मूर्खतामें नाहक़ अपने बेशक़ीमती कपड़ों व बदनका मटियामेल करना मालूम होता है"

पन्द्रहवाँ अध्याय।

मज़हब और सदाचार।

६. मज़हब और सदाचारका ऐतिहासिक सम्बन्ध।

मज़हब और सदाचारका सम्बन्ध।

व्याप्तिवादकी रूसे भी यही निष्कर्ष निकलता है कि मज़हब और सदाचारके मध्य कोई कारणकार्यात्मक सम्बन्ध नहीं है तथा मज़हब और सदाचार दो पृथक् वस्तुयें हैं। निष्पक्ष विचारसे और सारे प्रमाणोंको ध्यानपूर्वक देखनेसे यह कहना ही पड़ता है कि मज़हब किसी प्रकार सदाचारका कारण नहीं हो सकता।

मज़हब-शून्य जातियोंमें सदाचार।

ऐसी अनेक असभ्य और जंगली जातियाँ हैं जो मज़हबसे सर्वथा शून्य हैं। यदि उनके मध्य कोई मज़हब है भी, तो बहुत ही साधारण तौरका। उनमेंसे बहुतोंमें एकेश्वर-वादका तो क्या देवताओंका भी जन्म नहीं हुआ है। परन्तु इन जातियोंके शुद्ध आचरणके सामने सभ्यसे सभ्य मनुष्योंको भी शर्मसे गर्दन झुकानी पड़ती है। यदि मज़हब ही सदाचारका कारण होता, तो ये मज़हब-शून्य जातियाँ क्योंकर सच्चरित्र हो सकतीं और 'मज़हबाच्छन्न' देशोंके लोग नीतिमें इतने कच्चे क्योंकर नज़र आते? सीलोनके प्राचीन बेदा लोगोंके बारेमें,— जो अभी तक योरोपियनोंके संसर्गमें नहीं आये हैं— लिखा है कि उनमें मज़हबका एकदम अभाव है। डाइनोंमें विश्वास

करनेको यदि मज़हब कहा जाय तो बात दूसरी है। नहीं तो उनके यहाँ और किसी तरहका मजहब नहीं पाया जाता। फिर भी अपने सत्यभाषणके लिए बेदा लोग जगत्-प्रसिद्ध हैं। वे विश्वास तक नहीं कर सकते कि कोई आदमी झूठ क्योंकर बोल सकता है। वे शान्त और निरुपद्रवी स्वभावके होते हैं और अपरिचितोंका यथेष्ट आगत-स्वागत करते हैं। उनके यहाँ जातिविभेद या श्रेणीविभेद नहीं है। दासप्रथाका भी उनके यहाँ अभाव है। उनके यहाँ लड़ाई भी नहीं होती। वे पशुओंके साथ भी दयाका व्यवहार करते हैं और उनके निरर्थक सतानेको बुरा समझते हैं। परस्परकी सम्पत्तिका उनके यहाँ इतना सम्मान है कि स्वामीकी आज्ञा लिये विना वे किसी दूसरेके पेड़से केलेका पत्ता भी नहीं काटते। एस्किमो लोगोंमें जब कभी कोई सील मारा जाता है तो वह उस छोटे समाजके सारे मनुष्योंमें बराबर बराबर बाटाँ जाता है और उनमेंसे कोई आदमी अपने हिस्सेसे अधिक लेना नहीं चाहता।

उनके यहाँ शासनप्रथाका प्रायः अभाव ही है, तौभी वे शांत और धीर ही होते हैं। उनके सम्बन्धमें एक लेखक कहता है कि—" उनका स्वभाव बच्चोंका सा है और बच्चोंहीके सदृश वे मामूली और छोटी छोटी वस्तुओंसे प्रसन्न होते हैं। उनकी सहनशक्ति सभ्य मनुष्योंसे कम नहीं है और उनमेंसे बाज़ लोग तो मृत्युपर्य्यन्त भी अधीर नहीं होते। उनके यहाँ ईश्वरविश्वासका फीकासा भी प्रतिबिम्ब दृष्टि-गोचर नहीं होता। फिर भी वे अपने अन्तिम भोजनको दूसरोंको दे-कर खाते हैं और अबलों, बूढ़ों और निस्सहायोंकी रक्षामें निरन्तर तत्पर रहते हैं। उनमें मादक वस्तुओंका प्रचार एकदम नहीं दीख पड़ता। वे सादे और स्वच्छ स्वभावके होते हैं।" मध्य आस्ट्रेलियामें

बसनेवाली जंगली जातियोंका भी यही हाल है। वे देवता, ईश्वर या स्वर्ग नरक इत्यादिमें जरा भी विश्वास नहीं करते, फिर भी नैतिक नियमोंका पालन करते हैं। ब्रिटिश नार्थ अमेरिका तथा अमेरिकाके अन्य भागोंमें बसनेवाली कुछ जंगली जातियोंके बारेमें भी—जिनमेंसे कुछ तो सदाके लिए संसारसे अन्तर्धान हो गई हैं—ऐसी ही बातें लिखी गई हैं। उनकी ईमानदारी, अतिथिसत्कार और पवित्रताकी बहुत प्रशंसा की गई है। हडसन बे कम्पनीने उनके साथ चालीस वर्ष तक तिजारत की; किन्तु इतने दिनोंमें कम्पनीकी तुच्छसे तुच्छ वस्तु भी कभी चोरी नहीं गई और आश्चर्यकी बात यह है कि कभी कभी कम्पनीका एजेंट लगातार कई महीनोंतक अपने स्टोरको किसी रेड इण्डियन मनुष्यहीकी अध्यक्षतामें छोड़ देता था और कभी कभी तो कम्पनीका गोदाम बिना किसी अध्यक्ष या निरीक्षकके छोड़ दिया जाता था। ये लोग चोरी करनेको, झूठ बोलनेको, आलस्यको, व्यभिचार और आत्मश्लाघाको, लड़ने झगड़ने और भीरुताको, बुरा और निन्दनीय समझते हैं और सफाई, स्वच्छता, सत्य, ईमानदारी, बहादुरी, शुद्धाचरण, इत्यादिको उत्तम समझते हैं। उनके यहाँ कोई ईश्वर या देवता नहीं पाया जाता। वे ऐसे भूतप्रेतोंमें भी विश्वास नहीं करते कि जिनकी पूजासे रक्षा और सहायता प्राप्त हो सके।

सदाचारका जन्म। सदाचार और सामाजिकता।

इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि मजहब और सदाचार दो भिन्न वस्तुयें हैं। सदाचार मजहबसे स्वतंत्र है और मजहब सदाचारका पिता नहीं हो सकता। सदाचारका जन्म समाजके द्वारा हुआ है। यह हमारे संचित अनुभवोंका फल है। सदाचार हमारी उन्नतिका कारण और हमारे भाग्यका निर्माता है। सदाचार जीवनका नियम है।

सदाचारके द्वारा ही मनुष्य मनुष्य हुआ है। वैयक्तिक जीवन तथा सामाजिक जीवनको क़ायम रखना ही सदाचारका उद्देश है। हमारी जीवित रहनेकी इच्छासे ही सदाचारका जन्म हुआ है। इसी लिए असभ्यसे असभ्य मनुष्योंमें भी—जिनके यहाँ किसी तरहका कोई मज़हब दृष्टिगोचर नहीं होता-हम एक प्रकारके धर्मशास्त्रको—सामाजिक जीवनके कुछ नियमोंको—विद्यमान पाते हैं।

सदाचार मज़हबके बनाये नहीं बनता। यह स्वयं प्रकृतिकी व्यवस्था है। जिस प्रकार स्वार्थपरता मनुष्यस्वभावका एक अंग है, उसी प्रकार निस्स्वार्थता भी मनुष्य-स्वभाव-संगत है।

जनन-प्रवृत्ति और सदाचार।

सातवें अध्यायमें सदाचारकी उत्पत्तिके विषयमें जो कुछ लिखा गया है उससे विदित होता है कि सदाचारकी नीव कितनी गहरी और मज़बूत है। उस अध्यायमें बतलाया गया है कि प्रकृतिने जातीय जीवनको क़ायम रखनके लिए प्रत्येक व्यक्तिको किस प्रकार अपना क्रीत-दास बनाया है—उसने प्रत्येक व्यक्तिके मध्य अपनी संख्याके बढ़ानेकी किस प्रकार अदमनीय इच्छा उत्पन्न कर दी है। और वहाँ यह भी बतलाया गया है कि सदाचारकी जड़ यही है।

जनन-प्रवृत्ति ही सदाचारकी जननी है। वस्तुत: एच०जी० वेल्सके शब्दोंमें समयके करघे पर जनन-कार्यके ताने भरनेहीका नाम जीवन है *। इस नज़रसे देखने पर मनुष्यका जीवन अत्यन्त ही सरल और सीधा देख पड़ता है—वह स्वभावत: तीन खण्डोंमें विभक्त पाया जाता है। आरम्भकाल—जिसमें जीवनकी वृद्धि और पुष्टि होती है, माध्यमिक काल—जिसमें मनुष्य इस सर्वोपरि कार्यके सम्पादनके

* See " Mankind in Making, Ch. I

लिए उन्मत्त होता है, उसमें धीरता, वीरता, उत्साह, महत्त्वाकांक्षाका समावेश होता है और वह किसी रमणीके प्रेमपाशमें आबद्ध होता है। अन्तमें, संतान और परिवारका पालन-पोषण ही मानव-जीवनका लक्ष्य हो जाता है। पोते पोतियोंकी तोतली और अर्थ-शून्य भाषाही-में अन्तको मनुष्यका जीवन विलीन हो जाता है। संक्षेपमें यही जीवनका इतिहास है। प्रेम, गृह, और पुत्र पुत्री ये जीवनके हृदय-कोरसे उच्चरित शब्द प्रतीत होते हैं। अप्रत्यक्ष रीतिसे भी मनुष्यके सारे कार्यों और चेष्टाओंका उद्देश यही नज़र आता है। मनुष्य कठिन परिश्रम करके केवल अपने ही लिए नहीं, वरन् अपने पुत्र पुत्रियों और परिवारके लिए भी जीविकोपार्जन करता है। मनुष्य केवल दूसरोंहीके लिए घर बनाता है, बगीचे लगाता है। उसके सामाजिक और राजनैतिक प्रयासोंका उद्देश भी भावी मनुष्योंका कल्याण होता है। मनुष्य स्वयं कुछ नहीं है, वह कालस्रोतके दोनों किनारों--भूत और भविष्य--को मिलानेवाला पुल मात्र है। प्रकृति जातीय जीवन—बड़े जीवन--के सामने वैयक्तिक जीवनके महत्त्वको सदा गौण समझती है।

इस प्रवृत्तिकी दृढ़ताका पता और बातोंसे भी लगता है। साधारण मनुष्य जिन पुस्तकोंको पढ़ता है उनका विषय प्रेमी और प्रेमिकाका प्रणय ही होता है। उसके नाटकोंका विषय भी भिन्न नहीं होता। उसके संगीतसे भी प्रेमकी ही ध्वनि निकलती है। मनुष्यके पाप और पुण्यके विचारोंमें भी इसी भावको प्रधानता प्राप्त है। प्रायः प्रत्येक देश और जातिके व्यावहारिक आचारोंका और नीतिबुद्धिका मुख्यतः पुरुष स्त्रीके संसर्गसे ही सम्बन्ध है।

सिर्फ मानव-जीवन ही नहीं, वरन् समस्त जीवनका मूल मंत्र यही है। एक महान् जन्मस्थानके सिवाय—जिसमें सदा ताजे और नूतन

प्राणका संचार और नूतन जीवनका विकास होता रहता है—संसार और कुछ नहीं है। यदि संसारसे इस एक वस्तु जननकार्यको निकाल दिया जाय, तो संसारमें और क्या शेष रह जायगा ? सारा विश्व निस्सार और निष्प्रभ प्रतीत होने लगेगा। समस्त संसार सौन्दर्य्यहीन श्मशान मालूम होने लगेगा। फूलोंसे सुगन्ध विदा होते दिखेगी, निर्झरोंका झरझरनाद प्रस्थान करता हुआ नज़र आयगा, पक्षियों-के गानमेंसे मधुरता पयान करती हुई दिखेगी, पृथ्वीकी उर्वराशक्ति गायब होती नज़र आयगी। सर्वत्र उजाड़, फीकापन, उच्छ्वासहीनता और मृत्यु नज़र आयगी।

जीवन-संग्राम।

विकाससम्बन्धी जीवन-संग्राम तथा प्राकृतिक चुनावके नियमोंकी व्याख्या करते समय हम यह दिखला चुके हैं कि मानवजातिके लिए उसकी आदि अवस्थामें, तथा पशुसंसार या वनस्पति-जगतके लिए वे नियम कितने ही ठीक क्यों न रहे हों; परन्तु मानव-संसारकी उन्नति दूसरे नियमोंके द्वारा हुई है। मनुष्य अब जिस अवस्थामें पहुँच चुका है उसमें उसको व्याघ्रकी सी हिंसकता और भेड़ियेकीसी रक्त-पिपासाकी आवश्यकता नहीं है। हम युद्ध-मय जीवनको सर्वथा हेय भी प्रमाणित कर चुके हैं। मानव-जगतको छोड़कर अन्य सभी स्थानोंमें हम निरन्तर लूट-खसोट, मार-काट, अबलोंके मुखका कौर छीनना और उदरस्थ कर जाना ही देखते हैं; परन्तु मानवोंमें हमें यह जीवन-संग्राम इतने नग्न और भीषण स्वरूपमें नहीं दिखलाई देता।

कारण स्पष्ट ही है। हम यह प्रमाणित कर चुके हैं कि मनुष्यकी उन्नति सदाचार या सामाजिकताके द्वारा हुई है और युद्ध-मय अवस्था सामाजिकताके लिए प्रतिकूल है। उसकी सामाजिकताहीके कारण मनुष्यको अपनेसे अधिक बलवान् शेर और चीतों, भेड़ियों और

जीवन-संग्राम और सामाजिकता ।

बारहसिंघों, हाथी और गेंड़ों, भैंसों और घोड़ों पर विजय प्राप्त हुई है । अतएव मनुष्यका कल्याण इस सामाजिक प्रवृत्तिको दृढ़तम करनेमे ही है । यद्यपि सर्वसाधारणके सम्बन्धमें यह बात नहीं कही जा सकती; पर मानवजातिके हितैपियोंने इस तत्त्वको अवश्य हृदयंगम कर लिया है । इसी लिए हिंसकता, निर्दयता, बलाभिमान, परपीड़न, छल, स्वार्थपरता इत्यादि भाव जो पशुसंसारके लिए और शायद मानवजातिकी आदि अवस्थाके लिए भी अत्यन्त आवश्यक और उपयोगी गुण थे—मानवसमाजमें दुष्कर्म और पाप—दोष और अपराध—कहे जाते हैं और इनके लिए कारावास और मृत्युकी सजा दी जाती है ।*

अतएव मानव-जीवनकी उन्नतिका नियम केवल घोर जीवन-संग्राम—अन्धाधुन्ध लड़ाई नहीं है । सामाजिकता या सदाचार ही—विकासका नियम है—जोकि समस्त प्रकृतिमे पाये जानेवाले भीषण युद्ध, संग्राम, या नोच खसोटसे एकदम भिन्न है । बल्कि सामाजिकताका उद्देश इस भीषण युद्धको कम करना है । जीवन-संग्रामका नियम स्वार्थ है, इसमें विजयके लिए आवश्यक वस्तु बलाभिमान और हृदय-हीनता हैं; परन्तु समाज और नीतिकी आज्ञा आत्मदमन, आत्मसंयम और परार्थवाद है । जीवनसंग्रामके नियमकी आज्ञा है—"खबरदार कभी किसीके प्रति दया न दिखलाना, सदा अपना हित साधन करना, प्रतिस्पर्द्धियोंको सदा अपने पैरोंसे कुचलते रहना, अन्यथा इस

---

* See Huxley's Lecture on Evolution and Ethics (Romanes Lecture 1893); collected Essays by T. H. Huxley Vol. IX, P. 52.

संसारमें तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं है; " परन्तु नीतिकी आज्ञा दूसरी है। सदाचार हमें दूसरोंको पैरोंसे कुचलनेकी नहीं, वरन् उनकी सहायता करनेकी, उनके प्रति सहृदयता दिखलानेकी, आज्ञा देता है। सदाचार आज्ञा देता है कि दूसरोंके प्रति ऐसा कोई काम न करो जिसे तुम अपने प्रति किया जाना नापसन्द करते हो; परन्तु युद्ध-वादमें इस विवेकशक्तिको कोई स्थान नहीं है। जीवन-संग्रामका उद्देश ***योग्यतम****की रक्षा करना, बचाना और शेष अकृतकार्य्य जीवोंको निर्दयताके साथ निर्मूल करना है; परन्तु सदाचार संग्राममें असफल हुए जीवोंको निर्मूल करनेकी अपेक्षा उनको जीनेके योग्य बनानेकी भरसक चेष्टा करता है।

'योग्यतम'का अर्थ ।

* स्मरण रखना चाहिए कि 'योग्यतम'का अर्थ 'सर्वोत्तम' या 'उच्चतम' नहीं है। जीवन-संग्रामकी दृष्टिसे 'योग्यतम' नैतिक दृष्टिसे भी 'योग्यतम' कदापि नहीं कहे जा सकते। एक उदाहरण लीजिए। अनुमान कीजिए कि हम लोगोंका गोलार्ध फिर ठंडा हो गया है (कुछ वैज्ञानिकोंकी भविष्यद्वाणी भी यही है कि सूर्य्यका ताप दिन पर दिन कम हो रहा है और इस लिए एक दिन पृथ्वीका एकदम ताप-हीन और ठंडा हो जाना अवश्यम्भावी है) और इस कारण सारे उष्ण-रक्त तथा अन्य प्रकारके जीव भी नष्ट हो गये हैं; केवल 'योग्यतम' जीव ही इस पृथ्वीपर बच रहे हैं। अब आप अनुमान कीजिए कि 'योग्यतम' जीव कहाँ तक सर्वोत्तम और उच्चतम कहे जा सकते हैं। इस अवस्थामें मनुष्यको तो छोड़िए क्या एक पशु भी जीता नजर आयगा? क्या वनस्पति-जगतका भी कोई अंश आपको शेष बचता हुआ दृष्टिगोचर होगा? आपको इनके स्थान पर अणुवीक्षण यंत्रसे नजर आनेवाले कुछ कीड़ों (या शायद बहुत साधारण तरहके कुछ जोंकों) और समुद्रके तृणों आदिके अतिरिक्त और कुछ न दीख पड़ेगा। क्या इस साधारण तरहके जीवनको—जो निस्सन्देह इस अवस्थाके लिए 'योग्यतम' है—उच्चतम या सर्वोत्तम कह सकते हैं? लड़ाई-भिड़ाईके समर्थनमें निरन्तर जीवन-संग्रामकी दुहाई देनेवालोंकी भूल इससे अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है।

मज़हबसे सदाचारकी भिन्नताको दिखलानेके लिए ही हमने यह सदाचारकी उत्पत्ति दोबारा लिखी है । इस विषयमें कोई भी शक बाक़ी नहीं रह सकता कि सदाचारकी उत्पत्ति दूसरे कारणोंसे हुई है और मजहबकी दूसरे कारणोंसे । अतएव यदि दोनोंके उद्देश और साधनमें भिन्नता पाई जाती है, तो इसमें आश्चर्य्यकी कोई बात नहीं है । सिद्धान्तोंको अच्छी तरह स्पष्ट करके अब हम इस विषयमें कुछ ऐतिहासिक प्रमाण देना चाहते हैं ।*

मज़हब जितना ही घटता है सदाचार उतना ही बढ़ता है ।

मज़हब और सदाचारके मध्य कोई कारणकार्यात्मक सम्बन्ध नहीं है। यदि इन दोनोंके बीच कोई नाता है भी, तो वह दूसरे प्रकारका है । यानी मजहब सदाचारका बड़ा भारी शत्रु है, और मज़हबकी जितनी अवनति हुई है उतनी ही सदाचारकी उन्नति हुई है । मज़हबका आधिपत्य जितना ही घटता गया है उतना ही सदाचार बढ़ता गया है । यह नहीं कहा जा सकता कि मज़हब ही दुराचारका कारण है, परन्तु यह निश्चय है कि मज़हब सदाचारका कारण नहीं हो सकता । यहाँ इसके पूरे प्रमाण नहीं दिये जा सकते । अन्वेषणशील पाठकोंको इसके लिए गिबन, हैलम, बक्ल (Buckle) इत्यादिके ग्रन्थ पढ़ना चाहिए ।

मज़हबी लोगोंका कथन है कि मजहब ही सदाचारका संरक्षक है । मज़हबके बिना सदाचारकी सम्भावना नहीं और जितनी ही अधिक मज़हबकी उन्नति हो उतना ही अच्छा है । क्योंकि इसीमें हमारा कल्याण है । यदि यह कथन सत्य है तो इसके अनुसार हम योरोपके इतिहासके भीतर जितना ही

* यहाँ पर यदि पाठकगण एक बार चौथे, छठे और सातवें अध्यायों पर फिरसे नजर डाल जायँ तो बहुत अच्छा हो ।

अधिक प्रवेश करें उतना ही हमें लोगोंका सदाचार दृढ़ देख पड़ना चाहिए। इसमें किसीको सन्देह न होगा कि इस समय योरोपसे मज़हबका पैर उखड़ चुका है। भारतमें भी यह मशहूर है कि योरोप नास्तिकोंसे परिपूर्ण है। विज्ञान और समाजशास्त्र तथा व्यक्तिवाद और इतिहासके ज्ञानकी वृद्धि होनेसे अब बहुत कम शिक्षित लोगोंका विश्वास मज़हबमें रह गया है। योरोपमें कट्टर क्रिस्तान अब बहुत ही कम मिलते हैं। यदि कुछ लोगोंमें आस्तिकता है भी, तो वह एक नये ढंगकी है जिसका शुद्ध क्रिश्चियानिटीसे कोई लगाव ही नहीं है। अबसे कोई पचास साठ ही वर्ष पूर्व वहाँ मज़हबका अबाध्य साम्राज्य था। यदि इससे कुछ और आगे बढ़ते हैं तो राजराजेश्वरों पर भी पोपको हुकूमत करते हुए पाते हैं और देखते हैं कि मज़हबी कचहरियाँ (Ecclesiastical Courts) सर्वत्र विद्यमान हैं। यह क्रूसेड, इन्क्वीजीशन, फिउडालिजिम, शिवलरी इत्यादिका जमाना था। इतिहास साक्षी है कि मज़हबका जैसा बल योरोपमें उस समय था वैसा और कभी नहीं रहा। शायद अन्यत्र भी कहीं नहीं रहा होगा। ऐसी अवस्थामें यदि मज़हबी लोगोंका उपयुक्त कथन सत्य हो तो हम जितने ही प्राचीन समयको लें, लोगोंके आचरण उतने ही शुद्ध और पवित्र होने चाहिए। परन्तु इतिहास इससे बिल्कुल उलटी बात कहता है। हम जितने ही प्राचीन युगमें प्रवेश करते हैं सदाचारको उतना ही कमजोर और मज़हबको दृढ़ पाते हैं और जितना ही प्राचीन समयसे वर्त्तमान युगकी ओर पग बढ़ाते हैं उतना ही मज़हबको घटता हुआ और सदाचारको बढ़ता हुआ पाते हैं। यदि मज़हब ही सदाचारका मूल कारण है, तो मज़हबके रहते भी लोगोंके चरित्र ऐसे घृणित क्यों थे, और मजहबके न रहने पर—किसी मज़हबमें विश्वास न करने पर भी—लोग सच्चरित्र क्यों होते हैं ?

अच्छा अब योरोपके नैतिक इतिहासकी सैर कीजिए। देखिए प्रसिद्ध कवि जान्सन (१७०९—१७८४)—जिसके चरित्र या उद्देशमें किसीको कोई शंका नहीं हो सकती–कहता है कि "परस्त्रीगामी मनुष्य निःसन्देह ईश्वरकी आखोंमें दोषी है, परन्तु उसके इस आचरणसे स्त्रीको कोई हानि नहीं पहुँचती। अपने पतिमें इस दोषके रहनेके कारण यदि मेरी कोई लड़की मेरे घर भाग कर चली आवे तो मैं उसे कदापि नहीं रख सकता। स्त्रियोंको इस साधारण बातकी परवा न करनी चाहिए*।"

जब उस समय इतने बड़े आदमीकी यह धारण थी तब जनसाधारणके कैसे विचार और आचरण होंगे, यह पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं। इतिहासके जाननेवाले किसी भी मनुष्यसे यह छिपा नहीं है कि वह असभ्यता, सामाजिक अस्तव्यस्तता, लड़ाई हंगामा, अश्लीलता और पशुताका जमाना था। इँग्लैंडके इतिहाससे डुयेल×अपेक्षाकृत आधुनिक समयमें ही निकाला गया है। उस समय मरना या मारा

---

*Quoted by Morison in 'Service of Man'

× योरोपका यह कायदा था कि यदि दो मनुष्योंमें कुछ चखचख या अनबन हो जाती थी तो उनमेंसे एक दूसरेको लड़ाईके लिए निमन्त्रित करता था और नियत समय पर उनका दंगल होता था। जिसकी हार होती थी या जो मारा जाता था वही दोषी माना जाता था। केवल साधारण मनुष्य ही इसमें नहीं पड़ते थे बल्कि ड्यूक आफ वेलिङ्गटन, पिट, शेरिडन, फॉक्स और कैनिंगके समान लोग भी डुएलमें लड़ा करते थे।

" अठारहवी शताब्दिमें डुयेल भद्र पुरुषोंके मनोविनोदकी सामग्री मानी जाती थी। जिरहमें यदि कोई बैरिस्टर किसी गवाहको तंग करता—या किसी मवक्किलका मुकद्दमा हार जाता—तो डुयेलमें उसे इन बातोंका उत्तर देना पड़ता था।"—(Spencer Social Statics P.55)

जाना दैनिक जीवनकी एक साधारण घटना मानी जाती थी। देखिए लण्डनके बारेमें स्वयं जानसन क्या कहता है—"यदि तुम्हें रातके समय घरसे बाहर जानेकी आवश्यकता हो तो अपनी मौतकी तैयारी पहले ही कर लो और यदि रात्रिके समय तुम्हें किसी मित्र या नातेदारके यहाँ भोजन करना हो तो जानेके पूर्व वसीयतनामा (Will) लिख कर जाओ। नशेबाज लोग कौतुकके लिए भी लोगोंकी हत्या किया करते हैं।" †

प्राय: एक शताब्दि बीती होगी कि लण्डनके एक पुलीस अफ़सरने उस समयके लण्डनकी नैतिक अवस्थाका वर्णन किया है। लण्डनमें उस समय पचास हजार वेश्यायें थीं (असंख्य रखेलियाँ और कुलटायें इसके सिवाय थीं), जब कि वहाँकी आबादी ६ लाख थी। परन्तु इस समय (१९०८) वहाँ बीस हजार वेश्यायें हैं और जनसंख्या ६० लाख है। जुएके क्लब अमीरोंके लिए हर स्थानपर खुले थे और गरीब सरे बाज़ार सड़कपर ही जुआ खेलते थे। शराब आजकलके बड़े शहरोंमें सोडा और लेमोनेडके समान हाथगाड़ीमें सड़कोंपर बिका करता थी। शराबमें यहाँ तक कम बुराई समझी जाती थी कि शराबखानोंकी खिड़कियोंमें यह नोटिस आम तौरसे रहता था—

"काफी नशा एक आनेमें। बेहोश दो आने में।
बैठने वगैरहका सामान मुफ्त।"

---

† Prepare for death if here at night you roam,
And sign your will before you sup from home,
Some fiery fop, with new commission vain,
Who sleeps on brambles till he kills his man.
Some frolick drunkard, reeling from a feast,
Provokes a broil and stales you for a jest.

शराब पीना और शराब पीकर बेहोश होना अमीरोंके दैनिक कर्त्त-व्यका एक अङ्ग था। कार्डिनल न्यूमैन कहता है कि "पादरी लोग भी कई अंशोमें विभक्त थे—एक बोतलवाले, दो बोतलवाले, तीन बोतल-वाले इत्यादि। लड़कोंके प्रति बड़ी निर्दयता की जाती थी और हजारों ही लड़के मदिरालयोंमें जाया करते थे *।" तब क्या वह नास्तिकता और अज्ञेयतावादका समय था ? नहीं नहीं, वह धर्मोन्माद और विश्वासका ज़माना था !

आओ, अब हम इंग्लिश चैनलसे पार हो कर देखें कि फ्रान्सकी क्या दशा थी। चौदहवें लुई (Luis XIV १६३८-१७१५) के समयकी हालत प्रायः सभी जानते हैं। बादशाहको छोड़ कर देखा जाय तो उस समयके पादरियों तथा गिरजाके प्रधान अधिकारियोंकी नैतिक अवस्था भी अत्यन्त हीन थी। नन–गिरजा (Convents) या स्त्रियोंके मठ अपनी जघन्यता और अपवित्रताके लिए प्रसिद्ध थे। एक धर्माधिकारी–जिसका नाम अबी डी चोआयसी (Abbs po cdoise) था–जनाना वस्त्रोंको बहुत पसन्द करता था और प्रायः स्त्री ही बना रहता था। इस वेशके द्वारा उसे स्त्रियोंके फँसानेमें बड़ी सुगमता होती थी। इस प्रकार अपने कुछ शिकारोंके फँसानेका वृत्तान्त उसने स्वयं ही लिखा है जिसे उत्सुक पाठक देख सकते हैं। परन्तु वह अविश्वास और नास्तिकताका समय नहीं था। केवल धर्मके नामपर ही उस समय करोड़ों तलवारें मियानसे निकल पड़ती थीं। स्कॉटलैण्ड अपनी पशुता और जङ्गलीपनके लिए विख्यात था। और यह कौन स्कॉटलैण्ड था ? वही स्काटलैण्ड जो अपने मज़हबी जोशमें स्पेनसे किसी प्रकार कम न था—वही स्कॉटलैण्ड जिसे नौक्सके धर्मोन्मादने श्मशान बना रक्खा था।

* देखो Maccabe ' Secular Education' P. 50—51

चलो अब जरा स्पेनकी सैर करें। स्पेन ही उस समय धर्मका केन्द्र था। स्कॉटलैण्डके अतिरिक्त अन्य कोई देश धर्म और विश्वासकी दृढ़-तामें इसका सामना नहीं कर सकता था। इस देशका धर्मोन्माद जग-त्प्रसिद्ध है। वहाँ साधारणसे साधारण बातके लिए एक आदमी दूसरेका खून कर डालता था। एक फ्रेंच स्त्रीने अपने पत्रोंमें उस सम-यके स्पेनका अच्छा चित्र खींचा है जिसका एक छोटासा अंश आगे उद्धृत किया जाता है—“ स्पेननिवासी प्रेमके सम्बन्धमें ऐसे उदार और करुणहृदय हैं कि यदि किसी मनुष्यको अपनी प्यारीसे ऐसे स्थानमें भेंट हो जाय जहाँ वह उससे गुप्त बात न कर सकता हो, तो वे तुरन्त ही उन्हें अपने घरमें बुला लेंगे। बल्कि ऐसी अवस्थामें उस युगल जोड़ीको किसी भी घरमें प्रवेश कर जाना चाहिए और मकानके स्वामीसे—चाहे उससे जान पहचान हो या नहीं—यह प्रार्थना करनी चाहिए कि उन्हें थोड़ी देरके लिए गुप्त भेंट करनेकी आवश्यकता है। बस, उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली जायगी ”।*

अच्छा अब हमलोग उक्त समयको छोड़ कर इतिहासके समुद्रमें जरा और गहरी डुबकी लगाये और कुछ इससे भी प्राचीन समय—मध्य युग (Middle Ages) की खबर ले। उस समय वेश्याओंकी भरमार थी। वकहार्ट्ट कहता है कि “सन् १४९० ई०में केवल रोममें ही ६८०० रंडियाँ थीं—रखेलियों और कुलटाओंकी तो गणना ही कैसे हो सकती है। जर्मन शहरोंमें अन्य देशके राजाओंका स्वागत करनेके निमित्त वेश्याओंके झुंडके झुंड उपस्थित किये जाते थे +। ××× गरमी सुजाक आदि

*देखो Morison–Service of Man छट्ठा अध्याय।

+ “ जब कोलम्बसके साथी अपने साथ गरमीकी बीमारी ले आये, तब योरोपकी नैतिक अवस्थाका पता अपूर्व रूपसे चल गया। आश्चर्यजनक वेगसे

बीमारियाँ पोपसे लेकर साधारण कृषकों तकमें—प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक श्रेणीके लोगोंमें—कसरतसे फैली हुई थी।××× प्रत्येक नव-विवाहिता-वधू-पर एक या एकसे अधिक दिनोंतक जमींदारों और खासकर मज़हबके उच्चपदाधिकारियोंका अधिकार रहता था।" लेकीके कथनानुसार स्त्रियोंके मठ वेश्यालयोंके समान थे और उनमें नवप्रसूत बच्चोंकी कसरतसे हत्यायें की जाती थीं। उस समयके निकोलस निकेल नामक लेखकने लिखा है कि "किसी कुमारीको मठमें भेजना या उसे वेश्या बनाना दोनों कार्य एक समान हैं।" एक और लेखकने लिखा है कि "स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिए ही—एक पुरुषके साथ बद्ध न रहनेके लिए ही—विधवायें अकसर मठोंमें प्रवेश करती थीं। पादरी लोग सदाचारके विषयमें इतने श्रेष्ठ होते थे कि बार बार इस कड़े नियमके पास करनेकी आवश्यकता होती थी कि उन्हें अपनी माताओं और बहनोंके साथ भी न रहना चाहिए। ××× वे केवल इतना ही न करते थे बल्कि स्त्रियोंके अभावमें अन्य जघन्य पाशविक रीतियोंसे भी अपनी कामाग्निको शान्त करते किया थे।" पुरुषोंके साथ कामाग्नि शान्त करनेकी बीमारी पादरियोंमें इस ज़ोरसे फैली थी कि ग्यारहवीं शताब्दिके लेखक पीटर डैमियनको सारी बातें स्पष्ट रीतिसे उदाहरण देकर लिखनी पड़ी थीं। तेईसवाँ लियो नामका पोप अन्य अपराधोंके अलावा अगम्यागमन और व्यभिचार भी करता था। मिलनका आर्च बिशप इतना व्यभिचारी था कि अपनी भतीजीके साथ भी अपवित्र संसर्ग रखता था। ब्रेस्सियाका एक पादरी स्त्रियोंको उपदेश देता था कि तुम्हें

यह बीमारी फैली और शीघ्र ही सभी वर्गोंके मनुष्य—पवित्र पिता पोप दशवें लियोसे लेकर सड़कके फकीर तक—इस व्याधिके शिकार हुए।" (Draper –conflict between Religion and Science. Kegan Paul 1910 P. 269)

पादरियोंको केवल अपनी आमदनीहीका नहीं, अपने दाम्पत्य स्नेहका भी दशमांश प्रदान करना चाहिए।

इन लोगोंके बीभत्स कार्योंका वर्णन करनेके लिए सभ्य भाषामें शब्द नहीं मिलते। ×× यहाँ तक नौबत पहुँच गई थी कि लोग अपनी पारवारिक सतीत्व-रक्षाके लिए पादरियोंको रखेलियाँ रखनेके लिए मजबूर करते थे और पादरियोंके सुभीतेके लिए ज़मीन्दार और राजालोग इस कार्य्यके लिए एक टैक्सतक वसूल करते थे। वहाँकी जनता अच्छी तरह समझती थी कि पादरी लोग ब्रह्मचर्य्यका पालन नहीं कर सकते। अतएव वे जब कभी देखते थे कि किसी पादरीने कोई वेश्या या रखेलिन नहीं रख छोड़ी है तो उन्हें अपनी स्त्रियोंके सतीत्वकी चिन्ता हो जाती थी। सन् ११७९ में स्कैण्डनेवियाकी प्रजाने प्रार्थना की थी कि पादरियोंके अविवाहित रहनेका नियम उठा दिया जाय; परन्तु राजाने इसे अस्वीकार किया और तब इसके विरोधमें प्रजा बिगड़ खड़ी हुई।

उच्च श्रेणीके पादरी बड़ी बड़ी मज़हबी सभाओंको भी (जिनमें अविश्वासियोंके जलाये जानेका हुक्म पास होता था) अपनी रंडियोंको बग़लमें लेकर सुशोभित करते थे *। कैंटरबरी गिरजाके एक प्रधान पदाधिकारीको सिर्फ़ एक ही गाँवमें १७ विजात सन्तान थे। पादरी लोग शस्त्र बाँधते थे और शराबखानोंमें तथा उनसे भी बुरे स्थानोंमें जाया करते थे। उनकी इन्द्रियपरताका कोई ठिकाना न था। स्पेनके एक प्रधान पादरीकी सत्तर रखेलियाँ थीं। लीजके बिशपके पैंसठ विजात सन्तान थे। लेकी कहते हैं—"इसमें कोई सन्देह नहीं कि पादरियोंके इस आदर्श चरित्रका समाज पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता था। नीति-निपुण पादरी

* देखो Haeckel—Riddle of the Universe p. 292

चौदहवीं शताब्दिकी भोली भाली स्त्रियोंको समझाते थे कि पतिकी अनुपस्थितिमें पादरियोंके साथ प्रेम करनेमें कोई हर्ज नहीं है और भोली भाली मूर्खा स्त्रियाँ इस निष्पाप प्रेमके सिद्धान्तको हर्षपूर्वक ग्रहण कर लेती थीं और तदनुसार ही आचरण करती थीं।"

ऐसी ऐसी कथाओं और बातोंसे पन्नेके पन्ने भरे जा सकते हैं; परन्तु यह कोई आनन्दप्रद काम नहीं है। विवश होकर, सब प्रकारसे अत्याज्य समझकर ही, यहाँ इन बातोंका जिकर करना पड़ा है। अँगरेजीकी किताबें इस प्रकारके उदाहरणोंसे परिप्लावित हो रही हैं।

मज़हब और सत्यका क्या सम्बन्ध है, यह भी योरोपके इतिहाससे अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है*। क्रिस्तान आदि मज़हब धर्मका प्रचार और उसकी उन्नति करनेके लिए असत्य व्यवहारकी भी शिक्षा देते हैं। एक मज़हबका आदमी अन्य मज़हबके मनुष्यके साथ सद्व्यवहार करनेके लिए अपनेको बाध्य नहीं समझता। नीसियाँके क्रिस्तान कौन्सिलने सन् ७८७में यह घोषित किया था कि सत्यभाषणकी अपेक्षा मूर्तिपूजा करना अधिक ज़रूरी है। और यह तो अनेक क्रिस्तान संतोंने कहा है कि ईश्वरके गौरवकी तथा धर्मकी रक्षा करनेके लिए झूठ बोलनेमें कोई हानि नहीं है। क्रिस्तानोंके धार्मिक कानूनके अनुसार मनुष्यको उन प्रतिज्ञाओंका कदापि पालन नहीं करना चाहिए कि जिनसे मज़हबको धक्का पहुँचता हो। पोप अर्वन (चतुर्थ)ने चौदहवीं शताब्दीमें यह घोषित किया था कि अविश्वासियोंके साथ की गई प्रतिज्ञाओंका पालन कदापि नहीं करना चाहिए। कौन्सटैन्सके धार्मिकपरिषदने भी पन्द्र-

* See 'Influence of Religion upon Truthfulness' by F. H. Perrycoste P. 243.

हवीं शताब्दिमें यही मत प्रकट किया था और कैथालिक देशोंमें तो अब तक भी इस शिक्षाके अनुसार व्यवहार किया जाता है। बाइबलके अनुसार स्वयं ईश्वर भी छल और झूठसे काम लेता है (1 Kings 22-23)। क्रिस्तान मजहब मनुष्योंको सच्चा बनानेमें कहाँ तक समर्थ हुआ है, इसका पता अदालतोंमें दी गई झूठी गवाहियोंके द्वारा भी चलता है। एक जजने लिखा है कि "लण्डन शहरकी कचहरीमें हर हफ़्ते कमसे कम सौ झूठी गवाहियाँ अवश्य दी जाती हैं। बाज़ दफ़ा तो एक शिलिंग छः पैन्स अर्थात् एक रुपयेसे कुछ ही अधिकके लिए लोग झूठी गवाहियाँ देते हुए पाये गये हैं।" इस अवसर पर पाठकोंको कलकत्ता यूनिवर्सिटीमें दिये गये लार्ड कर्जनके भाषणको याद करना चाहिए। सिर्फ़ भारतहीने झूठका इजारा नहीं ले लिया है, सर्वत्र यही दशा है। सिर्फ़ भारतीय कचहरियोंमें ही झूठी गवाहियाँ नहीं दी जातीं हैं। (Christianity and Endrict P. 63)

संक्षेपमे मज़हबी योरोपका इतिहास पशुताका इतिहास है, लोगोंके दुःख, दारिद्र्य और मूर्खताकी कहानी है, युद्ध और अस्तव्यस्तताकी कथा है। सर्वत्र ही भीषण दारिद्र्य और हृदयहीनता दृष्टिगोचर होती है। हम देखते हैं कि गिरजोंमें मरे हुए बच्चे पाये जाते हैं, अक्सर मातायें अपने बच्चोंको सड़कों पर फेंक आती हैं। कभी कभी वे नदी तालाबोंमें भी डाल दिये जाते हैं। माता-पिता अपने बच्चोंको खुले बाजार दूसरोंके हाथ बेचा करते हैं। बहुतसे लोग बच्चोंको उनके पिता माताके यहाँसे चुराकर भी बेच डाला करते हैं। सत्रहवीं शताब्दि तक कुछ ऐसे धूर्त होते थे जो बच्चोंको अपहरण करके उनका अंगच्छेद कर देते थे या अन्य प्रकारसे उनकी शकल बिगाड़ देते थे और तब उन्हें भीख माँगनेके काममें लगा देते थे।

केवल इतने ही उदाहरणोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि विश्वास या मज़हब और सदाचारके मध्य किस प्रकारका सम्बन्ध है। परन्तु पाठक यह अवश्य कहेंगे कि "योरोपके बारेमें चाहे जो हो, परन्तु भारतका इतिहास इस दलीलकी सहायता नहीं करता; बल्कि यहाँ तो सदाचार दिन प्रतिदिन घटता ही जाता है। वैदिक और पौराणिक कालको छोड़ दीजिए। मेगास्थनीज़ (Megasthenes) को भारतकी सैर किये हुए बहुत समय नहीं बीता है। यह ऐतिहासिक बात है। भारतकी उस समयकी नैतिक अवस्थासे आजकी नैतिक अवस्था कितनी भिन्न है? लेखक, तुमने योरोपीय इतिहासका मनन अच्छी रीतिसे नहीं किया है। तुम सारी वस्तुओंको पक्षपातका ऐनक चढ़ा कर देखते हो और मनमाना नतीजा निकालते हो। तुम अवश्य भूल कर रहे हो, तुम्हें योरोपीय इतिहासमें कार्य्य और कारणका सिलसिला अच्छी तरह नहीं देख पड़ा है।"

भारतका नैतिक इतिहास योरोपसे भिन्न क्यों दीख पड़ता है।

पाठक, आपकी इस पर्यालोचनाका हम आदर करते हैं; परन्तु फिर भी यह कहना पड़ता है कि आप ही भूल कर रहे हैं। विचार करनेसे माळूम होगा कि इस विषयमें भारतका इतिहास योरोपके इतिहाससे भिन्न नहीं है। क्या आप यह सोचते हैं कि अन्य देशोंके समान भारतमें भी प्राचीन कालमें मज़हब बहुत ज़ोर पर था और क्रमसे दिन प्रति दिन उसका प्राबल्य घटता गया है? यदि आपकी यह धारणा है तो निःसन्देह आप बहुत बड़ी भूल कर रहे हैं। वास्तवमें *भारतकी मज़हबी उन्नति और अवनतिका इतिहास योरोपके इतिहाससे एकदम भिन्न है।* प्राचीन समयमें

यथार्थमें दोनों देशोंका नैतिक इतिहास एक ही सा है।

योरोपमें मजहबका अबाध्य साम्राज्य था और सदाचारकी मात्रा बहुत ही न्यून थी; इसके पश्चात् मजहबका प्राबल्य कुछ कम हुआ और सदाचारने कुछ बल प्राप्त किया। धीरे धीरे आधुनिक समयमें मजहब एक तरहसे निष्प्राण ही हो गया है, परन्तु सदाचारकी बेहद उन्नति हुई है जिससे मनुष्य-सेवारूप धर्म (The religion of humanity) ने जन्म ग्रहण किया है और अनेकानेक लोकहितकर संस्थाओंकी स्थापना की गई है। इसके विपरीत भारतमें प्राचीन समयमें कोई मजहब विद्यमान न था (इसके प्रमाण ज़रा आगे चलकर दिये जायँगे) और हमलोगोंकी नीति चरम सीमा पर पहुँची हुई थी। तत्पश्चात् माध्यमिक समयमें हमलोग मज़हबी हुए और हमारा सदाचार नष्ट हुआ, यहाँ तक कि हम एक प्रकारसे नैतिक हिजड़े (moral eunuchs) हो गये। इधर हालमें पाश्चात्योंके संघर्षसे हमारे धार्मिक विचारोंमें अनेक प्रकारके विप्लव उपस्थित हुए हैं। हम पूरे अज्ञेयवादी (Agnostics) और निरीश्वरवादी (Atheists)तो निःसन्देह नहीं हुए हैं, परन्तु फिर भी पहले जैसे अन्धविश्वासी नहीं रहे हैं। तर्कका बल बहुत बढ़ गया है। अब हम प्रत्येक वस्तुको और प्रत्येक कार्य्यको, तर्क द्वारा प्रतिपादन करना चाहते हैं—शिखा और यज्ञोपवीतकी उपयोगिता-को भी वैज्ञानिक रीतिसे सिद्ध करना चाहते हैं। तरह तरहके विचार जन्म ग्रहण कर रहे हैं, अनेक नूतन समाज और धर्मसम्प्रदाय स्थापित हुए हैं। यह किसी भी निरीक्षकसे छिपा नहीं कि इस समय सर्वथा अन्धविश्वास रखनेवाले लोग बहुत कम हो गये हैं। अब विचार कीजिए कि इस विप्लवका हमारे नैतिक आचरण पर क्या प्रभाव पड़ा है ? क्या आपको इस विषयमें सन्देह है कि हमारी नीति हमारे पूर्वजोंसे—निःसन्देह वैदिक और पौराणिक इत्यादिक प्राचीन पूर्वजोंसे

नहीं, वरन् हालके मज़हबी पूर्वजोंकी नीतिसे—उच्चतर नहीं है ? यदि आपका यही खयाल है तो एकबार आप हमारे समाजसुधार और लोकसेवाके उत्साह पर नजर डाल जाइए। एकबार उन सभाओंका अवलोकन कीजिए जिनका उद्देश्य केवल उन अछूत जातियोंको उन्नत करनेका है जिनके प्रति इतना अत्याचार किया गया है कि उसका वर्णन असम्भव है, और जिनके सम्बन्धमे यह मुक्तकण्ठसे कहा जाता था कि:—

शूद्र गँवार ढोल पशु नारी ।
ये सब ताड़न के अधिकारी ॥

अधिक उदाहरण नहीं दिये जा सकते । यह बात अनुभवकी है। यदि आप ज़रा डूब कर विचार करेंगे तो हमारा कथन यथार्थ प्रतीत होगा। भूमिका बहुत बढ़ गई है। अतएव आइए, अब भारतीय इतिहासकी भी सैर कर डालें।

प्राचीन भारतमें कोई मज़हब न था।

प्राचीन भारतमें कोई मज़हब न था। उस समय सदाचारधर्मका साम्राज्य था, न कि मज़हबका। *मज़हबका प्रधान लक्षण है किसी सिद्धान्त विशेषमें विश्वास *।* परन्तु प्राचीन भारतमें विश्वास (Faith), हठ (dogmatism) और मज़हबका प्राबल्य ज़रा भी न था। उस समयका सा विचार-स्वातन्त्र्य उन्नत और अज्ञेयवादी यारोपको भी अबतक प्राप्त नहीं हुआ है। पाठक! चौंकिए नहीं, ज़रा विचार कीजिए। क्या आपका हिन्दूधर्म कोई मज़हब है ? क्या आप इसकी परिभाषा बतला सकते हैं ? क्या आप इसके सारे विश्वासोंकी सूची तैयार कर सकते हैं ? हिन्दूधर्मके अन्दर सभी मत, सभी मज़हब, सभी भाव

हिन्दू धर्म कोई मज़हब नहीं है।

---

*मजहबके अन्य लक्षण गत अध्यायोंमें दिये जा चुके हैं। मजहब और धर्मके अन्तर पर अगले अध्यायमें और भी कुछ विचार किया जायगा ।

और सभी विचार सम्मिश्रित हैं। तब आप किसे हिन्दू कहेंगे और किसे अहिन्दू? षट्दर्शनोंमें भी एक दूसरेसे कितनी भिन्नता है? हम आस्तिक दर्शनोंको हिन्दू मानें या नास्तिकोंको? मर्य्यादा पुरुषोत्तम रामका अवतार सत्य है या रीति-परम्पराको न माननेवाले श्री कृष्णका? क्या मत्स्य, कच्छ, वाराह, नरसिंह इत्यादि अवतार ही सत्य हैं और अन्य सब मिथ्या? निराकारवाद सत्य है या साकारवाद? हिन्दूधर्मका लक्षण ऐकेश्वरवाद है या बहुदेववाद? भूत प्रेत शीतला विशूचिकाकी पूजा हिन्दू मतके अनुसार है या गणेश, इन्द्र, वरुण, मरुतकी पूजा? ज्ञानमार्ग ठीक है या कर्ममार्ग? क्या हिन्दू धर्म्म केवल भक्तिमार्गके ही अवलम्बनका आदेश देता है? और प्रारब्धवाद ठीक है या कर्मवाद? मोर-मुकुटधारी वृन्दावन-विहारी, गोपिका-प्राण-वल्लभ, वनमाली घन-श्यामका आराधना ठीक है या जटाजूटधारी, सर्प-मुण्डमाला धारण करनेवाले, श्मशाननिवासी, ताण्डवनृत्यकारी, महाकाल शङ्करकी? सुन्दरी लक्ष्मीकी आराधना करनी चाहिए या कराला कालीकी? वैष्णव सिद्धान्त, आचार, पूजाविधि, और रीतियाँ ही यथार्थ हिन्दूधर्म हैं या शैव और शाक्त पूजाविधि और शाक्त आचार?

हिन्दू धर्मम अज्ञेयवाद।

धर्मके सम्बन्धमें हिन्दू सिद्धान्त था—"एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" (सत्य एक है, परंतु बुद्धिवाले लोग इसे बहुतसे नामोंसे पुकारते हैं।) हिन्दू किसी मतमें नहीं वरन् सत्य और ज्ञानमें विश्वास करता था। *ज्ञान प्राप्त करना ही हिन्दू-जीवनका उद्देश था, क्योंकि सारे दुःखोंकी जड़ अविद्या है।* इसी कारण वेदका अर्थ ज्ञान है। इसी कारण हमारा धर्म सनातनधर्म है, क्योंकि सत्य और ज्ञान ही सनातन है। मत या मज़हब कभी सनातन नहीं हो सकता। इसी लिए हिन्दू किसी मत और मज़हबकी उपेक्षा नहीं करता है।

इसे किसीसे भी द्वेष नहीं है। और हो भी क्यों ? अनेकमें एकको देखना ही तो हिन्दूका लक्ष्य है। इसी लिए अन्यमतवादियोंके समान हिन्दूने न तो अपने धर्मप्रचारके लिए यत्न किया, और न अपने धर्मप्रचारकोंको ही कहीं भेजा। और आखिर हिन्दू मानता ही किस मज़हबको है कि जिसका वह प्रचार करे ? वह यह नहीं कहता कि मुझे ईश्वरका या ईश्वर तथा विश्वके सारे रहस्योंका ज्ञान प्राप्त है। अन्य मज़हबवालोंके समान वह दावेके साथ यह कदापि नहीं कहता है कि मुझे सब भेद मालूम है, वरन् वह अपनी अनभिज्ञता प्रकाश करता है और कहता है कि 'नेति नेति', अर्थात् यह भेद नहीं जाना जा सकता। उसके धर्मके अन्दर तो सभी मज़हब विद्यमान हैं, तब उसे द्वेष हो तो किस मत और मज़हबसे ? इसी लिए प्राचीन भारतमें मज़हबी लड़ाइयोंका कभी नाम तक भी नहीं सुना गया। प्राचीन हिन्दूके लिए कोई भी मत और कोई भी विचार अग्राह्य नहीं था। उसके यहाँ आस्तिक और नास्तिक—ईश्वरवादी और निरीश्वरवादी—सभी प्रकारके दर्शन मौजूद हैं। प्राचीन हिन्दू सभी प्रकारके विचारोंका स्वागत करता था। चार्वाक जैसे नास्तिक भी मुनि कहलाते थे और उन्हें भी पूरा अवसर दिया जाता था कि वे अपने विचारोंको प्रकाशित कर सकें। बल्कि प्राचीन विद्वान् हिन्दू मज़हबके सम्बन्धमें एक प्रकारके अज्ञेयवादी थे। सामवेदके केनोपनिषद्के इस अद्भुत अंश पर विचार कीजिए—

"यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपं।
यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ नु मीमांस्यमेव ते मंन्ये विदितम्।
नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च।

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातम् विजानताम्"

—द्वितीय खण्ड १—३।

भावार्थ—"यदि तू यह सोचता है कि तूने ब्रह्मणको पूरे तौरसे जान लिया, तो निःसन्देह तूने उसके बारेमें कुछ भी ज्ञान प्राप्त नही किया है।" (इसे सुन कर शिष्य बोला—) "मैं नहीं समझता हूँ कि मैंने ब्रह्मणको पूर्ण रीतिसे जाना है। मै यह भी नहीं कह सकता कि मैं उसे एकदम नहीं जानता।" (इस पर गुरुने उत्तर दिया—) "यह कहना कि मैं ब्रह्मणको नहीं जानता और यह कहना कि मैं उसे जानता हूँ, दोनों असत् हैं। हम लोगोंमेंसे जो कोई इस सूत्रके गूढ अर्थको समझता है वही ब्रह्मणको जानता है।"

"जो मनुष्य सोचता है कि मैं ब्रह्मणको जानता हूँ वह उसे वास्तवमें नहीं जानता और जो मनुष्य यह सोचता है कि मैं उसे नहीं जानता वह ही यथार्थमें ब्रह्मणका ज्ञान रखता है।"

उक्त उपनिषद्का ही एक मंत्र यह है—

"न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो
न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात्।
अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि
इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्त द्व्याचचक्षिरे" ॥ ३ ॥

—प्रथम खण्ड।

अर्थात् "वहाँ न तो आँख पहुँच सकती है, न वाणी और न मन। हम उसे नहीं जानते। उसकी शिक्षा किस प्रकार दी जा सकती है, हम यह भी नहीं जानते। वह सभी जानी हुई वस्तुओंसे भिन्न है और वह अनजान वस्तुओंसे भी परे है। प्राचीन मनुष्योंसे हमने इसी प्रकार सुना है।"

अब पाठक, आप ही सोचिए कि क्या हिन्दू धर्ममें हठोक्तिके लिए कोई स्थान शेष है? हिन्दूके लिए धर्म हठ या विश्वास करनेकी चाज़ नहीं है। यह अनुभव करनेकी वस्तु है। क्योंकि यही उपनिषद कुछ मन्त्रोंके बाद कहता है—"**प्रतिबोध विदितं।**" (–द्वितीय खण्ड, मंत्र १२।)

हठोक्ति हिन्दूधर्मसे उतनी ही दूर है जितना पृथ्वीसे सूर्य्य। उपनिषत्कार तो वेदों और धर्मग्रन्थोंको भी बहुत नीचा स्थान देते हैं। वे यज्ञों और वेदोक्त क्रियाओंके महत्त्वको बहुत गौण अनुमान करते हैं। यहाँ तक कि उन्हें 'मूर्खता' पर्य्यन्त कहनेमें भी नहीं हिचकते। देखो—मुण्डकोपनिषद–१,१,४; १,१,५; १,२,७; १,२,८।

वेदान्तसूत्र शङ्कर-भाष्यमें कहा है—

"जब वाष्कलिने वाह्वसे पूछा—हे महाराज, मुझे कृपा कर बतलाइए कि ब्रह्म किसे कहते है? तब वाह्व कुछ भी नहीं बोले। वाष्कलिने फिर भी वही प्रश्न किया, परन्तु वाह्व तब भी चुप रहे। जब ऐसा चार पाँच बार हो चुका, तब वाह्वने वाष्कलिसे कहा, "अरे मैं तेरे प्रश्नोंका उत्तर तभीसे दे रहा हूँ, परन्तु तेरी समझमें नहीं आया, मैं क्या करूँ? ब्रह्मस्वरूप किसी प्रकार बतलाया नहीं जा सकता। इसलिए शान्त होना अर्थात् चुप रहना ही सच्चा ब्रह्मलक्षण है। समझा?" *

प्राचीन हिन्दूधर्मने शंका और सन्देहको बलात्कारसे दबा देनेका कभी कोई प्रयत्न नहीं किया। स्वयं वेदमें भी जगह जगह अविश्वास और सन्देह स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर होते हैं। इन्द्रके सम्बन्धमें एक स्थान

* Quoted in L. Tilaks' Gita Rahasya.

पर लिखा है कि "यदि तुम्हें लूटके धनकी कामना हो तो इन्द्रकी पूजा करो। कुछ लोग कहते हैं कि इन्द्र है ही नहीं, उसे किसने देखा है? हम किसकी स्तुति करें? *" ऋग्वेदमें ही एक स्थान पर लिखा है—"कौन कह सकता है कि सृष्टिकी रचना किसने की है और कौन कह सकता है कि सृष्टि क्या है? +

निरुक्तमें कौत्सके मतका वर्णन करते समय यास्कमुनि कहते हैं कि वेदके मंत्रोंका कोई अर्थ नहीं है। (—अ० १, खं० १५।) पाणिनिके समयमें वेदका आदर निस्सन्देह बहुत घट गया था। उन्होंने अविश्वासी और नास्तिवादी मतावलम्बियोंका जिकर किया है। (—४, ४, ६०।) लोकायत और बार्हस्पत्य मतोंका भी उल्लेख किया है (—४,२,६० और ५,१,१२१।) बुद्धदेवके कहीं पहले बृहस्पति वेदोंको अस्वीकार कर चुके थे। बृहस्पतिका शिष्य चार्वाक आत्मा परमात्मा इत्यादि किसीमें भी विश्वास न करता था। वेद, यज्ञ, और श्राद्धको वह केवल ढोंग और धूर्तता अनुमान करता था। वह इनको बुद्धिमानोंके लिए जीविकोपार्जनका जरिया मात्र समझता था[१]। चार्वाकके समीप वेद मूर्खोंकी वाणी और अधम तथा पुरुषार्थविहीन लोगोंके धन कमानेका मंत्र है। यज्ञके सम्बन्धमें बृहस्पति कहते हैं कि यदि यज्ञमें वध

---

* ऋग् ८-१००-३। Quoted by Max Muller—See Collected Works of Max Muller Vol. IX, Hiblert Lectures on the Origin and Growth of Religion P. 309.

+ Quoted in Bulletin of the Indian Rationalistic Society, June 1920, P. 15.

१ अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्।
बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकेति बृहस्पतिः॥
—चार्वाकदर्शन—११,२१

किया गया पशु स्वर्गको जाता है, तो यज्ञ करनेवाला अपने पिताको क्यों नही वध कर डालतो ?[2] यदि श्राद्धके द्वारा मृत पुरुषोंकी तृप्ति होती है तो पर्यटनकारियों या दूर जानेवाले मुसाफ़िरोंके सफ़रका सामान देना वृथा है[3]। पिण्डदानसे यदि स्वर्गस्थित लोगोंकी तृप्ति हो सकती है, तो महलके ऊपर रहनेवालोंको नीचेसे ही क्यों भोजन नहीं दे दिया जातो ?[4] ब्राह्मणोंने केवल अपने जीवननिर्वाहके लिए तमाम यज्ञों और पूजाओंका अविष्कार किया है। इनसे कोई नफ़ा नहीं होतो।[5] वेदोंके रचयिता धूर्त भांड और निशाचर थे[6]। मांस भक्षण करनेका उपदेश निशिचरोंने दिया है। कालान्तरमें बौद्ध लोग भी ठीक इसी तरहका तर्क करते थे जिससे यह स्पष्ट होता है कि वे कहाँ तक इन पुराने नास्तिकोंके उपकृत थे।*

इन उदाहरणोंसे साफ़ विदित होता है कि अति प्राचीन समयसे ही भारतमें कैसे स्वतंत्र विचारक—नास्तिक पर्य्यन्त भी—जन्म ग्रहण करते आ रहे हैं। परन्तु क्या उस समयमें कभी कोई मज़हबी लड़ा-

---

२ पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ॥ २२ ॥

३ मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम् ॥ २३ ॥

४ स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्र दानतः।
प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते ॥ २४ ॥

५ ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणैर्विहितस्त्विह।
मृतानां प्रेतकार्य्याणि न त्वन्यद्विद्यते क्वचित् ॥ २७ ॥

६ त्रयो वेदस्य कर्त्तारः धूर्तभाण्डनिशाचराः।

* See Max Muller.—Lectures on the Origin & Growth of Religion P. 142-46.

ईका नाम सुना गया है ? क्या उस समयमें अविश्वासियोंके जलाये जानेका एक भी उदाहरण आपको भारतीय इतिहासमें मिलता है ? इसका कारण क्या है ? यही कि प्राचीन हिन्दू किसी भी मत या मज़हबमें नहीं वरन् धर्ममें विश्वास करता था।

हिन्दूधर्मको सत्य और ज्ञानसे शत्रुता नहीं है।

प्राचीन हिन्दू सत्यको सभी मज़हबोंसे बड़ा मानता था। भीष्म पितामह युधिष्ठिरको शिक्षा देते हैं—"संदिग्ध ज्ञानसे किसी ज्ञानका न रखना ही अच्छा है। (केवल सत्य ज्ञान उपार्जन करो।) ऐसे अधूरे और सन्देह युक्त ज्ञानको (अपने हृदयसे पूर्णतः) उखाड़ फेंको। (—महाभारत शां०, अध्याय १४२, श्लोक २३ *) बहुत प्राचीन समयमें उशनाने दैत्योंको सत्य ज्ञानकी एक कुंजी दी थी जिसके द्वारा सारा भ्रम पूरे तौरसे हट जाता है। (उन्होंने कहा था कि) धर्मग्रन्थोंको धर्मग्रन्थ कभी न समझना चाहिए, यदि वे बुद्धि और तर्ककी आँचमें न खड़े हो सकें। (—महाभारत, शां० प०, १४२–२२×) कुछ लोग कहते हैं कि धर्म श्रुतिकी आज्ञा है (अर्थात् श्रुतिसे धर्मकी उत्पत्ति हुई है); परन्तु कुछ लोग इससे सहमत नहीं होते। मैं इन (पिछले) लोगोंको दोषी नहीं कह सकता, क्योंकि सभी बातें श्रुतिमें वर्णन नहीं की गई हैं। (—महा० शां० प० १०९—१३+) सत्य ही ब्रह्म है, सत्य ही तपस्या

---

*ज्ञानमप्यपादिश्यं हि यथा नास्ति तथैव तत्।
तं तथा छिन्नमूलेन सन्नोदयितुमर्हसि ॥ १४२, २३ ॥

× अनयाहृतमेवेदमितिशास्त्रमपार्थकम्।
दैतेयानुशना प्राह संशयच्छेदनं पुरा ॥ १४२, २२ ॥

+ श्रुतिधर्म इति ह्येके नेत्याहुरपरे जनाः।
न चेतत्प्रत्यसूयामो न हि सर्वं विधीयते ॥ १०९, १३ ॥

है, सत्यने ही सृष्टिकी रचना की है। सत्य ही समूचे विश्वको धारण किये हुए है और सत्यहीके द्वारा मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है। असत्य अन्धकारका दूसरा स्वरूप है और अन्धकार मनुष्यको नीचेकी ओर गिराता है। जो लोग अन्धकाराच्छन्न हैं वे स्वर्गकी प्रखर ज्योतिको नहीं देख सकते। कहा गया है कि स्वर्ग ज्योति (का दूसरा नाम) है और नरक अन्धकार (का दूसरा नाम) है। (अतएव) संसारी जीव (इसी संसारमें) स्वर्ग और नरक दोनों प्राप्त कर सकते हैं। इस संसारमें भी सत्य और असत्यका यथोचित परिणाम (मनुष्यको) प्राप्त होता है जैसे कि (सत्यसे) धर्म और (असत्यसे) अधर्म, (सत्यसे) ज्योति और (असत्यसे) अन्धकार, (सत्यसे) सुख और (असत्यसे)दुख, सत्यसे धर्म (प्राप्त होता है)और धर्मसे ज्योति और ज्योतिसे आनन्द। इसी प्रकार असत्यसे अधर्म, अधर्मसे अन्धकार और अन्धकारसे शोक और दुःख।(-महाभारत शां०प० १९०-१-५*)तुलाधार जाजलीसे कहते हैं कि "हे जाजलि, जो आदमी श्रुतियोंमें विश्वास करता है और श्रुति-प्रदर्शित पथ पर चलता है वह निसन्देह महान् पुरुष

---

*सत्यं ब्रह्म तपः सत्यं सत्यं विसृजते प्रजाः।
सत्येन धार्यते लोकः स्वर्गं सत्येन गच्छति ॥ १ ॥
अनृतं तमसो रूपं तमसा नीयते ह्यधः।
तमोग्रस्ता न पश्यन्ति प्रकाशं तमसावृताः ॥ २ ॥
स्वर्गः प्रकाश इत्याहुर्नरकं तम एव च।
सत्यानृतं तदुभयं प्राप्यते जगतीचरैः ॥ ३ ॥
तत्राप्येवं विधा लोके वृत्तिः सत्यानृते भवेत्।
धर्माधर्मौ प्रकाशश्च तमो दुःखं सुखं तथा ॥ ४ ॥
तत्र यत्सत्यं स धर्मो यो धर्मः स प्रकाशो यः प्रकाशस्तत्सुखमिति।
तत्र यदनृतं सोऽधर्मो योऽधर्मस्तत्तमो यत्तमस्तदुःखमिति ॥

है; (परन्तु) जो आदमी स्वपथ पर (स्व-बुद्धिके अनुसार) चलता है वह श्रेष्ठतर है" । (—शा० प० २६४–१९ ।*) भीष्म कहते हैं—" हे युधिष्ठिर, मैं तुम्हें केवल वेदसे ही कर्तव्यकी शिक्षा नहीं देता हूँ वरन् मैं जो कह रहा हूँ वह अनुभव और ज्ञानका फल है । यह विद्वानोंके द्वारा संचित मधु है । ....राजधर्म केवल सदाचारके एक अंगकी ओर देखने से निश्चित नहीं किया जा सकता । (—शां० पं०१४२–३,७ ÷) इसलिए हे कौन्तेय ! धर्म और अधर्म (कर्तव्य और अकर्तव्य) के पता लगानेमें स्वच्छ-हृदय और बुद्धिमान आदमीको अपने ज्ञान और विवेकका आश्रय ग्रहण करना चाहिए। (—शां० प० १४९-१०२×)

अग्निपुराणमें कहा है कि यदि न्यायकार्यमें तर्कशास्त्र और स्मृतिमें विरोध पड़ता हो तो तर्कको ही अधिक बलवान् समझना चाहिए । (–२५३,४९ ।)

योगवशिष्टमें लिखा है कि "न्याय-युक्त पदार्थके अंगीकार करनेवाले पुरुषको युक्ति या न्याय-युक्त सामान्य-मनुष्य-रचित शास्त्र भी ग्रहण करना चाहिए और युक्ति या न्यायविरुद्ध वेदोक्ति भी त्यागनी चाहिए। क्योंकि मनुष्यको मुख्यतः न्याय पर ही चलना चाहिए। युक्ति-युक्त वचन

---

* श्रद्धावान् श्रद्दधानश्च धर्मश्चैव हि जाजले ।
स्ववर्त्मनि स्थितश्चैव गरीयानेव जाजले । २६४;१९ ॥

÷ नैतच्छ्रुत्वागमादेव तव धर्मानुशासनम् ।
प्रज्ञासमवहारोऽयं कविभिःसंभृतं मधु ॥ ३ ॥
....
नैकशाखेन धर्मेण राज्ञो धर्मो विधीयते ॥ ७ ॥

× तस्मात्कौन्तेय विदुषा धर्माधर्मविनिश्चये ।
बुद्धिमास्थाय लोकेऽस्मिन् वर्तितव्यं कृतात्मना ॥ १०२ ॥

बालकका भी ग्रहण करना उचित है; और युक्ति-विरुद्ध वचन ब्रह्माका भी तृणके समान त्यागने योग्य है । हमारे पिताका खुदाया हुआ कूप है, ऐसा समझकर गंगाजलको त्याग जो उस कूपके खारी जलको पीता है उस मूर्ख आदमीको कौन शिक्षा दे सकता है ? " *

यहाँ विचारस्वातंत्र्यकी सीमा कहाँ तक पहुँची हुई थी यह उक्त ग्रन्थके ही नीच लिखे अवतरणसे विदित होता है—

अन्यस्त्वां चेतयति चेत्तं चेतयति कोऽपरः ।
क इमं चेत्तयेत्तस्मादनवस्था न वास्तवी ॥

—मुमुक्षुव्यवहार प्रकरण, सर्ग, २९ ।

अर्थात् यदि तुम्हारा प्रकाशक कोई दूसरा चेतन है तो फिर उसका प्रकाशक कौन है और उसका प्रकाशक कोई तीसरा माना जाय तो उसका प्रकाशक कौन होगा ? इस प्रकार अनवस्था चली जायगी जिससे किसी पदार्थकी सिद्धि नहीं होगी । हिन्दूके लिए ईश्वरमें विश्वास भी ज़रूरी चीज नहीं है । हम समस्त वेदान्त दर्शनको निरीश्वरवादी (ईश्वरवाद शब्दका अर्थ यहाँ पर वही किया गया है जिस अर्थमें वह साधारणतः व्यवहृत होता है) कह सकते हैं । संसार या सृष्टिके बाहर निवास करनेवाले तथा कुम्हार या मूर्तिकारके सदृश शरीरोंके गढ़नेवाले ईश्वरमें वेदान्त विश्वास नहीं करता ।

---

* अपि पौरुषमादेयं शास्त्रं चेद्युक्तिबोधकम् ।
अन्यस्त्वार्षमपि त्याज्यं भाव्यं न्याय्यैकसेविना ॥ २ ॥
युक्तियुक्तिमुपादेयं वचनं बालकादपि ।
अन्यत्तृणमिव त्याज्यमप्युक्तं पद्मजन्मना ॥ ३ ॥
योऽस्मत्तातस्य कूपोऽयमिति कौपं पिबत्यपः ।
त्यक्त्वा गांगं पुरस्थं तं कोऽनुशास्त्यतिरागिणम् ॥ ४ ॥

—यो० वा०, मुमुक्षुव्यवहार, सर्ग १८ ।

हिन्दू अच्छीतरह समझता था कि सदाचार एक सीधी वस्तु नहीं है और केवल धर्मग्रन्थोंसे ही कर्तव्याकर्तव्य निश्चित नहीं किया जा सकता। बुद्धिके द्वारा ही कर्तव्याकर्तव्यका फैसला हो सकता है। "बुद्धिके द्वारा और अच्छे लोगोंके आचरणसे ही कर्तव्य स्थिर किया जा सकता है। हे युधिष्ठिर, तुम हमारी बातों पर व्यवहार करो। बाज़ दफ़ा धर्म अधर्मके समान और अधर्म धर्मके समान देख पड़ता है। इस तत्त्वको न जाननेके कारण अवसर आ पड़ने पर मनुष्य घबड़ा जाता है। जहाँ धर्म और अधर्म पूरे तौरसे निश्चित नहीं किया जा सकता वहाँ हे भारत ! मनुष्यको चाहिए कि वह ऐसे अवसरोंको पहलेसे जान ले।" *

(—महाभारत, शा० प० १४२—५,८)

वह पूरे तौरसे जानता था कि देश और कालके अनुसार धर्म भिन्न भिन्न हुआ करता है।

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे परेऽपरे।
अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः॥

अर्थात्—कृतयुगमें मनुष्यका एक धर्म है, त्रेता और द्वापरमें कुछ और ही है और कलियुगमें तो मनुष्यके धर्ममें एकदम रूपान्तर है। युगोंके परिवर्तनके साथ धर्ममें भी परिवर्तन उपस्थित होता है।

अतएव हिन्दूधर्म कोई मत विशेष नहीं है। हिन्दूधर्म यह कभी नहीं कहता कि तुम्हें अमुक बातोंमें विश्वास करना ही पड़ेगा—अमुक

***बुद्धिसंजननो धर्म आचारश्च सतां सदा।**
श्रेयो भवति कौरव्यसदतद्धिद्धिमेव च॥ ५॥
अद्वैधज्ञः पथि द्वैधे संशयं प्राप्तुमर्हति।
बुद्धिद्वैधं वेदितव्यं पुरस्तादेव भारत॥ ८॥

विचारोंको मानना ही पड़ेगा—अमुक पंथ पर चलना ही पड़ेगा। यहाँ स्वतंत्रताका साम्राज्य है; तुम्हारी रुचि जिस प्रकारकी हो उसी तरह विचार करो। हिन्दूधर्म किसी मत या मजहबका नहीं बल्कि एक प्रकारके जीवन-पालन (Culture)का नाम है।

हिन्दुओंके देवता और देवाराधना।

पाठक कहेंगे कि हिन्दूधर्ममें भी तो देव देवियाँ विद्यमान हैं। प्राचीन हिन्दूधर्ममें भी तो पूजाकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म विधियाँ हैं। यह सत्य है। प्राचीन अदार्शनिक हिन्दू निःसन्देह बहुतसे देव देवियोंको मानता था और उनकी पूजा करता था। पर उसकी पूजा अन्य मजहबवालोंकी पूजासे भिन्न होती थी। वह भयसे पूजा नहीं करता था, वरन् प्रीतिसे, प्रेमसे। पूजन उसके स्वभावका एक अंग था और विना पूजनके वह किसी प्रकार रह नहीं सकता था। उसकी पूजा कविता थी। उसका सौन्दर्य्यप्रेम उसे विना किसी प्रकारके अर्चनके चैन नहीं लेने देता था। उसकी प्रीति, कविता और सहृदयताका समुद्र उमड़ कर जब अपनी सीमामें नहीं अँटता था तब वह फूट कर नाना प्रकारकी पूजाविधिरूपी नहरों द्वारा बह निकलता था। अहा, और पूजा भी कैसी सरल, कितनी मृदुल, कितनी सुन्दर और हृदय-स्पर्शी होती थी! हिन्दूका देवता या ईश्वर मनुष्योंसे परे, संसारसे बाहर, मनुष्योंसे एकदम भिन्न नहीं होता था, बल्कि वह सर्वथा मानवीय होता था। हिन्दूकी पूजाका उद्देश्य किसी क्रुद्ध देवताके प्रसन्न करनेका नहीं होता था, वरन् वह सर्वतः उद्देश्यविहीन होती थी। पूजन प्राचीन हिन्दूके स्वभावका एक अंग था। *उसके देवता और देवियाँ प्रायः किसी न किसी प्रत्यय, किसी न किसी आदर्श, किसी न किसी प्राकृतिक शक्तिका व्यक्तीकरण* (Personification) *होतीं थीं।* वह

प्रतिमाका नहीं बल्कि आदर्शका पूजक था । (उसके आधुनिक देवताओं और ईश्वरके नाम यद्यपि पुराने ही हैं, परन्तु वे बहुत ही भिन्न हैं ।) व्यक्तीकरणकी यह शक्ति सभी प्राचीन हिन्दुओंमें बड़ी दृढ़ताके साथ विद्यमान थी। वे अपने देवताओंको अपनेसे विलग नहीं समझते थे। इस अपूर्व शक्तिके द्वारा वे उन्हें अपने सामने ही खड़ा अनुभव करते थे। अहा ! और वे किस प्रकार उन्हें अर्घ्य देते, पुष्पांजली प्रदान करते और उनकी आरती उतारते थे ! उनके देवताओंके निवासस्थान प्रकृतिके सुन्दर सुन्दर स्थान होते थे, उनके मन्दिर पहाड़ोंके शिखरों पर होते थे, उनके महादेव हिमालय पर निवास करते थे; गङ्गा उन्हें प्राणोंसे भी प्यारी लगती थी। जंगल ही उनकी तपस्याका स्थान होता था। एक शब्दमें उनकी पूजा अवाक्यविस्मय (his worship was speechless wonder) होती थी। प्राचीन भारतके ईश्वर तथा देवताओं और अन्य देशके ईश्वर तथा देवताओंमें कोई संम्बंन्ध नहीं है। वे एकदम भिन्न हैं। *भारतवर्षमें अन्य मज़हबोंके ऐसे एकेश्वरवादका कभी साम्राज्य नहीं हुआ था ।*

सारांश यह है कि प्राचीन हिन्दू किसी मत या मज़हबमें नहीं वरन् धर्ममें विश्वास करता था और वह हिन्दूधर्म क्षुद्र और सीमाबद्ध नहीं वरन् विराट् और अनन्त है। वह अक्षरश: सनातन है।

सोलहवाँ अध्याय ।

महज़ब और सदाचार ।

७-मजहब और धर्म ।

हिन्दूधर्म किसी विश्वास विशेषका नाम नहीं है, बल्कि मन और हृदयको विस्तृत करनेवाली एक आचरणात्मक वस्तु है। भारतमें सत्कर्म करनेको ही धर्म कहा जाता था। कर्त्तव्यका पर्याय शब्द धर्म है। यहाँका बौद्धमत भी धर्मही-के नामसे पुकारा जाता था।

सदाचारका दूसरा नाम धर्म है।

"आचार ही धर्मका लक्षण है और आचार ही सन्तों या अच्छे लोगों-का लक्षण है। सारे आगमों या शास्त्रोंमें आचार ही श्रेष्ठ कहा गया है।"—

आचारलक्षणो धर्मः संतस्त्वाचारलक्षणाः ।
आगमानां हि सर्वेषामाचारः श्रेष्ठ उच्यते ॥

—महाभारत, अनु० प० १०४-६-७ ।

" आचारसे धर्मकी उत्पत्ति होती है और धर्मसे आयुकी वृद्धि होती है। आचारसे जीवन प्राप्त होता है और आचारसे श्रीकी प्राप्ति होती है। इस लोक तथा परलोकमें आचारके द्वारा ही मनुष्य कीर्ति प्राप्त करता है।"

आचारप्रभवो धर्मो धर्मादायुर्विवर्द्धते ॥
आचाराल्लभते ह्यायुराचाराल्लभते श्रियम् ।
आचारात्कीर्त्तिमाप्नोति पुरुषः प्रेत्य चेह च ॥

—महाभारत अनु० प० १०४-१५६-५७

सत्यपालनहीका नाम धर्म था। "सत्यान्नास्ति परो धर्मः।" सत्यसे बढ़ कर और कोई धर्म नहीं था। धर्मका अर्थ था सदाचारसे प्रेम करना। प्रतिष्ठा तथा आदर्शको इसी जीवनमें प्राप्त करना—इसी जीवनको आदर्श बनाना, मनुष्यके मन और हृदयको फैलाना ही धर्मका प्रधान कर्त्तव्य था। हिन्दू धर्मका उद्देश्य था *अनेकमें एकको देखना।* भारतीय धर्मके द्वारा मनुष्य हर जगह अपनी ही ज्योतिको चमकता हुआ पाता था। उसकी सारी पूजाओं, सारे मार्गों और सारी व्यवस्थाओंका उद्देश्य मनुष्यके मन और हृदयको बढ़ना ही था। कर्म, ज्ञान और भक्तिमें कोई अन्तर न था।

मज़हब और धर्ममें अन्तर।

हिन्दूधर्मने विचारोंकी समानता पर कभी ज़ोर नहीं दिया। इसलिए हिन्दूमत कोई मज़हब नहीं बल्कि धर्म है और धर्म और मज़हबमें बहुत अन्तर है। *मज़हबका अर्थ है किसी विशेष सिद्धान्तमें विश्वास; परन्तु धर्म उस शक्तिका नाम है कि जिसके द्वारा संसारकी सभी वस्तुयें स्थिर हैं।* यह वह अनुल्लंघनीय शक्ति है जिसके द्वारा पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है, जिसके द्वारा सूर्य्य चमकता है, जिसके द्वारा विश्वका समस्त कार्य्य पूर्ण होता है, जिसके द्वारा अणुओं परमाणुओंसे लेकर ग्रह नक्षत्र पर्य्यन्त और कीट पतङ्गसे लेकर मनुष्य तक अपनी कार्य्यवाहीमें लगे रहते हैं। हमें देखनेमें कोई वस्तु एक प्रकारकी क्यों मालूम होती है—किसी वस्तुके वर्तमान रूप रंगका क्या कारण है—अमुक वस्तु अमुक वस्तु क्यों है और दूसरी क्यों न हुई, इसका कारण धर्म ही है। "स्वलक्षणधारणात् धर्मः।" धर्म ही विश्वको धारण किये हुए है। धर्म शब्द 'धृ' (धारण करना) धातुसे बना है।

प्रभवार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ।
यः स्यात्प्रभवसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ॥
धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः ।
यः स्याद्धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः
अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ।
यः स्यादहिंसया युक्तः स धर्म इति निश्चयः ॥

—महाभारत, शा० प० १०९–१२ ।

अर्थात् *जीवोंकी रक्षाहीके लिए* धर्मकी घोषणा की गई थी । धर्म वही है कि जिसके द्वारा जीवोंका हित हो । यह निश्चित बात है । धर्म ही समस्त वस्तुओंको स्थिर रक्खे हुए है और धारण किये हुए है । धर्मसे ही लोग बँधे हुए हैं । यह निश्चित है कि जिस वस्तुके द्वारा सबका धारण होता है वही धर्म है । धर्मकी घोषणा इस लिए की गई थी कि जिसमें *जीव एक दूसरेको दुःख न पहुँचा सकें ।* अतएव धर्म वही है कि जिसके द्वारा जीव एक दूसरेको दुःख न पहुँचा सकें । धर्मके ही द्वारा समाज बँधा हुआ है । एक क्षणके लिए भी यदि धर्मका साम्राज्य उठ जाय तो सृष्टि पर महाप्रलय हो जाय । *यदि संक्षेपमें कहा जाय तो मज़हबका अर्थ है विश्वास, और धर्मका अर्थ है—नियम, आईन, सिलसिला । वस्तुके जीवनके नियमको धर्म* कहते हैं । धर्मका अँगरेज़ी अनुवाद "Law (with Capital 'L') "The Law of Being" हो सकता है ।"तत्त्वोंका कोई मज़हब नहीं है । हम मज़हब शब्दका प्रयोग अग्नि, जल, वायु और आकाशके साथ कदापि नहीं कर सकते । अग्निका, आकाशका, जलका, वायुका कोई मज़हब नहीं है; परन्तु धर्म अवश्य है । हम अपनी हिन्दी भाषामें भी इसी अर्थमें धर्म शब्दका प्रयोग किया करते हैं । यथा—अग्निका धर्म

जीवनके नियमको 'धर्म' कहते हैं ।

उष्णता है, पानीका धर्म ठण्डापन है, आकाशका धर्म ध्वनि है, इत्यादि। किसी वस्तुके जीवनके नियमका नाम धर्म है।"* जड़ चेतन सभी अपने अपने नियमके अधीन हैं, इसलिए धर्म शब्द सभीके लिए उपयुक्त है। *इसी कारण हिन्दूधर्मने अन्य मतके लोगोंको अपने धर्ममें लानेकी चेष्टा नहीं की। क्योंकि वह जानता था कि हर आदमीका धर्म भिन्न होना चाहिए। हर आदमीके स्वभाव और शारीरिक मानसिक नियम* एक प्रकारके *नहीं होते,* इसलिए हर मनुष्य अपने धर्मको सहजमें ही परित्याग नहीं कर सकता और निःसन्देह ऐसा करना अच्छा भी नहीं है। *हिन्दू स्वभाग्य-निर्णय और विचार-स्वातंत्र्य* (Self-determination)*में विश्वास करता था, मजहब, हठोक्ति आदिमें नहीं।* इसी कारण श्रीकृष्णने गीतामें स्वधर्मका माहात्म्य वर्णन किया है और परधर्मसे स्वधर्मको उत्तम बतलाकर स्वधर्मपरित्यागका निषेध किया है ×। इसी कारण हिन्दू-धर्म इतना महान् है कि उसकी परिभाषा तक नहीं दी जा सकती, इसी कारण हिन्दूधर्म इतना विस्तृत है कि संसारके सभी मत और मजहब इसमें समा जा सकते हैं और इसी कारण हिन्दूके यहाँ एक ईश्वर नहीं बल्कि ३३ करोड़ देवता हैं।

---

* See B. C. Pal Soul of India.

× **श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात।**
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषं॥

—भगवद्गीता १८--४७।

अर्थात्—अपने धर्ममें चाहे कोई दोष भी दिखाई दे तो भी वह दूसरेके अच्छे प्रकार किये हुए धर्मसे अच्छा है। अपने स्वभाव-नियत कर्मको करनेसे मनुष्य पापका भागी नहीं होता।

राजनैतिक क्षेत्रमें धर्म-सिद्धान्त ।

राजनीतिके क्षेत्रमें पाश्चात्य लोग जिस स्वतंत्रता—Self-determination—स्वभाग्य-निर्णय—की घोषणा कर रहे हैं, हिन्दू उससे अनेक समयसे परिचित हैं। इसी लिए हिन्दुओंने अपने धार्मिक जीवनमें ही नहीं, वरन् राजनैतिक जीवनमें भी कभी किसी दूसरी जातिकी स्वतंत्रताके अपहरण करनेकी चेष्टा नहीं की है। इसी लिए उन्होंने दूसरोंको बलात्कार हिन्दू नहीं बनाया है—सबको अपनी रुचि और प्रकृत झुकाव—अपने धर्म—के अनुसार पूजा और विश्वास करनेकी स्वतंत्रता दी है और इसी लिए उन्होंने देश विदेश विजय नहीं किये हैं। इसी लिए वह स्वतंत्रता—जिसके प्राप्त करनेमें पाश्चात्य जगतको शताब्दियाँ लग गई हैं, जिसके लिए उसे अनेकों विप्लवोंका आश्रय लेना पड़ा है, और जिसके लिए उसने खूनकी नदियाँ बहाई हैं—भारतको सहजमें ही प्राप्त हुई थी। पाश्चात्य जगतसे सदियों पहलेसे भारत प्रजातंत्र-वादी है।*

बहुत समय पहले ही भारतने जीवनके नियमोंको अच्छी तरह समझ लिया था। उसने जान लिया था कि स्वतंत्रता ही जीवन है। *बिना स्वतंत्रताके जीवन जीवन नहीं रहता। क्योंकि जीवनका लक्षण है वृद्धि, प्रसार, विस्तार, बढ़ना या फैलना।* जीवनका लक्षण है अबाध अविश्रान्त फैलाव, और स्वतंत्रताके द्वारा ही जीवन पूर्णरूपसे उन्नत और विकसित हो सकता है।

* लेखकको यहाँ पर इस वाक्यके उल्लेख मात्रसे ही संतुष्ट होना पड़ता है। प्रमाणोंके लिए स्थान नहीं है। देशके अनेक विद्वान् सपूतोंने और ज्ञानके उपासक कुछ निष्पक्ष पाश्चात्य पण्डितोंने इसके जो प्रमाण दिये हैं, उनकी अवहेलना करना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव है। थोड़ा भी अध्ययन करनेसे इस विषयके असंख्य प्रमाण प्राप्त हो सकते हैं।

मज़हब एकता या सादृश्य पर और धर्म स्वतंत्रता, भिन्नता, असादृश्य पर ज़ोर देता है। मज़हब सबको एक साँचेमें ढालना चाहता है परन्तु धर्मका सिद्धान्त है—"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।" भारत जानता था कि संसारकी उन्नति और पूर्ण विकासके लिए "सभी विभिन्नताओं और विलक्षणताओंकी आवश्यकता है। उनमेंसे किसीके भी नष्ट हो जानेसे मानव जाति दरिद्र हो जायगी। नानात्व—असादृश्यमें ही जीवनका सौन्दर्य्य है। स्वरोंकी भिन्नता, परिवर्तन और उतार चढ़ावमें ही संगीतका आनन्द है। कई रंगोंके समागम, कई रंगोंकी मिलावट और उन रंगोंके कहीं पर गहरे और कहीं पर फीके होनेमें ही चित्रोंकी शोभा है। इसी प्रकार जीवनके नानात्व और भिन्नत्वहीमें जीवनका रहस्य और स्वाद केन्द्रीभूत है। अटूट समानता—अविच्छिन्न सादृश्य—कष्टप्रद है *।" इसीलिए भारतने कभी बलप्रदर्शन नहीं किया है। उसने सभीको बढ़ने और विकसित होनेका अवसर दिया है।

धर्मका सिद्धान्त ही भारतका प्राण है—यही उसकी विशेषता है और इसीमें उसका व्यक्तित्व है। जिस दिन भारतके जातीय जीवनका इस सिद्धान्तसे पार्थक्य हुआ, उसी दिनसे भारतकी अवनति भी शुरू हुई।

पाश्चात्य जगतकी जातीयताकी समालोचना करते हुए और वहाँ स्वतंत्रता—प्रजातंत्रात्मक शासन—के असफल होनेके कारणों पर

---

* जनवरी १९२२ की 'प्रभा'में प्रकाशित लेखकके 'स्वराज्य समस्या पर स्वतंत्र विचार' शीर्षक लेखसे उद्धृत। उक्त लेखमें धर्मके ऊपर राजनैतिक दृष्टिसे विचार किया गया है। यदि पाठक उक्त लेखको पढ़नेका कष्ट उठावेंगे, तो बहुत लाभ होगा। यहाँ उसके अधिक अवतरण नहीं दिये जा सकते।

विचार करते हुए लेखकने अन्यत्र * लिखा है कि "पाश्चात्योंने जातीयताके यथार्थ मर्मको—जो धर्मका ही दूसरा स्वरूप है—नहीं समझा है। योरोप केवल राजनैतिक जीवनमें ही बड़े बड़े स्वेच्छाचारी बादशाहों द्वारा दासताकी जंजीरोंसे जकड़ा रहा हो, ऐसा नहीं है, वरन् अपने आध्यात्मिक जीवनमें भी वह परतंत्र रहा है। पोपों, गिरजोंके साम्प्रदायिक रीति रस्मों और मज़हबकी योरोपमें वह शक्ति रही है कि उसके सामने बलवान्से बलवान् राजाओंकी शक्ति तुच्छ और निःसत्व प्रतीत होती है। सारांश यह कि योरोप धर्मके सिद्धान्तसे सदा ही अपरिचित रहा है। इसी लिए उसके यहाँ इतनी राजनैतिक और मज़हबी लड़ाइयाँ हुई हैं और इसी लिए योरोपीय लोगोंको इतने दिनों तक प्रत्येक क्षेत्रमें दास होकर रहना पड़ा है। इसी लिए योरोपकी स्वतंत्र जातियाँ अन्य जातियोंकी—चाहे वे योरोपकी हों या और अन्यत्रकी—स्वतंत्रताका अपहरण करना चाहती हैं। उन्होंने वास्तविक जातीयताको—धर्मको—बिल्कुल नहीं समझा है। आज़ादीके मंत्रने अभी तक उनके कर्ण-कुहरमें प्रवेश नहीं किया है। हममेंसे जो कोई सुनना चाहे वह सुन सकता है कि स्वतंत्रताकी देवी पुकार पुकार कर स्पष्ट शब्दोंमें कह रही है कि—"मेरे उपासको ! मेरी प्रिय सन्तानो ! तुमने अभी तक मेरी पूजाकी विधि नहीं जानी। तुमने अभी तक मुझे प्रसन्न करनेका ढंग नहीं सीखा। मैं स्वतंत्रता या आज़ादीसे भरे हुए हृदयमें ही वास कर सकती हूँ—संकीर्णता, असहिष्णुता, हिंसकतासे भरे हुए हृदयमें नहीं। ऐ मेरी सन्तानो ! जब तुम दूसरोंको परतंत्र बनाना चाहते हो, दूसरोंके विचारों, भावों

---

*देखो—जून १९२३ की 'प्रभा'का 'एक सामाजिक गोरख धंधा' शीर्षक लेख।

और आदर्शोंसे घृणा करते हो, केवल खुद ही सुखसे दिन काटना चाहते हो और दूसरोंको इस शस्यश्यामल, धन-रत्न-आनन्द-शोभा-सौन्दर्य्य-संकुल पृथ्वीपर ही नरककी चाशनी चखाना चाहते हो, तब मुझे क्यों कर पा सकते हो? क्या तुम नहीं जानते कि मैं घृणा, असहिष्णुता और संकीर्णताकी दुर्गन्धमें क्षणभर भी नहीं टिक सकती? इस विराट् विश्व, अनन्त प्रकृतिमें सभीकी आवश्यकता है—सभीके रहनेके लिए स्थान है। सभीके निर्वाहके लिए सामग्री है। फिर व्यर्थके झगड़ोंसे क्या लाभ? दूसरोंको परतंत्र रखकर तुम कदापि स्वतंत्र नहीं रह सकते। तुम्हारी निजकी स्वतंत्रताके लिए भी सबकी स्वतंत्रताको आवश्यकता है। मेरे उपदेशको स्मरण रक्खो, तभी तुम मुझे प्राप्त कर सकोगे, अन्यथा नहीं।"

फ्यूडैलिज्म (मनसबदारी), इन्क्वीजिशन, पोपों और अप्रतिहत-शक्ति-सम्पन्न राजाओं द्वारा बहुकाल तक शासित रहनेवाला योरोप शीघ्र ही पुरानी बातोंको नहीं भूल सकता। सुदीर्घ समय तक मानसिक गुलामी करनेवाला—मानसिक और बौद्धिक क्षेत्रमें मज़हबके अखण्ड एकाधिपत्यको माननेवाला—योरोप शीघ्र ही अपने राजनैतिक जीवनमें साम्यवादी नहीं हो सकता—एकदम स्वतंत्रताके सिद्धान्तों पर चलना नहीं सीख सकता। संस्कार, परम्परा या वंशानुक्रमका प्रभाव जल्दी नहीं मिटाया जा सकता। इसी लिए योरोपके स्वतंत्रतावादी और साम्यवादी प्रजातंत्रोंमें भी सच्ची स्वतंत्रताका *दर्शन नहीं होता।* *धर्मसि*द्धान्तके अभावके कारण योरोपमें मनुष्यकी पशुता पराकाष्ठा पर पहुँच गई है। उसने मानवताके हृदय पर जो बड़े बड़े घाव कर दिये हैं वे बिना 'धर्म' की सहायताके कदापि नहीं भर सकते। मानवजाति मात्रके कल्याणके लिए धर्म सबसे अधिक आवश्यक वस्तु है। मनुष्यके जीवनमें यह न जाने कब पूर्णताके साथ अवतार लेगा!

सारांश यह है कि मज़हब बेड़ी है, और धर्म स्वतन्त्रता है। मज़हब अँधेरा कारागार है, और धर्म सूर्य्यका प्रकाश है जिसके द्वारा रंग बिरंगे पौधे लहलहाते हैं, हज़ारों मालती, चम्पक, चमेली और गुलाब खिलखिला उठते हैं और सारे जीवधारी अपना प्राण धारण किये हुए हैं। मज़हब उन्नतिका दुश्मन, स्वतंत्रताका प्राणघातक विष और ज्योतिसे घबड़ानेवाला तथा अन्धकारको पसन्द करनेवाला, चमगादिड़ है। इसके विरुद्ध धर्म ज्योतिका मित्र और सर्व प्रकारके तापोंको हरण करनेवाला अमृत है। मज़हब मृत्यु है, धर्म जीवन है। मज़हब मनुष्यको गुलाम बनाता है और धर्म अपने सारे कार्य्योंका स्वामी। मज़हब भीरु और कायर है। वह अपने उद्देशसाधनके लिए हत्या, अत्याचार, इन्क्विजिशन आदि किसी भी कार्य्यसे बाज़ नहीं आता; परन्तु धर्म दयासे काम लेता है, बैर और द्वेषसे नहीं। धर्म कहता है कि हर मनुष्य अपनी ज्योतिके अनुसार अपना जीवननिर्वाह कर सकता है, हर मनुष्यको अपना मज़हब आप बनाना चाहिए, उसे दूसरोंके अनुकरण और आज्ञापालनमें संतुष्ट न रहना चाहिए। उसका उपदेश है कि *अन्ध अनुकरण और आज्ञापालन द्वारा मनुष्यको आत्महत्या नहीं करनी चाहिए, बल्कि अपने व्यक्तित्व (धर्म) को पूरे तौरसे प्रकाश करके अपने जीवनका परिचय देना चाहिए।*

मज़हब और धर्म।

यदि हिन्दूधर्म यही है जैसा कि पहले प्रमाणित किया जा चुका है तो इस दृष्टिसे देखने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि हम आज कल हिन्दू नहीं, बल्कि मुसलमान और क्रिस्तान हैं और सो भी कट्टरसे कट्टर। अपने रक्त और धर्मको पवित्र तथा अकलुषित रखनेके लिए अपनी

हम हिन्दू हैं या क्रिस्तान और मुसलमान ?

जातिप्रथाको हम भले ही करोड़ों धन्यवाद दिया करें; परन्तु सत्य इसके सर्वथा प्रतिकूल है। हमारे धर्मकी (बहुतसे विद्वान् कहते हैं कि हमारे रक्तकी भी !) पवित्रता निःसन्देह जाती रही है। विजातियोंने केवल हमारे देशको ही नहीं, धर्मको भी विजय कर लिया है। हमारी पूजा बन्दना निःसन्देह संस्कृतमें होती है, हमारे देवता और देवियोंके नाम निःसन्देह पुराने और हिन्दू ही हैं, हम मुसलमानों और क्रिस्तानोंसे घृणा भी असीम रखते हैं, तौभी हमारी धार्मिक अन्तरात्मा क्रिस्तानों और मुसलमानोंके ही समान बन गई है। सारांश यह कि *आज हमारे यहाँ मजहबका साम्राज्य है, धर्मका नहीं।* हमारे आधुनिक मज़हबी विचार और आचार मुसलमानों तथा क्रिस्तानोंसे कहाँ तक मिलते जुलते हैं, यह पूर्वके अध्यायोंमें दिखलाया जा चुका है। वास्तवमें हम इस समय मुसलमान और क्रिस्तान ही हैं। हमारी अन्तःप्रेरणायें—हमारे जोश—क्रिश्चियानिटी और इसलामसे ही आते हैं। हमने अपने आधुनिक ईश्वरको भी क्रिस्तानों और मुसलमानोंके साँचेमें ढाल दिया है। हम उन्हींके समान उससे डरते और उसका सम्मान करते हैं। उनके मज़हबके प्रायः सभी सिद्धान्तों पर हम इस समय विश्वास करते हैं—यथा, ईश्वरसे भय, अतिप्राकृतिक और प्रारब्धमें विश्वास, धर्मोन्माद, अन्धविश्वास इत्यादि इत्यादि। *इस समय धर्मका अर्थ सदाचार नहीं, वरन् यन्त्रवत् कुछ शब्दोंका उच्चारण और कुछ विधियोंका पालन करना है। अब* सच्चरित्र नहीं किन्तु सबसे अधिक अतिप्राकृतिक शक्ति रखनेका दावा करनेवाले लोग धर्मात्मा कहलाते हैं। इस समय मदारी फ़कीर और धूर्त लोग ही संत और महात्मा कहलाते हैं। धर्म इस समय स्वार्थत्याग या परोपकारमें नहीं वरन् स्वार्थपरतामें रह गया है। हमारे अँगरेज़ी पढ़े लिखे विद्वा-

यथावास्थित पथावलम्बी और इतरपथावलम्बी दोनों दल अहिन्दू हैं।

नतक अतिप्राकृतिकमें विश्वास करते हैं। इस समय धर्म हमारे हृदयको छूता तक नहीं है। इस समय यथास्थितपथावलम्बिता (orthodoxy) और इतरपथावलम्बिता (hetrodoxy) में कोई भेद नहीं है। दोनों ही दल अहिन्दू हैं। यदि एक प्रत्यक्ष रीतिसे क्रिश्चियानिटी और इसलामकी नकल करता है तो दूसरा अप्रत्यक्ष रीतिसे—तनिक छिपे हुए तरीक़ेसे।

कुछ समयसे भारतमें अनेक सुधारक समितियाँ जन्म ग्रहण कर रही हैं। अनेक सम्प्रदाय भी स्थापित हो रहे हैं। इनमेंसे कुछ सम्प्रदाय तो ऐसे हैं जो एकदम पाश्चात्य भाव, पाश्चात्य विचार और पाश्चात्य आदर्शोंकी नकल हैं। ये प्राचीनताकी अपेक्षा नवीनताहीको अधिक पसन्द करते हैं। किसी साधारणसे साधारण निरीक्षकसे भी यह छिपा न होगा कि इनका धर्म एक प्रकारकी क्रिश्चियानिटी है—निःसंदेह प्राचीन क्रिश्चियानिटी नहीं, बल्कि उन्नत और नूतन क्रिश्चियानिटी। अतएव इनके सम्बन्धमें और कुछ कहना व्यर्थ है।

इनके एकदम विपरीत एक दूसरे प्रकारके सम्प्रदाय हैं। ये प्राचीनताके पक्षपाती और नवीनताके शत्रु हैं। इन्हें नवीनमें—वर्तमानमें—आधुनिकमें—कोई सौन्दर्य्य, कोई आशा, कोई प्रभा, किसी प्रकारका कल्याण मङ्गल नहीं देख पड़ता। ये अपने धर्म और उसकी रीति नीतियोंके सम्बन्धमे सोचने विचारनेकी ज़रा भी ज़रूरत नहीं समझते हैं। ये वर्तमान धर्मविचार, रीति-नीति, जातिप्रथा, मूर्तिपूजा, पिण्डदान, दान पुण्य, तीर्थ उपवास, सत्यनारायण और अनन्तकथा इत्यादि सबको निशंक पालन करना चाहते हैं। पूर्वके अध्यायोंमें कुछ लोक-प्रिय ग्रन्थकारोंके जो वचन उद्धृत किये गये हैं उनसे ऐसे लोगोंके हृदयका पता पूरे तौरसे चलता है और यह सिद्ध होता है कि ये कहाँ तक हिन्दू हैं और

कहाँ तक मुसलमान या क्रिस्तान। इन लोगोंके सम्बन्धमें भी हम यहाँ पर कुछ अधिक नहीं कहना चाहते।

हिन्दुओंका एक और दल भी नवीनताका विरोधी है जिसके सम्बन्धमें यहाँ पर कुछ लिखना आवश्यक प्रतीत होता है। यह दूसरा दल वर्तमानको निःशंक पालन करना नहीं चाहता। यह सोचता है कि वर्तमानमें बड़ी बुराई, बड़ी त्रुटि, बड़ा दोष है जिसका सुधार करना अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु इस दलका कथन है कि इस सुधारके लिए हमें और किसी ओर दृष्टिपात करनेकी आवश्यकता नहीं है। हमारा प्राचीन सर्व प्रकारसे उन्नत, महान् और श्रेष्ठ था, अतएव हमें उस प्राचीनका ही अनुकरण करना चाहिए। वह प्राचीन केवल धर्ममें, नैतिक आदर्शोंमें, और कला कौशल्यमें ही नहीं, वरन् विज्ञानमें भी बड़ा था। अतएव हमें पाश्चात्य संसारसे विज्ञान सीखनेकी भी आवश्यकता नहीं है। क्या वेदमें रेल और तारबर्की नहीं है? क्या वेदमें तोप और बन्दूक नहीं है? यदि नहीं तो देवताओंके अग्निवाण चलानेका क्या अर्थ है? क्या वेदमें मोटरकार नहीं है? यदि नहीं तो हवासे बात करनेवाले और क्षणमात्रमें कोसों पहुँचानेवाले रथोंका क्या आशय है? क्या वेदमें ज़ेप्लिन और एरोप्लेन (हवाई जहाज) नहीं हैं? यदि नहीं, तो देवताओंके विमानारोहणका क्या तात्पर्य्य है? सारांश यह कि इस दलके लोग सुधारके द्वारा प्राचीनको ही पुनः स्थापित करना चाहते हैं, वर्तमानको प्राचीनसे बदलना चाहते हैं। थोड़ासा ही विचार करनेसे विदित हो जाता है कि इस सम्प्रदायके सुधारोत्साहके उद्गम भी क्रिश्चियानिटी और इसलाम ही हैं।

यथार्थमें इस दलकी उत्पत्ति मुसलमानों और क्रिस्तानोंके तर्कों और आघातोंका उत्तर देनेके निमित्त हुई थी। परन्तु यह उत्तर हिन्दू रीति-

नीतिके मण्डन द्वारा नहीं बल्कि उन रीतियों, उन विचारों, उन व्यवहारों और उन कार्य्योंके खण्डनके द्वारा दिया गया जिन्हें क्रिस्तान और मुसलमान निन्दित समझते हैं । अर्थात् पहले तो एक तरहसे हिन्दूधर्मकी निचाई स्वीकार कर ली गई और तब वेद और अन्य ग्रन्थोंमें इसके प्रमाण ढूँढ़े गये कि वर्तमान समयका प्रचलित हिन्दूधर्म यथार्थ वैदिकधर्म नहीं है और यह सिद्ध किया गया कि शुद्ध वैदिक धर्म इसलाम और क्रिश्चियानिटीसे किसी प्रकार कम नहीं है । निःसन्देह इनमेंसे एक सम्प्रदायने तो 'हिन्दू' शब्दको ही घृणित समझ कर परित्याग कर डाला । वर्तमान जातिप्रथा और मूर्त्तिपूजा इत्यादिके खण्डनमें यह दल पादरियों और मौलवियोंसे भी आगे बढ़ गया है । और अन्य मतवालोंको हिंदू बनानेमें तो इसके जोशका ठिकाना ही नहीं है । इस सम्बन्धमें तो इनके सामने पादरी साहबोंके भी छक्के छूटते हैं । शहरोंमें ऐसा अक्सर हुआ है कि इनको देखनेके साथ ही पादरी साहब अपनी किताबों आदिको छोड़ तशरीफ ले भागे हैं । दलीलों और युक्तियोंमें ये उनसे भी तेज निकले ! अतएव *मौलिक विचारोंकी दृष्टिसे इस दलमें और क्रिश्चियानिटी तथा इसलाममें कोई भिन्नता नहीं है । धर्मोन्माद, विश्वासप्रधानता और हठ दोनोंमें विद्यमान हैं, चाहे वह क्रिस्तान या मुसलमान धर्मोन्माद हो और चाहे हिन्दू धर्मोन्माद*—चाहे हम वेदमें विश्वास करें और चाहे बाइबल और कुरानमें। पहले हम यह देख ही चुके हैं कि धर्मोन्माद हिन्दूधर्मका अङ्ग नहीं है और हिन्दूधर्म विश्वास-विशिष्ट नहीं है ।

अतएव यह कहना पड़ता है कि वास्तवमें यह दल इसलाम और क्रिश्चियानिटीका विरोधी नहीं वरन् दोनोंका अनुकरण है । हिन्दू बहुदेववादी हैं, इसलिए एक ही अनन्त सर्वशक्तिमान ईश्वरका पूजन

सत्य है । क्रिस्तान और मुसलमान कहते हैं कि हिन्दू बड़े मूर्ख हैं, क्योंकि वे राम कृष्ण इत्यादि साधारण मनुष्योंको ईश्वरका अवतार समझते हैं । भला ईश्वर मनुष्य किस प्रकार हो सकता है ? इसी प्रकार अद्वैतवादका सिद्धान्त भी कितनी मूर्खतासे परिपूर्ण है ? 'सोऽहम्' 'तत्वम् असि' किसी सिड़ी या पागलने कहा होगा, इसलिए उपनिषद् वेदके अंग नहीं हैं । पुराणोंमें कैसी कैसी झूठी कथायें लिखी हैं ! इसलिए पुराण सब मिथ्या हैं ! वर्तमान समयमें विधवा-विवाहकी बड़ी आवश्यकता है, इसलिए विधवाविवाह वेदसंगत है ! मरे हुए पितर पिण्ड ग्रहण नहीं कर सकते, इसलिए श्राद्ध भी वेदविरुद्ध है ! हिन्दुओंकी सबसे बड़ी मूर्खता तो यह है कि वे लकड़ी और पत्थरकी पूजा करते हैं ! लकड़ी और पत्थर भी कहीं खाते हैं ! वे भी कहीं अर्घ्य ग्रहण करते हैं !! निःसन्देह प्रतिमापूजा तथा एक ईश्वरके अतिरिक्त और किसी देवता या वस्तुकी पूजा वेदके विरुद्ध है !!

सारांश यह कि चाहे हम यथास्थितपथावलम्बी हों या इतरपथावलम्बी—चाहे हम सुधारोंके प्रेमी हों या चुप बैठनेके—चाहे हम वर्तमानके पक्षपाती हों या प्राचीनके—चाहे हम आधुनिक योरोपका अनुकरण करना चाहते हों या प्राचीन भारतका—हमारा धर्म वास्तवमें इस समय हिन्दू नहीं, वरन् क्रिस्तान और मुसलमान है । हमारी रगोंमें, हमारे समस्त व्यावहारिक जीवनमें, पूर्णतया विजातीय आदर्शों और विजातीय भावोंने अपना घर बना डाला है और यही हमारी अवनतिका कारण है । हमारी अधोगति उसी दिनसे आरम्भ हुई जिस दिनसे हम मजहबी हुए ।

संसार एक महान् जीवनप्रयास है और इसमें विजय प्राप्त करनेके लिए मनुष्यको अपनी परिस्थितियों या पारिपार्श्विक अवस्थाओं (environment) के अनुकूल बनना ही पड़ेगा । प्राकृतिक नियम बड़े

कड़े हैं। प्रकृति दीन हीन या दुर्बलकी परवाह नहीं करती। स्वदेशबन्धुओ ! तुम्हारा काम दीन दुर्बल बननेका नहीं, वरन् प्रकृतिका सामना करनेका, उस पर विजय प्राप्त करनेका है। उठो, आलस और कायरतासे काम न चलेगा। प्रकृति निर्दय है, देवता बहरे हैं, संसारमें नियमविरुद्ध कोई कार्य नहीं होता। ईश्वर भी नियमको नहीं पलट सकता—उसका भी कोई चारा नहीं। उठो, मैदानमें आ डटो, वीर बनो। तब प्रकृति भी तुम्हारा सामना नहीं कर सकेगी। याद रक्खो—"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"। वीरता दिखलाओ, सत्कर्ममें रत हो जाओ। देखो तुम्हारे धर्मग्रन्थका बचन है—

अपहाय निजं कर्म कृष्णकृष्णेति वादिनः।
ते हरिद्वेषिणः पापाः धर्मार्थं जन्म यद्धरेः॥

विष्णुपुराण।*

अर्थात् "अपने कर्मोंको छोड़ 'कृष्ण कृष्ण' कहते रहनेवाले लोग हरिके द्वेषी और पापी हैं, क्योंकि स्वयं हरिका जन्म भी तो धर्मकी रक्षा करनेहीके लिए होता है।" सत्यव्रत ग्रहण करो, सदाचारका अवलम्बन करो। केवल यही एक धर्म तुम्हें शोभा देता है। अन्य सब मत बहुत संकुचित, एकदम छोटे, अत्यन्त क्षुद्र हैं। सत्यको और स्वतन्त्रताको छोड़ कर तुम इनमें कब तक लिप्त रहोगे? याद रक्खो कि सभी मत और मज़हब तुम्हारे लिए बनाये गये हैं, तुम उनके लिए नहीं बनाये गये। भय और स्वार्थपरता तुम्हे शोभा नहीं देती। प्रह्लाद और ईसाके समान कष्ट भोगनेके लिए कटिबद्ध हो जाओ। क्या इस भयसे कि देवता तुमसे रूठ जायँगे, ईश्वर तुमसे कुपित होगा, तुम सत्यको परित्याग कर डालोगे? उठो यह भय तुम्हें शोभा नहीं देता और इस कविके साथ कहो कि—

* Quoted in Gita Rahasya.

सिजद:से गर बहिश्त मिले दूर कीजिये।
दोज़ख ही सही सरका झुकाना नहीं अच्छा॥

तुलाधारने जाजलिको क्या ही उत्तम शिक्षा दी थी—

जाजले तीर्थमात्मैव मास्मदेशातिथिर्भव॥
एतानीदृशकान्धर्मानाचरन्निह जाजले।
कारणैर्धर्ममन्विच्छन्स लोकानाप्नुते शुभान्॥

—महाभारत, शा० प० २६३-४१।

"हे जाजलि! तेरा आत्मा ही एक अति पवित्र मन्दिर है। अतएव इधर उधर पृथ्वी पर तीर्थभ्रमण मत करता फिर। अपने कर्तव्यको पालन कर। अपनी बुद्धिके अनुसार धर्मकी उपासना करनेवाला मनुष्य निसन्देह स्वर्ग प्राप्त करता है।"

भारतवासियो, तुम इस समय अत्यन्त हृदयहीन हो रहे हो, मृतप्राय हो रहे हो। तुम तो एक बारगी टससे मस भी नहीं होना चाहते; परन्तु ऐसा करनेसे काम नहीं चलेगा। संसार चल रहा है, पृथ्वी चल रही है, ग्रह नक्षत्र सभी चक्करमें हैं। 'जगत्' शब्दका अर्थ ही चलना है। गति ही जीवनका नियम है। तब क्या केवल तुम ही खर्राटे मारते रहोगे? पक्षपातका ऐनक उतारो और निष्पक्ष होकर संसार पर दृष्टि डालो। देखो, तुम्हें निद्रा आगई और इतने ही अवसरमें असभ्य पाश्चात्य बढ़कर कहाँसे कहाँ जा पहुँचे। उठो उठो, अब भी तुम आगे निकल जा सकते हो। अपने झुण्डके झुण्ड नवयुवकोंको पाश्चात्य देशोंमें भेजो। पाश्चात्य संसार इस समय अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्रमें बहुत उन्नति कर गया है। वहाँ अनेक विप्लव, अनेक आन्दोलन, अनेक नूतन भाव और विचार जन्म ग्रहण कर रहे हैं। तुम उससे शिक्षा ग्रहण करो। इसमें लज्जाकी कोई बात नहीं है। साथ ही साथ यह याद रक्खो कि तुम हिन्दू हो। अपने आदर्शोंको कदापि न छोड़ो। तुम कुछ समयसे

नहीं, वरन् शताब्दियोंसे, युगोंसे हिन्दू हो। तुम्हारी मानसिक बनावट, तुम्हारा शारीरिक संगठन हिन्दू धर्मके ही उपयुक्त है। युगोंसे तुम्हारी रगोंमें हिन्दूरक्त दौड़ रहा है। अतएव तुम्हारी उन्नति हिन्दू रह कर ही हो सकती है, विजातियोंके अन्ध अनुकरणद्वारा नहीं। तुम्हारा 'स्वधर्म' ही तुम्हारे काम आवेगा, दूसरोंका 'मजहब' नहीं।

तुममें एक बहुत बड़ा ऐब है, उसे परित्याग करो। तुम्हारा हृदय बहुत क्षुद्र है, तुम्हें कहीं भी कोई सौन्दर्य्य नजर नहीं आता। सङ्कीर्णताको छोड़ो, उदार बनो। अब मैक्समूलर, पॉल ड्यूसन, शौपेनहॉर, गेटी आदि विद्वानोंकी पुस्तकोंको हाथमें लेकर घूमते फिरनेसे तथा अपने भूतकालकी प्रशंसा करते फिरनेसे काम न चलेगा। तुम्हारा भूत निःसन्देह बड़ा उज्ज्वल था, परन्तु इस कारण क्या अन्य देशों और जातियोंसे तुम कोई शिक्षा ग्रहण करोहीगे नहीं? स्मरण रक्खो कि तुम्हारा वेद कोई सीमाबद्ध गिने हुए पृष्ठोंका ग्रन्थ नहीं है, वरन् वह विद्या है और इसलिए अनन्त है। विद्या किसीके इजारेमें नहीं है, विद्याकी कोई सीमा नहीं है। प्राचीनता-प्रेमके उन्मादमें मूढ़ विश्वासोंका, कुरीतियोंका, निरर्थक आचार-नियमोंका पालन मत करो और न उन सबके मध्य किसी प्रकारके गुह्य आशय ढूँढ़नेका व्यर्थ यत्न करो। अपनी शक्तियोंको व्यर्थके मजहबी झगड़ोंमें—सूत्रोंके अर्थ लगानेमें—मत नष्ट करो। अतिप्राकृतिकको छोड़ो, याद रक्खो कि हर जगह प्राकृतिक नियम विद्यमान हैं, नियमविरुद्ध कोई कार्य्य नहीं होता। किसीके सहारेकी उम्मीद छोड़ो, निज बलसे खड़े होओ और स्वपराक्रमसे विजय प्राप्त करो।

तुम्हें प्राचीन या अर्वाचीन किसीके भी अनुकरणकी आवश्यकता नहीं है। केवल सत्यव्रत धारण करो और ज्ञानका अवलम्ब ग्रहण करो। विजातीयताके* जोशमें अपने धर्म, अपने आदर्शों, अपने देवताओं तथा अपने

---

* हम पहले देख चुके हैं कि इतरपथावलम्बिता तथा प्राचीनप्रेम भी यथार्थमें विजातीय अनुकरण हैं।

पुराणोंको गालियाँ मत सुनाओ। हम पहले ही कह चुके हैं कि पक्षपात ठीक नहीं और हम यह कदापि नहीं कहते कि तुम प्राचीन यज्ञ और हवनको जारी कर दो। (निःसन्देह हज़ारों वर्ष पूर्वके देवता इस बीसवीं शताब्दिमें तुम्हारे देवता कदापि नहीं हो सकते।) परन्तु हाँ, यह अवश्य कहना पड़ेगा कि सम्मान करना सीखो। तुम्हारे पुराण कथा-मात्र हो सकते हैं (हम ज़ोर नहीं देते कि वे इतिहास हैं); परन्तु वे बड़े सुन्दर हैं। उनमें हज़ारों रत्न भरे हैं। उनकी कविता पर हज़ारों होमर वारे जा सकते हैं। ऐयाश या लम्पट समझ कर तुम प्यारे श्रीकृ-ष्णसे घृणा मत करो। श्रीकृष्ण ही भारतकी आत्मा—रूह—हैं। जिन घटनाओंको तुम अश्लील समझते हो, वे बड़ी ही सुन्दर हैं। स्थूल पाप दृष्टिको छोड़ो, पवित्र कविताकी दृष्टिसे देखो। *तुम अपने इतिहासके किसी भी अध्यायसे घृणा मत करो*। क्या तुम भारतके इतिहाससे पौराणिक समयको निकाल सकते हो? यदि तुम रक्त, मांस और चम-ड़ेको निकाल फेंकोगे; तो केवल हड्डीरूपी वेदसे क्या उपकार होगा? क्या राम और कृष्ण, अन्नपूर्णा और लक्ष्मी, सीता और सावित्री, सरस्वती और पार्वती, दुर्गा और जगद्धात्रीसे शून्य भारतका इतिहास शोभा देगा? और क्या मुसलमान-समयको भी तुम इतिहाससे निकाल सकते हो? क्या नूरजहाँ या चान्द बीबी, बीरबर या टोड़रमल, अकबर या अबुल-फजल, प्रताप या शिवाजी, ताज और तानसेनसे शून्य भार-तका इतिहास शोभा देगा?

प्राचीन या अर्वाचीन किसीसे भी काम न चलेगा। केवल सत्यका आश्रय ग्रहण करो और ***प्राचीन, माध्यमिक और अर्वाचीन, इन सबका एक संश्लेषण उपस्थित करो।***

सतरहवाँ अध्याय।

नैतिक धर्म।

१—मनुष्यका स्वभाव।

क्या नीति मज़हबका स्थान ग्रहण कर सकती है?

गत अध्यायोंमें हम देख चुके हैं कि मजहब और सदाचारके क्षेत्र पृथक् पृथक् हैं। मजहब सदाचारप्रचारमें यथेष्ट सहायता प्रदान नहीं कर सकता। *अब हमें इस प्रश्न पर विचार करनेकी आवश्यकता है कि मज़हबका स्थान नीति ग्रहण कर सकती या नहीं* और क्या मज़हबके अभावमें भी मनुष्य सच्चरित्र हो सकता है? बहुतसे लोग कहेंगे कि मज़हबके न रहने पर मनुष्य पशु बन जायगा, स्वार्थपरताका साम्राज्य हो जायगा और निःस्वार्थताका सर्वथा विनाश हो जायगा। लोग चार्वाककी शिक्षाओं पर चलने लग जायँगे। परन्तु उनका यह कथन निराधार है।

पूर्व अध्यायों पर एक नज़र।

क्या मनुष्य मज़हबके न रहने पर भी सच्चरित्र हो सकता है? इस प्रश्नका उत्तर एक दूसरे प्रश्नके उत्तर पर निर्भर है और वह यह है कि क्या मनुष्य निःस्वार्थ हो सकता है? हम देख चुके हैं कि सदाचारकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई है और वह *प्राचीनसे भी प्राचीन मजहबोंसे कितना प्राचीन है।* बिल्ली भी अपने बच्चोंकी परवाह करती है और उनका लालन पालन करती है। एक साधारण चिड़िया भूख आरामकी कुछ भी परवाह न

कर अहर्निश अपने अण्डोंको सेती रहती है, अण्डोंमेंसे तुरंत निकले हुए बच्चोंको अपनी छातीके नीचे परोंसे छिपाये रखती है, इन नन्हें नन्हें बच्चोंकी—जिनकी अभी आँखें तक नहीं खुली हैं—चोंचोंको अपने मुँहमें लेकर उन्हें अपने पेटसे आधे पचे हुए अनाजको उगल उगल कर खिलाती है और जब वे बच्चे ज़रा सयाने हो जाते हैं तब तो कहनेकी कुछ बात ही नहीं है, स्वयं भूखों मर कर भी, अपने पेट-के अन्दर खाये हुए अन्नको उगल उगल कर उन्हें खिलाती है और उनकी प्राणरक्षा करती है। भला कहिए तो कि कबूतर किस मज़हब और किस मतका अनुयायी है? नीतिका पाठ उसे किसने पढ़ाया है? स्वयं प्रकृतिने। बिना नीतिके आधारके सृष्टि एक क्षणके लिए भी स्थिर नहीं रह सकती। इसी निःस्वार्थताका—जो कि छोटी छोटी चिड़ियों और जानवरोंमें भी विद्यमान है—पूर्ण विकाश मनुष्यमें हुआ है। नीति या निःस्वार्थता मनुष्यके स्वभावका एक अंग है और मनुष्यने इसे किसी मज़हब या धर्मग्रन्थसे नहीं सीखा है। विकाश-शास्त्रके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि यह निःस्वार्थता युगयुगा-न्तरोंसे उन्नति कर रही है और फैल रही है। उससे यह भी स्पष्ट होता है कि जीवन-प्रयासमें यह निःस्वार्थता बहुत ही हितकारी है। गोया स्पष्ट शब्दोंमें प्रकृति ही हमसे सच्चरित्र होनेके लिए अनुरोध करती है। क्या मनुष्यको सदाचार व्रत धारण करनेके लिए इससे अधिक और भी किसी वस्तुके जाननेकी आवश्यकता है? हे मनुष्य! याद रख कि सदाचार-व्रत धारण करनेमें तू प्रकृतिकी—सारे विश्वकी—इच्छा पूर्ण करता है, अपने स्वभावको पूरा करता है और अपने विकाशके नियमके अनुकूल बनता है। सच्चरित्र होना ही तेरे स्वभावके अनुकूल है, दुश्चरित्र होना नहीं। सदाचार ही तेरे गौरवको

बढ़ाता है। क्या तू अपने स्वभावको—उस स्वभावको जिसे तूने युग-युगान्तरमें प्राप्त किया है—उस स्वभावको जिसके द्वारा तू मनुष्य कहलाता है और जिसके द्वारा तू पशु और वनस्पतिसर्गसे विभाजित होता है—उस स्वभावको जो तेरी उन्नति और जीवनका कारण है—परित्याग करना चाहता है और उसे परित्याग करके फिर अवनतिमें गिरना चाहता है? पशु और वनस्पतियोंसे भी अधम होना चाहता है? नहीं नहीं, कदापि नहीं, ऐसा विश्वास नहीं किया जा सकता।

मनुष्यमें ऊँचा स्वभाव विद्यमान है।

मनुष्य सुन्दर और पवित्रको, विना किसी इच्छाके, बिना किसी कामनाके, बिना किसी लोभ या भयके ग्रहण कर सकता है या नहीं? "मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं होता। मैं सोचता हूँ कि अब तक हम लोग मनुष्यको बहुत तुच्छ और नीच समझते रहे हैं। *हम सबमें उत्तम और ऊँचा स्वभाव विद्यमान है,* * *परन्तु हम उससे अपील नहीं करते और इसी कारण मानव-स्वभाव और मानव-जीवन अब तक इतना नीचा है। एक ऐसे नये धर्मका आविष्कार करो, जो मनुष्यको नीच और तुच्छ न समझे बल्कि उसकी अच्छी प्रकृतिसे काम ले, उसे प्रेम दया और न्यायकी ओर आकर्षित करे और उससे यह कहे कि इनसे युक्त होना ही तेरा यथार्थ स्वभाव है।*

---

* **मानसं सर्वभूतानां धर्ममाहुर्मनीषिणः।**
तस्मात्सर्वाणि भूतानि धर्ममेव समासते॥

—महा०—अनु० प०, १६२—६१।

अर्थात् बुद्धिमानोंने कहा है कि धर्म (सदाचार) की परताल प्रत्येक जीवके मनसे ही होती है। अतएव स्वभाव-प्रेरित प्रवृत्तिके द्वारा सभी जीव धर्म प्राप्त करना चाहते हैं।

मुझे आशा है कि थोड़े ही दिनोंमें इसके फलको देख कर संसार चकित हो जायगा। * ”

यदि स्वार्थपरता मनुष्यके स्वभावका एक अङ्ग है तो निःस्वार्थता भी एक अङ्ग है। *मनुष्य केवल अन्नहीके द्वारा नहीं वरन् प्रेम दया सहानभूति और न्यायके द्वारा भी जीवित है।* सदाचार केवल मज़हबहीके इजारेमें नहीं है। क्या उस माताकी तपस्या कम कठिन है जो अपने बच्चोंके बीमार पड़ने पर अहर्निश उसके समीप बैठ कर अपने शरीरकी भी कुछ परवा नहीं करती? क्या उन तपस्वियोंके आत्मोत्सर्गसे—जो ईश्वरके प्रसन्न करनेके निमित्त तथा स्वर्ग या मुक्ति प्राप्त करनेके हेतु संसार पर लात मार कर कठोरसे कठोर व्रतका पालन करते हैं—उस डाक्टरका आत्मोसर्ग कम महान् है, जो केवल संसार हितके लिए ही खुद ज़हर पान करता है और नई नई ओषवियोंका आविष्कार करता है तथा कुष्ट प्लेग विशूचिका या चेचक जैसी बीमारियोंके निदान आदिके अनुसंधानमें स्वयं इन व्याधियोंका शिकार बनता है? मज़हबी लोगोंके किसी भी यज्ञसे क्या उन वैज्ञानिकोंका यज्ञ हीन है, जो बिना किसी कामनाके केवल ज्ञानोपार्जनके निमित्त अनेकों कठिनाइयोंका सामना करते हैं और कभी कभी साक्रेटीज़ और ब्रूनोके समान प्राण तक खो बैठते हैं? निःसन्देह मज़हबी लोगोंके यज्ञों और पूजाओंसे इनका यज्ञ कहीं विशाल है। क्योंकि ये अग्नि-कुण्डमें अपने सर्वस्वको—अपने स्वार्थको—स्वाहा कर डालते हैं।

मनुष्यका स्वभाव।

सारांश यह कि मनुष्य केवल अपनी उदरपूर्तिसे संतुष्ट नहीं होता, केवल निजसुखसाधनसे उसकी तृप्ति नहीं होती। और जानवर केवल

* Salter–Ethical Religion P. 16.

अपने पेटकी फ़िक्र करते हैं, परन्तु *मनुष्य अपने आदर्शकी प्राप्ति चाहता है* । यह भविष्यके लिए—आगन्तुक पीढ़ियोंके लिए—अप्रसूत बच्चोंके लिए—उन मनुष्योंके लिए जिन्होंने अबतक जन्म भी नहीं लिया है—व्यस्त होता है और उनके सुख और आरामके लिए प्रयत्न करता है। अतएव इस चौपाईपर कदापि विश्वास नहीं किया जा सकता कि—

सुर नर मुनि सब कर ऐही रीती ।
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ॥

"*मनुष्य केवल अन्नहीके द्वारा नहीं वरन् प्रीति, प्रतीति, विश्वास और सहृदयताके द्वारा भी जीता है । यह कहना बड़ी भारी भूल है कि रूई, लोहा, सोना और चाँदी ही संसारके अधीश्वर है । नहीं, संसार पर राज्य करनेवाले ऐसे अनेक राजराजेश्वर हैं जिनके सामने इन्हें परास्त होना पड़ता हैं और उनके नाम प्रेम, दया, चरित्रबल हैं । संसारके सभी राष्ट्रोंकी स्थिति इन्हींके ऊपर है।....* यदि राष्ट्रकी स्थिति केवल बल पर होती, यदि लोगोंकी साधारण प्रवृत्ति राष्ट्रकी आज्ञाओंके उल्लंघन करनेकी होती, तो समाज या राष्ट्र कभी स्थायी नहीं रह सकते । न्यूयार्क, लण्डन और पेरिसको वहाँकी पुलिस और सेना नहीं किन्तु 'तू हत्या न करना' यह आदेश दबाये हुए है । " *

मनुष्य भाव-प्रधान है ।

मनुष्य बाह्य वस्तुओंकी अपेक्षा अपने मनके अधीन कहीं अधिक है । यदि विचारसे देखा जाय तो कहना पड़ेगा कि मनुष्य देहात्मवादी (Materialist) की अपेक्षा भावप्राधान्यवादी ही अधिक (Idealist) है—जड़वादी-

---

* From Emerson's Lecture--On the Sovereignty of Ethics.

की अपेक्षा चैतन्यवादी विशेष है। *सभ्य जगतके सभी मनुष्य अपने अपने विकास और उन्नतिके अनुसार संसार तथा अपने कर्त्तव्यके सम्बन्धमें एक न एक कल्पना* (Theory) *रखते हैं।* अतएव धर्मोन्मादमें पड़कर जब मनुष्य इन्क्वीजीशन (Inquisition) सरीखे अस्त्रको ग्रहण करता है, काफ़िरोंकी हत्या करता है या अविश्वासियोंको दण्ड देता है, तो यह भी भावप्राधान्यवादका ही लक्षण है। वह जानता है कि केवल मेरा मज़हब ही सत्य है, अन्य सब मिथ्या, कुफ़्र और अविश्वास, संसारकी सारी भलाइयोंके शत्रु हैं। तब यदि इन बातोंमें पूरा विश्वास रख कर वह हाथमें खड्ग लेकर कुफ़ और अविश्वासके मूलोच्छेदके लिए प्रस्तुत होता है तो इसमें आश्चर्य्यकी कौनसी बात है? वह एक धारण रखता है और उसके अनुसार व्यवहार करता है। निःसन्देह हर मनुष्यकी उन्नतिकी भिन्नताके अनुसार उसकी यह धारणा भी भिन्न होती है। मनुष्य जितना ही उन्नत होगा उसकी धारणा, उसकी कल्पना और उसका अन्तःकरण उतना ही उन्नत होगा। परन्तु मनुष्य भावप्रधान ही है। निःसन्देह मनुष्य हर समय अपनी धारणा और आदर्शके अनुसार नहीं चलता, परन्तु इससे हमें यह नतीजा निकालनेका कदापि अधिकार नहीं है कि—

धर्मोन्माद भी इसीका लक्षण है।

"पिताके मरने पर मनुष्यको कोई शोक नहीं होता, वरन् उसे प्रसन्नता होती है कि पिताकी संचित सम्पत्ति उसके हाथ लगेगी। भयके अतिरिक्त अन्य किसी उपाय द्वारा मनुष्य नियमको पालन नहीं कर सकता।"*

---

* Hobles

मनुष्य स्वभावसे ही भाव-प्रधान है। उसका जीवन दृष्टकी अपेक्षा अदृष्टहीके द्वारा अधिकतर विनिर्मित हुआ है। *मनुष्य हर समय हानि और लाभ गिननेवाला जानवर नहीं है, वरन् वह भावों और जज़बातोंसे बना हुआ है। वह प्रत्यक्षकी अपेक्षा आदर्शमें ही अधिकतर विश्वास करता है।*

मनुष्यसे अन्याय नहीं देखा जाता।

मनुष्य न्यायप्रिय है, सहृदयता सम्पन्न है। संसारमें बड़ा अन्याय है, अनेक त्रुटियाँ है। अच्छोंको दुःखी और बुरोंको सुखी होता देख कर उससे रहा नहीं जाता और तब वह भविष्यकी कल्पना करने लगता है। वह कल्पनाका स्वर्ग और नरक बनाता है और आशा करता कि इस लोकमें चाहे जो हो, परलोकमें अन्याय नहीं हो सकता। भविष्यमें अच्छोंको सुख और बुरोंको कष्ट ही होगा। साधारण उपन्यासोंके पढ़ते समय भी जब जब हम देखते हैं कि पापी अपने प्रयत्नोंमें सफल हो रहे हैं और पुण्यात्माओंको दुःख हो रहा है, तो हमारा चेहरा क्रोधसे लाल हो जाता है और हम अपने होठोंको चबाने लगते हैं। हम अन्याय सहन नहीं कर सकते और यदि हममें स्वयं बदला लेनेकी शक्ति नहीं होती है तो हम ईश्वरको पुकारने और अन्यायियोंको कोसने लगते हैं।

प्यारे मज़हबी दोस्तो, स्मरण रक्खो कि तुम्हारा मज़हबमें विश्वास करना भी हमारे उपयुक्त सिद्धान्तको पुष्ट करता है। तुम अपने विश्वासको तर्क और युक्तिके द्वारा कदापि प्रतिपादन नहीं कर सकते हो, फिर भी तुम विश्वास करते हो। क्यों? केवल इसी लिए कि यह तुम्हारा स्वभाव है। तुम केवल जड़ पदार्थोंसे सन्तुष्ट नहीं हो सकते हो। तुम खाते हो सही, परन्तु तुम्हारी वास्तविक अन्तरात्मा

भूखी रह जाती है । इसी लिए तुम मज़हबका सहारा ग्रहण करते हो। *जब भ्रम-प्रमादोंमें, असत्य कल्पनाओंमें—जिनका कि उपपादन बुद्धि द्वारा नहीं किया जा सकता—मनुष्यको इतनी प्रीति है, इतना विश्वास है, तो उसे सत्य धर्ममें—सदाचार धर्ममें—जो स्वयंसिद्ध है, जिसके लिए किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है—विश्वास न होगा यह समझमें नहीं आता।*

हमारे कहनेका तात्पर्य केवल इतना ही है कि स्वार्थपरता, भय, लालच, क्रोध और घृणाके समान प्रेम, सहृदयता और दया भी मनुष्य-स्वभावके अङ्ग हैं; यद्यपि सभी अच्छी वस्तुओंके समान ये कम पाये जाते हैं । यदि मज़हब ही हमारे सदाचारका कारण होता, तो मज़हबकी इतनी नीतिविरुद्ध शिक्षाओंके रहते हुए भी लोग सच्चरित्र क्यों होते ?

मज़हबका दूसरा अर्थ। इस अर्थमें मज़हब नष्ट नहीं हो सकता।

यहाँ पर 'मज़हब' शब्दका अर्थ विश्वास विशेष, हठवाद और धर्मोन्माद किया गया है । क्यों कि साधारणतः मज़हबके प्रधान अङ्ग यही हैं । परन्तु *यदि मज़हबका अर्थ–उत्साह, उत्कण्ठा, आध्यात्मिकता, सरगर्मी या जोश–सूक्ष्म, अप्रत्यक्ष, दुख-शोक-मोह-रहित कल्पनामय अदृश्य जगतमें विचरण करनेकी चाह, प्रत्यक्ष और वर्तमानसे असंतुष्टि, मंगल-मय भविष्यकी कामना, सौन्दर्य्यकी पिपासा, कलाप्रेम, सहृदयताका वेग—किया जाय, तो मज़हब मनुष्यके स्वभावका प्रधान अङ्ग है और इस अर्थमें मज़हबका कभी विनाश नहीं हो सकता,* चाहे हिन्दू, क्रिस्तान, मुसल्मान, पारसी आदि मतोंका नाम निशान भी न रह जाय । नहीं, मनुष्यकी उन्नति और विकाशके साथ साथ इस धर्म

का—इस मज़हबका—अधिक आधिपत्य बढ़ेगा। *स्मरण रक्खो कि यथार्थ धर्म यही है, मतविशेष इसी धर्मकी छायाके समान हैं। जिस मतमें जिस मजहबमें इसका अधिक अंश विद्यमान है, वह मत वह मज़हब उतना ही बड़ा—उतना ही श्रेष्ठ है।* यही मज़हबकी अन्तरात्मा—उसकी रूह—है। जिनमें यह विद्यमान है वे जीवित हैं और जहाँसे यह वास्तविक धर्म प्रयाण कर गया है वे मृतक प्राणहीन है।

मज़हबमें परिवर्तनकी आवश्यकता।

मज़हब या मत विश्वसमस्याकी कल्पना—अभ्युपगत सिद्धान्त मात्र हैं। अतएव ज्ञानवृद्धिके साथ साथ इनमें भी परिवर्तनकी आवश्यकता है। इसी कारण हर युगका मत या मज़हब भिन्न होता है। अतएव *किसी मत विशेषके अक्षरशः भृत्य या गुलाम बन कर इस परिवर्तनका—सत्यका—इस यथार्थ धर्मका—पथ कभी बन्द न करो।* तुम्हारा गौरव इसीमें है कि तुम इस यथार्थ धर्मके आगमनमें सहायता दो, चाहे तुम्हें संसारके सभी मतोंको एक एक करके छोड़ देना पड़े।

काबा अगरचे टूटा तो क्या जाय ग़म है शैख़।
यह क़स्र दिल नहीं जो बनाया न जायगा॥

सदाचार-धर्म ही यथार्थ धर्म है।

सदाचार धर्म ही यथार्थ धर्म है। यही तुम्हारे ज्ञान और विवेकको, तुम्हारे स्वभाव और गौरवको शोभा देता है। अन्य सारे मत अति संकीर्ण और हृदयहीन हैं। छोटे छोटे परिमित देवताओंके पुकारनेकी क्या आवश्यकता है? यथार्थ राजराजेश्वरी अनन्त माता प्रकृति ही—जिसके हम सन्तान हैं—नीतिके नियमोंद्वारा अपनी इच्छा प्रकाश कर रही है। नैतिक आईन उसीके बनाये हुए हैं। और सब ईश्वरों

और देवताओंकी अपेक्षा—जो स्वयं हमारे बनाये हुए हैं—इस माताकी आज्ञा पालन करना क्या हमारा कर्त्तव्य नहीं है ? मज़हबकी—इतिहासकी—सभी बातें वादविवादसे भरी होती हैं, परन्तु कर्त्तव्यमें कोई वादविवाद नहीं है। ईश्वरकी इच्छा तुम्हारी समझमें नहीं आ सकती, परन्तु प्रकृतिके नियम स्पष्ट हैं। रावणके दस सिर थ, कुम्भकर्ण बहुत ही दीर्घकाय था, हनुमान सूर्य्यको निगल गये और समुद्रको लाँघ गये, सूर्य्यने पृथ्वीपर आकर कुन्तीको पुत्र प्रदान किया, इत्यादि बातें ऐसी हैं जो तुम्हारी समझमें नहीं आ सकतीं; परन्तु प्रेमके, दयाके, न्यायके, सहानुभूतिके, समझनेमें कोई कठिनाई नहीं हो सकती। मज़हबमें तुम्हें शंका उत्पन्न हो सकती है, परन्तु सदाचारमें शंकाका कोई स्थान नहीं है।

सदाचार धर्म ही हमारा यथार्थ धर्म है। पवित्र कामोंका करना ही हमारा कर्त्तव्य है। स्वभावसे ही—बिना किसी सोच विचारके—हमें बुराईसे बचना चाहिए। *ऐसा करनेहीमें मनुष्यत्व है। यही मानवधर्म है, क्योंकि यही हमारे जीवनका नियम है।* जिस प्रकार अग्निका धर्म उष्णता है, पानीका धर्म ठंढक है, आकाशका धर्म ध्वनि है, उसी प्रकार मनुष्यका धर्म सदाचार है। कोई वस्तु अपना धर्म परित्याग नहीं कर सकती। क्या मनुष्य ही अपने धर्मको छोड़ कर अपने जन्मको कलंकित करेगा और मृत्युको प्राप्त होगा ?

सदाचार सहृदयता-धर्मकी अमितता।

पाठक, यह हरगिज़ न कहना कि इस नूतन धर्ममें (यथार्थमें यह नूतन नहीं वरन् सभी धर्मोंसे प्राचीन है) कोई आशा, कोई प्रभा, कोई हृदयहिल्लोल नहीं है। नहीं, इससे महत् धर्म कोई हो ही नहीं सकता। यह धर्म परिमित या सीमाबद्ध नहीं है और यह तुम्हारे हृदयको भी अनन्त—सीमारहित—बनाता है। तुम क्षुद्र उसी

समय तक हो, जिस समय तक केवल अपना पेट पालते हो—केवल अपनी फ़िक्र करते हो। परन्तु जिस समय तुम परोपकारके लिए कमर कस कर तैयार होते हो उस समय विराट् बन जाते हो, तुम संसारके सुखसे सुखी और मनुष्यमात्रके दुःखसे दुखी होते हो। तुम्हारी कोई सीमा बची नहीं रहती। क्योंकि "आत्मवत् सर्वभूतेभ्यो हितं कुर्यात् कुलेश्वरी" के आदेशको तुम अपने जीवनका ध्रुव तारा समझते हो। तुम्हारे प्रेमका दरिया उमड़ कर सभी वस्तुओंको, स्वयं तुम्हें भी, बहा ले जाता है। तुम संसारमें—विश्वमें—अपनेको विलीन कर अनन्त बन जाते हो। अजी! तुम खुद खुदा बन जाते हो और कहने लगते हो—

मैंने माना दहरको हक़ने किया पैदा वले।
मैं वह ख़ालिक हूँ मेरे कुनसे खुदा पैदा हुआ॥

अर्थात् "यदि मैं यह मान भी लूँ कि इस संसारकी रचना ईश्वर द्वारा हुई है, तथापि मैं वह स्रष्टा हूँ कि मेरे 'कर' शब्दके उच्चारण मात्रसे स्वयं ईश्वरकी भी उत्पत्ति हुई है।" नहीं नहीं, खुदा और बन्दा कैसा, सृष्टि और स्रष्टा कैसा, केवल तुम ही तुम रह जाते हो—

तन्हास्तम तन्हास्तम चे बुलबुल अलब तनहास्तम।
जुज़ मन न बाशद् हेच शै तन्हास्तम एकतास्तम॥

अर्थात् "मैं अकेला हूँ अकेला हूँ। कैसा आश्चर्य्य है, मैं एकदम अकेला हूँ। मेरे व्यतिरिक्त अन्य कोई वस्तु है ही नहीं। मैं अकेला—बेजोड़—लासानी हूँ।" तुम्हारा हृदय प्राचीन यूनानियोंके वाद्ययंत्र (Acolian lyre) के सदृश हो जाता है और वायुके प्रत्येक झोंकेसे झंकृत होने लगता है *। तुम्हारा हृदय फ़ोटोग्राफ़ीके शीशेके

---

* देखो, फरवरी १९१९ की 'प्रभा' में लेखकका 'कवि और उपदेशक' शीर्षक लेख।

समान संक्षोभ्य हो जाता है—तुम तुम नहीं रहते। तुम अनन्तमें विलीन हो जाते हो—तुम अनन्त बन जाते हो। तुम कहते हो—

जिधर देखता हूँ, जहाँ देखता हूँ।
मैं अपनी ही ताब और शाँ देखता हूँ।

तुम कहते हो—

यह परबतकी छातीपर बादलका फिरना,
वह दम भरमें अब्रोंसे परबतका घिरना।
गरजना चमकना कड़कना, निखरना,
छमाछम छमाछम यह बूँदोंका गिरना।
उरूसे फ़लकका यह हँसना यह रोना,
मेरे ही लिए है फ़क़त जान खोना।
वह वांदीका रंगीं गुलोंसे लहकना,
फ़ेज़ाका यह बूसे सँरापा महकना।
यह बुलबुलका खंदाँ लबोंसे चहकना,
यह आवाज़ नैको बहरसूँ लपकना।
गुलोंकी यह कसरतें अरमैं रूबरू है।
यह मेरी ही रंगत है, मेरी ही बू है॥
सबा हूँ मैं गुल चूमता बोसौं लेता,
मैं शमशादें हूँ झूम कर दादें देता॥

अब तो स्वार्थ और परमार्थमें कोई भेद रहा ही नहीं। तुम्हें मृत्युका भय नहीं रहता, और तुम चिल्ला उठते हो कि—

"ऐ मात! बेशक उड़ा दे इस जिस्म (शरीर) को, मेरे और एजसाम (शरीर) मुझे कुछ कम नहीं। सिर्फ चाँदकी किरनें चाँदी-

---

१ चमक दमक। २ बादलोंसे। ३ आकाशरूपी नववधूका। ४ मैदानका। ५ पुष्पोंसे। ६ वायुमण्डलका। ७ सरसे पैरतक अर्थात् पूर्णताके साथ। ८ हँसनेवाले अधर। ९ बाँसुरीकी। १० चारों ओर। ११ पुष्पोंकी। १२ बहुतायत। १३ स्वर्ग सामने है। १४ पवन। १५ चुम्बन। १६ सरोका वृक्ष। १७ प्रशंसा करना।

की तारें पहन कर चैनसे काट सकता हूँ। पहाड़ी नदी नालोंके भेषमें गीत गाता फिरूँगा। बहरे मौआज (समुन्दरकी लहरों) के लिबासमें लहराता फिरूँगा। मैं ही बादे खुश खराम (अठखेलियाँ कर चलनेवाला पवन) नसीमें मस्ताना गाम (गजगामिनी हवा) हूँ। मेरी यह सूरत सैलानी हर वक्त रवानी (गति) में रहती है। इस रूपमें पहाड़ोंसे उतरा, मुर्झाते पौधोंको ताज़ा किया, गुलों (पुष्पों) को हँसाया, बुलबुलोंको रुलाया, दरवाजोंको खटखटाया, सोतोंको जगाया, किसीका आँसू पोंछा, किसीका घूँघट उड़ाया, इसको छेड़, उसको छेड़, तुझको छेड़, वह गया वह गया, न कुछ साथ रक्खा न किसीके हाथ आया!!"*

नहीं तुम तो मरते ही नहीं। तुम तो मरनेके पश्चात् भी विद्यमान रहते हो और कहते हो—

" पस अज़ मुर्दन बनाये जायँगे सागर मेरे गिलके।
लबे जानाँके बोसे खूब लेंगे खाकमें मिलके।

अर्थात् मरनेके पश्चात् मेरी मिट्टीसे प्याले बनाये जायँगे। बस फिर क्या है? तब तो मैं अपनी प्रियतमाका अधरामृत खूब जी भर कर पान किया करूँगा।

अब स्वार्थ और परमार्थ कैसा, स्वर्ग, और नरक कैसा, पूजा और पाठ कैसा, यज्ञ और योग कैसा? क्या इस धर्ममे कविता, आशा, प्रभा और हृदयहिल्लोल नहीं है? अन्य सब मिथ्या और स्वार्थी धर्मोंमें विश्वास करके इस अनन्त सहृदयता धर्मको छोड़ कर अपने मनुष्यत्वको कब तक तुम कलङ्कित करते रहोगे?

---

* स्वामी रामतीर्थजीके अन्तिम लिखे हुए शब्द। पूर्वोक्त कवितायें भी उनहीकी हैं।

अठारहवाँ अध्याय।

नैतिक धर्म।

२—सदाचार धर्म।

पाठक पूछेंगे कि "तुम्हारा उद्देश क्या है? तुम क्या चाहते हो? यदि हम अपने विश्वासोंको बुद्धि-विरुद्ध तथा भ्रम-प्रमाद समझ कर छोड़ दें, तो तुम उनके स्थानमें क्या रखना चाहते हो? तुम हमें कौनसा मार्ग, कौनसा नियम बतलाना चाहते हो? हम अपने मज़हबको छोड़ तो दें परन्तु तब हमारे धार्मिक निसर्गका क्या भविष्य होगा? देखो तो मज़हबसे कितना लाभ हुआ है, कितने दहकते हुए हृदयोंको शीतलता मिली है, उसने कितने घायल हृदयोंपर मरहम लगाया है, कितनी आत्माओंको सुख और शांति प्रदान की है, कितने संसार-रोग-ग्रस्त, उत्तप्त मनुष्योंका उद्धार किया है, कितने आशा-विहीन, जर्जर-प्राण, श्मशानप्राय मनुष्योंके चित्तोंको प्रेमकी मलयानिल चलाकर और दयाकी गङ्गा बहाकर पावन और रंजित किया है, कितने भादोंकी रात्रिसे भयावने हृदयोंको भगवान अरुणदेवकी सुनहरी किरणोंसे आलोकित कर दिया है!" पाठक यह पहले ही कहा जा चुका है कि हम यथार्थ धर्मके विरुद्ध नहीं हैं। धर्म ही मनुष्यका गौरव और धर्म ही धन है। हाँ, हम मिथ्या, क्षुद्र, विश्वास-विशिष्ट धर्मोंके अवश्य विरोधी हैं। हम तो स्वयं अनुरोध करते हैं कि तुम धार्मिक और सहृदयतासम्पन्न बनो। सदाचार ही तुम्हारा यथार्थ धर्म है।

एक प्रश्न।

परन्तु पाठक इस पर भी शायद कहेंगे कि "हम भक्त हैं, हमें यह तुम्हारा रूखा सूखा ज्ञान अच्छा नहीं लगता, हमारे हृदयको तृप्त

करनेके लिए तुम क्या दे सकते हो ? हमें ईश्वर चाहिए, देवता चाहिए, तप व्रत उपासना चाहिए, लीला चाहिए, नामसंङ्कीर्तन चाहिए।" अच्छा तो लो, यदि तुम यही चाहते हो तो अपने हृदयके समीप निम्न प्रश्नोंको उपस्थित करो और उसीसे इनका फैसला माँगो।

उत्तर—सदाचार धर्म ।

"क्या प्रेमदेव सभी देशोंके ईश्वरोंसे—जिहोवासे, जिउससे, अल्लाहसे अहिरमणसे, परमात्मासे, विष्णुसे, रामसे और संसारके सारे देवताओंसे महान्, बड़े या श्रेष्ठ नहीं है ? क्या इनको छोड़ कर और किसीकी पूजा अर्चा करना न्यायसंगत है ? क्या इनकी लीला सभी देशोंके ईश्वरोंकी लीलासे अपरम्पार नहीं है ? ईश्वरका साम्राज्य संसारसे उठ गया है। अब वह मनुष्यको कठपुतलीके समान नहीं नचा सकता। मनुष्यने जान लिया है कि हर जगह नियम विद्यमान है और कोई कार्य नियमविरुद्ध नहीं होता। परन्तु प्रेमका साम्राज्य अब तक बना हुआ है। समस्त ईश्वरोंके स्वामी प्रेमदेव मनुष्यको अब भी कठपुतलीके समान नचाते हैं। ये सम्भवको असम्भव और असम्भवको सम्भव, घटको अघट और अघटको सुघट कर दिखलाते हैं। अक्सर लोग इनकी प्रेरणासे चोरी और हत्या तक कर डालते हैं। ईश्वर तो अपने भक्तोंका छोड़ भी देता है, परन्तु ये अपने भक्तोंका कभी परित्याग नहीं करते। जो इन्हें एक क्षणके लिए भी याद करता है उसे ये अनन्त और सीमारहित बना देते हैं। तब क्या इनका कीर्तन हरिकीर्तनसे, उत्तम नहीं होगा ? इनके पूजनके लिए किसी यज्ञशाला या मान्दिरके निर्माण करनेकी आवश्यकता नहीं है। इनका मन्दिर हमारा हृदय है। एकबार उसे साफ़ और पवित्र बना कर आवाहन करनेसे ही ये वहाँ तत्क्षण अपना आसन जमा देते हैं और परोपकार परताप-हरण, पराहित करनेसे ही ये प्रसन्न हो जाते हैं। क्या

तीर्थयात्रा, हरिनाम-स्मरण इत्यादि विधियोंसे इनकी पूजा-विधि सरल, सुलभ और उत्तम नहीं है ? इनके उपासक सारी स्वार्थपूर्ण कामनाओंसे रहित हो जाते हैं। उनकी सारी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। अतएव इन्हें छोड़ कर हम पुराने निर्बल और क्षुद्र ईश्वरों तथा देवताओंको क्यों भजते रहें ?"

पाठक इन प्रश्नोंका उत्तर आप अपने ही हृदयसे पूछिए और तदनुसार कार्य कीजिए। हम इससे अधिक और कुछ नहीं कहना चाहते। देखिए तो वह क्या उत्तर देता है ?

क्या तुम्हें मूर्तियोंकी आवश्यकता है ? यदि है तो शौक़से प्रतिमाओंका पूजन करो। हम मज़हबवादी तो है ही नहीं, जो तुम्हें इस कामसे रोकेंगे। करो, पूजन करो। संसारके चतुर चित्रकारों और शिल्पकारों द्वारा निर्मित मूर्तियाँको ले लो, उनपर मुग्ध होओ, दीवाने होओ, और अपना तन मन निछावर कर दो, इसमें हर्ज ही क्या है। तुम्हें कथाओंकी चाह है ? इसमें भी कोई हर्ज नहीं है। मानव-हृदयकी जटिलतम ग्रंथियोंसे परिचित, कल्पनाके उत्तुंग शिखरोंतक पहुँचनेवाले लेखकोंकी कथाओंको पढ़ो और अवश्य पढ़ो, इसमें नुक़सान ही क्या है। तुम यही कहते हो न कि हम अप्रत्यक्ष, सूक्ष्म, अदृष्ट ईश्वर या शक्तिसे संतुष्ट नहीं हो सकते ? हमें एक ऐसे ईश्वरकी जरूरत है कि जो हमसे पृथक्—अत्यन्त दूर—न हो, बल्कि हमारे सामने हो—समक्ष हो—समीप हो—जिस पर हम अपने हृदयके उच्छ्वासों, आवेगों, और उद्गारोंको प्रकट कर सकें। भला इससे अच्छी और कौनसी इच्छा हो सकती है ? यह तो सर्वथा स्वाभाविक है। आकारशून्य निर्गुण ईश्वरसे—जिसका देखना तो दूर रहा कल्पना तक करना असम्भव है—मनुष्य क्योंकर प्रेम कर सकता है ? अतएव संसारके महान् पुरुषोंकी—अवतारोंकी—पूजा अवश्य करो।

श्रीकृष्णकी * बाँसुरीसे विभोर हो जाओ, उनके बछड़ोंके साथ उछलो, व्रजके विहंगोंके साथ विहार करो, गोपियोंकी विरह-वेदनाको अनुभव करो, यमुनाके स्निग्ध सलिलमें सरोजके समान तैरते फिरो, व्रजके भ्रमर बन कर प्रेमियोंके पास प्रेमका सन्देश पहुँचाओ। इसमें कोई हानि नहीं है। तुम अपनी धार्मिक प्रवृत्तिको सभी उत्तम उपायोंसे तृप्त करो। इसमें सदाचार धर्मको कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

धार्मिक निसर्ग और धर्मविशेष, दो वस्तुयें हैं।

हम धार्मिक निसर्गके विरुद्ध कदापि नहीं हैं; परन्तु धार्मिक स्वभाव और धर्मविशेष या मज़हब दो भिन्न वस्तुयें हैं। मनुष्य स्वभावसे ही विवाह करना चाहता है। परन्तु विवाहकी अनेक रीतियाँ हैं। हमारे शास्त्र भी आठ प्रकारके विवाहोंका उल्लेख करते हैं। जिस प्रकार विवाहकी उपयोगिता सिद्ध करनेसे आर्ष, गान्धर्व, पैशाच प्रभृति वैवाहिक रीतियोंकी उपयोगिता और उत्तमता सिद्ध नहीं होती, उसी प्रकार धार्मिक निसर्गकी उपयोगिता सिद्ध करनेसे संसारके सभी मज़हब सच प्रमाणित नहीं होते। यह धार्मिक निसर्ग क्रम क्रमसे देश और कालके अनुसार विभिन्न स्वरूप धारण करता है, परन्तु इसमें परिवर्तनका रुक जाना तथा इसका सीमाबद्ध हो जाना मानवहितके लिए बड़े अमङ्गलकी बात है। सभी विकसित वस्तुओंके समान मज़हब भी विकसित वस्तु है, क्राइस्ट या मोज़ेज़, मोहम्मद या जोरोआस्टरके समान मनुष्योंने इसे आविष्कार नहीं किया है—बल्कि यह स्वयं मानव जातिके समान प्राचीन है। हाँ, इन महानुभावोंके नेतृत्वमें युगोंकी संचित शक्तियाँ एकाएक जाग अवश्य पड़ी हैं और उन्होंने प्रबल रूप धारण कर लिया है।

* यहाँ पर मार्च १९२१ की 'प्रभा'में प्रकाशित हुए लेखकके 'कविताका रसास्वादन' शीर्षक लेखको यदि पाठक पढ़ जानेकी कृपा करें, तो अच्छा हो।

हम तुम्हारे सामने विश्वकी कोई नई कल्पना उपस्थित नहीं करना चाहते; बल्कि हम कर्तव्यका एक नया आदर्श बतलाना चाहते हैं और तुम्हें इस सदाचारकी सरितामें डुबकी लगानेके लिए कहते हैं—

सदाचार धर्मका असीमत्व।

नदी पुनीत परम महिमा अति।
काहि न सकै शारदा विमलमति॥

सदाचारके इस मानसरोवरमें एक गोता लगाते ही संसारकी सारी कलुषतायें और त्रिविध ताप एकदम नष्ट हो जाते हैं। इसका दरस परस मज्जन और पान करनेसे पापका लेश भी नहीं रह जाता। आत्माको शान्ति मिलती है, मनका ताप मिटता है, चित्तको विश्राम मिलता है, शोक दुःख 'नौ दो ग्यारह' हो जाते हैं, और मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है। यमदूतोंका भय नहीं रह जाता। एक बार आजमा कर देखो कि इसमें कितना स्वाद और कैसा आनन्द है। देखो, तुम्हारे मनका मैल किस प्रकार धुल जाता है और तुम कैसे प्रफुल्लित हो जाते हो। सदाचारका यही तो लक्षण है कि सत्कर्मके करनेके साथ ही चित्त आनन्दसे सराबोर हो जाता है, हमारी ही अन्तरात्मा हमारी प्रशंसा करने लगती है, शाबाशी देती है। ज़रा इस दरियामें कूद कर देखो भी तो, कि इसकी धारा कितनी तेज है और किस शीघ्रताके साथ यह तुम्हें स्वर्गमें ले जाती है!

"बहुतसे मनुष्योंके जीवनका उद्देश रुपया उपार्जन करना और स्त्री पुत्रोंका भरण पोषण करना ही होता है। परन्तु इसमें मनुष्यता क्या है? बीवर आदि पशु भी तो यही करते हैं। मनुष्य बुद्धि-ज्ञान-अनुमान-कल्पना-विशिष्ट है, उसमें सदाचार बुद्धि है, वह न्यायशील है; परन्तु फिर भी वह कभी कभी अपने यथार्थ गौरवको भूल जाता है। वह अपनी भावनाओंकी उपेक्षा करता है, अपने अन्तः

करणको दबाता है, अपनी कल्पनाओंसे मुँह फेर लेता है, और अपनी दिव्य सुन्दर बुद्धिको केवल अपनी स्त्री और पुत्रोंके भरण पोषणमें व्यय करता है, बल्कि कभी कभी तो अपनी स्वार्थपरताके वशीभूत होकर अपनी स्त्री और बच्चोंको भी छोड़ देता है । मित्रो, अपने विचारोंको उन्नत करो, एक क्षणभरके लिए अपने यथार्थ गौरवका अनुमान करो, अपनी अनन्त शक्तियोंको स्मरण करो और इस भूपृष्ठ पर तुम्हारा महान् कर्त्तव्य क्या है, उसको याद करो । अपने हृदयको सहानुभूतिसे परिपूर्ण करो, अपनी कल्पनाको प्रज्ज्वलित करो और अपने जीवनको उत्तम आदर्शोंसे भर डालो । तुम ऐसा अवश्य करो । क्योंकि धनोपार्जन और धनसंचयमें लगे रहनेसे तुम अपनी आध्यात्मिक मृत्युकी ओर अग्रसर हो रहे हो, तुम विराट् होनेके बदले क्षुद्र हो रहे हो, जवान होनेके बदले बुड्ढे बन रहे हो, अपने जीवनको एक प्रकारका व्यापार —केवल हानि और लाभ, नफ़ा और नुकसानका मामला—बना रहे हो । वास्तवमें तुम्हारा जीवन उत्तम आदर्शोंका, सत्कर्मोंका, सुन्दरता और कविताका भंडार होना चाहिए ।*"

मित्रो, आओ, हम प्यास और भूखसे मरते हुए राजा रन्तिदेवके समान कहें—" मै परमेश्वरसे अष्टसिद्धियुक्त गति या मुक्तिकी कामना नहीं रखता, मैं चाहता हूँ कि अन्तःस्थित होकर सब प्राणियोंके दुःखोंको स्वयं अनुभव करूँ जिससे मेरे द्वारा सब प्राणियोंका दुःख दूर हो । यह दीन जन जीवन धारण करनेकी वासना रखता है । इसके जीवनके लिए जल अर्पण करते ही मेरी क्षुधा, तृषा, थकावट अंगोंका घूमना, कातरता, खेद, विषाद, मोह सब ही निवृत्त हो गये । " (श्रीमद्भागवत स्क० ९, २१–१२,१३ ।)

* Salter—Ethical Reigion.

क्या तुम कहते हो कि समय कम है, आयु छोटी है, ज़िन्दगी चन्द-रोज़ा है, इस लिए मनुष्य परोपकारमें उद्यत न होगा? उसे सदाचारकी कोई आवश्यकता नहीं है। यथार्थ प्रश्न यह है कि 'हम क्या हैं' यह नहीं कि 'हम कितने दिन तक जीवित रहेंगे'। अगर हमलोग केवल क्षुधा-तृष्णा-ग्रस्त मनुष्य हैं, तो हमें केवल खाना और पीना चाहिए, चाहे हमलोग आज मरें या कल, या अनन्त काल तक जीवित रहें; परन्तु यदि हम बुद्धियुक्त, प्रेमयुक्त, कल्पनायुक्त मनुष्य हैं, तो हमलोगोंको बुद्धि, ज्ञान, विवेक, कल्पना और प्रेमसे काम लेना चाहिए, चाहे हम शीघ्र ही मृत्युको प्राप्त हो जायँ या हमारी उम्र मार्कण्डेय ऋषिके समान बड़ी हो जाय।* वास्तवमें हमारी आयु इतनी छोटी नहीं है। यह शरीर निःसंदेह मरता है परन्तु सत्कर्म अमर हैं और अपने शरीरके मरण प्राप्त होने पर भी हम अपनी सहानुभूतिके द्वारा आगन्तुक पीढ़ियोंके शरीरमें जीवित रह सकते हैं। निःसन्देह हमारा यह भौतिक क्षणभंगुर शरीर अवश्य मृत्युको प्राप्त हो जायगा, परन्तु हमारे कार्योंका नतीजा कदापि नहीं मिट सकता। *भौतिक शरीर न रहनेपर भी हम अच्छी और बुरी शक्तियोंके स्वरूपमें जीवित रहेंगे* और आगन्तुक युगोंमें हमारे द्वारा संसार संचालित होगा। जिस प्रकार हमारा जीवन हमारे पूर्वजोंके जीवनका सिलसिला है, उसी प्रकार हम सब भी भविष्यके जीवनके—केवल शारीरिक ही नहीं वरन् मानसिक, आध्यत्मिक इत्यादि सभी प्रकारके जीवनके—उद्गम हैं। हम सब मर सकते हैं, परन्तु हमारी आत्मा—हमारी आकांक्षायें और विचार, हमारा चरित्र और मनोबल, हमारी कल्पनायें और आदर्श—कदापि नहीं मर सकते।

वास्तवमें मनुष्यकी आयु छोटी नहीं है।

---

* Sir Leslie Stephen—An Agnostic's Apology P. 65.

मनुष्यका यथार्थ बल।

पाठक कहेंगे कि लेखक स्वप्न देख रहा है, काल्पनिक चित्र खींच रहा है। क्या कभी वह दिन आयगा जब केवल सदाचार ही मनुष्यका धर्म होगा? क्या कभी हमारे सिद्धान्त मनुष्यके व्यावहारिक जीवनके अङ्ग बन जायँगे? क्या इतिहास इसका अनुमोदन करता है? पाठक, तुम अपने प्रभावको नहीं पहचानते हो, मनुष्यकी शक्ति और गौरवको नहीं जानते हो। लेखक शायद स्वप्न ही देख रहा हो; परन्तु तुम तो मन्त्रमुग्ध होकर अपने राज्य और अपने प्रभुत्वको ही खो बैठे हो। वास्तवमें तुममें सारे राज-राजेश्वरोंसे अधिक शक्ति है—तुम्हे अपने मन और हृदय पर पूरा अधिकार है और यह कोई साधारण शक्ति नहीं है। तुम अपने मनोबल पर अपनी अद्भुत शक्ति पर विचार नहीं करते हो। तुम अपनेको केवल एक खानेवाला, सोनेवाला और सन्तानोत्पादन करनेवाला क्षुद्र संकीर्ण जानवर समझते हो। तुम पर किसीने टोना कर दिया है। उठो, इस भ्रमको झाड़ कर अलग कर दो। केवल मज़हबी भ्रमको ही नहीं, वरन् उसको भी जिसके द्वारा तुम अपनेको एक क्षुद्र अस्वतन्त्र जीव समझ रहे हो। अपने सिंहासन पर आ डटो। तुम स्वतन्त्र हो, तुम राजकेसरी हो, तुम शारीरिक नियमोंको भी उल्लङ्घन कर सकते हो। तुम्हें यह आलस, यह आगा-पीछा, यह अविश्वास, यह सन्देह शोभा नहीं देता। मनुष्य निःसन्देह बिना अन्नके जीवित नहीं रह सकता, उसे भूख प्यास भी अन्य जीवधारियोंसे कम नहीं सताती। अन्य जीवोंके समान वह भी विवाह तथा सन्तानोत्पादन करता है, परन्तु उसमें एक बड़ी विचित्रता है। उसका यथार्थ स्वभाव आध्यात्मिक है। वह भावप्रधान है। मनुष्य बुद्धि, कामना, वासना, आशा और सहृदयतासम्पन्न है। किसी कल्पना और धारणाके निमित्त वह अपना सर्वस्व परित्याग कर सकता है, अपनी प्यारीसे प्यारी कामनाओंको परित्याग कर सकता है, अपने उद्देश-

साधनके लिए भूख प्यास तकके ऊपर विजय प्राप्त करता है—यद्यपि इस चेष्टामें उसे प्राण तक छोड़ने पड़ते हैं। जिस प्रकार किसी वृक्ष या पशुकी प्रकृति नियत है, उस प्रकार मनुष्यकी प्रकृति नियत नहीं है। उसका स्वभाव विचित्र है। और जन्तु अपने स्वार्थसे काम लेते हैं, परन्तु मनुष्य निःस्वार्थ हो सकता है। वह स्वच्छन्द है, सीमा बद्ध नहीं।

इतिहास क्या कहता है?

पाठक कहेंगे कि संसारके इतिहासमें ऐसा कोई देश या कोई समय नहीं मिलता जहाँ हमारे सिद्धान्त व्यावहारिक जीवनमें लाये गये हों। इसका उत्तर यह है कि संसारके इतिहासमें सदाचारको व्यावहारिक बनानेका कभी कोई प्रयत्न ही नहीं किया गया है। हम मनुष्यके स्वभावको और उसकी शक्तिको जानते हैं, इस लिए हमें अविश्वास न होना चाहिए। आओ, भगवानके अवतारकी प्रतीक्षा किये बिना ही—इस घोर कलिकालके रहने पर भी—कमर कस कर तैयार हो जायँ और सत्ययुगके आधिपत्यको सत्य कर दिखलावें। मित्रो, कलियुगका आधिपत्य तुम पर कदापि नहीं हो सकता। सतर्क रहो, होशियार रहो, कलियुग तुम्हारे पास भी नहीं फटक सकता। शैतानने जिस प्रकार क्राइस्टको लालच दिया था, उस प्रकार जब कभी कोई कुवासना लालच दिखलानेके लिए तुम्हारे सामने खड़ी हो, तो तुरन्त अपने गौरवको स्मरण करो—अपनी शक्तिको याद करो—तुम्हारे आँख उठा कर देखते ही वह बिल्लीके समान भाग जायगी। सदाचारव्रत धारण करो, परोपकारका अवलम्बन करो। हर कोनेसे केवल 'रामकी जय'के बदले 'सत्यकी जय' 'प्रेमकी जय,' 'निःस्वार्थताकी जय' 'दयाकी जय' की ध्वनि उठाओ; तब क्या मजाल कि पाप क्षणमात्रके लिए भी खड़ा रह सके। कमी है केवल उत्साहकी, जोशकी। जब हम नीची जातिवाले अछूतोंके द्वारा छुए हुए जलके पीनेवालेको जातिसे—समाजसे—बाहर निकाल देते हैं, तब झूठेको, कामीको, छलीको, पाषण्डीको, अथवा दूसरी

रीतिसे समाजके अनिष्ट करनेवालेको जातिसे—समाजसे—क्यों न बाहर निकाल दें? क्यों नहीं बचपनसे ही माता पिता बच्चोंके कोमल हृदयपर मत-या मज़हबके बदले सदाचारका ही अंकुर जमायँ? क्यों नहीं दुश्चरित्र मनुष्य समाजके द्वारा अवज्ञाकी दृष्टिसे देखा जाय? अनहोनी कथाओं-को हम बच्चोंके समान क्यों सुनते जायँ? क्यों नहीं अनोखी कहानियोंके बदले पण्डितवर्ग सदाचारकी कथायें कहें? यज्ञ, जाप, ब्राह्मणभोजन इत्या-दिमें हम अपने रुपयोंको व्यर्थ क्यों गँवायँ और उन्हें संसार-हितमें क्यों न लगायँ? हम अदृष्ट देवताओंके मन्दिरोंके बदले प्रेमका मन्दिर क्यों न बनवावें? हम मज़हबके नामसे करोड़ों रुपये क्यों बरबाद करें? उन्हें सत्कर्ममें क्यों व्यय न करें? अभाव केवल उत्साहका है। जितना उत्साह, जितना द्रव्य, जितना परिश्रम मनुष्यने मज़हबके प्रचारमें व्यय किया है, यदि उसका शतांश भी सदाचार-प्रचारमें व्यय किया जाता, तो आज संसारका इतिहास दूसरे प्रकारसे लिखा गया होता। वास्तवमें अब तक संसारका इतिहास रक्तपातका इतिहास रहा है।

मनुष्य-सेवा धर्म।

हमारा भयानक अनुभव हमें जतला रहा है कि देवता बहरे हैं। मनुष्यके दर्दकी पुकार—चाहे वह कितनी ही आर्द्रताके साथ क्यों न उच्चरित हुई हो—सिवाय उसके आह भरे दिलके और कोई नहीं सुनता। ईश्वर भी हमारी मदद नहीं करता। हमें अपने पैरों पर ही खड़ा होना है। हमारा दुःख सिवाय हमारे और कोई नहीं मिटा सकता। मनुष्यके आँसू मनुष्य ही पोंछ सकता है। अतएव इन अदृष्ट देवताओंकी सेवाके बदले हमें प्रत्यक्ष नरदेवकी ही सेवाकी आवश्यकता है। विशेषतः हम भारत-वासियोंके लिए तो इस विषयमें किसी प्रकारकी कठिनता है ही नहीं, क्योंकि हम तो ईश्वरको भी मनुष्य ही बना कर पूजते हैं। मनुष्य ही हमारा ईश्वर, हमारा देवता होना चाहिए। हमें अन्य देवता या अन्य ईश्वरकी आवश्यकता नहीं है।

(समाप्त।)

अशुद्धि-संशोधन ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५	४	मनुष्यके सामाजिक जीवन—	या मनुष्यका सामाजिक जीवन,
२६	५	सिलसिलेमें वह (प्रकृति)	सिलसिलेमें वह
४४	१६	(समाजवाद Socialism)	(समाजवाद)
६८	८	वनस्पति संसारको पैदा किया है ।	वनस्पति संसारको पैदा नहीं किया है ।
७३	१९	उमारा	डमारा
९२	७	' जद ' मस्दर	' जदन ' मस्दर
९३	१०	आग लगाने	आग जलाने
९६	१८	डालने तकका	डालने तकका अधिकार है । मेसन—
१०५	१२	कि उनमें मनुष्य–	कि मनुष्य–
११५	२४	सदाचारसे	सदाचार
१३५	६	अस्वेच्छाचारी	स्वेच्छाचारी
१४३	५	परिणाम	परिमाण
१५६	१६	असभ्य संसारमें	सभ्य संसारमें
१८९	२०	परमार्थ	परार्थ
२६४	१०	तबने	तब तक
२९७	१२	यार्क्स	मार्क्स

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२९७	१८	क्रिस्तान	किसान
३२१	पादटिप्पणी अन्तिम पंक्ति	stales	stabs
३७२	१७	चे बुलवुल अबल	चे बुल अजब
३७२	पादटिप्पण	फरवरी १९१९	फरवरी १९२१

नोट—इनके सिवाय और भी कुछ साधारण अशुद्धियाँ रह गई हैं जिन्हें बुद्धिमान् पाठक स्वयं शुद्ध करके पढ़ सकते हैं।

अध्ययन और मनन करने योग्य उच्चश्रेणीके ग्रन्थ।

समाज। इसमें जगत्प्रसिद्ध कवि और विचारक रवीन्द्र बाबूके ८ निबन्धोंका अनुवाद है जो केवल सामाजिक विषयों पर लिखे गये हैं और बहुत ही गंभीर तथा मार्मिक हैं—१ आचारका अत्याचार, २ समुद्रयात्रा, ३ विलासकी फाँसी, ४ नकलका निकम्मापन, ५ प्राच्य और प्रतीच्य, ६ अयोग्य भक्ति, ७ पूर्व और पश्चिम, ८ चिट्ठी पत्री। मूल्य ।।।≈)

ज्ञान और कर्म। बंगालके सुप्रसिद्ध विद्वान, स्वर्गीय गुरुदास वन्द्योपाध्याय, एम० ए०, पी० एच० डी०, डी० एल०के अमूल्य ग्रन्थका अनुवाद। गुरुदास बाबू पूर्वीय और पाश्चात्य ज्ञान विज्ञानके पारगामी पंडित थे। वे अपने इस ग्रन्थमें जीवन भरके अध्ययन और मननका सार संग्रह कर गये हैं। देशकी किसी भी भाषामें अभीतक इसके जोड़का ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ। मनुष्यके अन्तर्जगत् और बहिर्जगत्से सम्बन्ध रखनेवाली जितनी भी बातें हैं, उसके आत्मिक, मानसिक और शारीरिक सुखोंको बढ़ानेवाले जितने भी साधन हैं और सन्तान, परिवार, जाति, सम्प्रदाय, देश, राज्य, आदिके प्रति उसके जितने भी कर्तव्य हैं इस ग्रन्थमें उन पर प्रकाश डाला गया है। गहरेसे गहरे दार्शनिक और तात्त्विक विचारोंसे लेकर साधारणसे साधारण सगाई-विवाह, खान-पान, चाल-चलन, और वेष-भूषा सम्बन्धी बातोंकी भी इसमें चर्चा की गई है। सच तो यह है कि ऐसा कोई भी विषय नहीं है जिस पर इसमें कहीं न कहीं, मुख्य या गौणरूपमें विचार न किया गया हो। मूल्य २), सजिल्दका २॥)

सरल मनोविज्ञान। हिन्दीमें इस विषयका यही एक ग्रन्थ प्रकाशित है। इसमें बड़ी भारी विशेषता यह है कि इस कठिन विषयको बहुत ही सरलतासे, सुगम भाषामें, अच्छी तरह उदाहरण आदि देकर समझाया है और प्रत्येक अध्यायके अन्तमें एक रोचक प्रश्नावली दे दी है, जो इस विषयके

विद्यार्थियोंके लिए बड़े ही कामकी है। मनोविज्ञान बहुत ही आवश्यक विज्ञान है। पाश्चात्य देशोंमें इसका बहुत ही अधिक प्रचार है और इसकी सहायता व्यापार, राजनीति, अध्यापन आदि प्रत्येक कार्यमें ली जाती है। मू० १॥) सजिल्दका २)

स्वाधीनता। इंग्लैण्डके सुप्रसिद्ध विद्वान् जान स्टुअर्ट मिलके 'लिबर्टी' नामक ग्रन्थका सरल और सुस्पष्ट अनुवाद। इसमें राजनीतिक, सामाजिक, मानसिक, वाचनिक आदि सब प्रकारकी स्वाधीनताओंका वास्तविक स्वरूप बतलाया गया है। अर्थात् इसमें स्वाधीनताकी सैद्धान्तिक आलोचना है। जिस स्वाधीनताकी आज चारों ओर धूम है और जिसके सामने मनुष्य सारे सुखोंको तुच्छ समझता है, वह वास्तवमें क्या चीज है, यह इस पुस्तकके पढ़े बिना समझमें नहीं आ सकता। इसमें पाँच अध्याय हैं—१ प्रस्तावना, २ विचार और विवेचनाकी स्वाधीनता, ३ व्यक्तिविशेषता भी सुखका एक साधन है, ४ व्यक्तिपर समाजके अधिकारकी सीमा और ५ प्रयोग। प्रत्येक विचारशील विद्वानके अध्ययन करनेकी चीज है। दूसरी आवृत्ति। मूल्य २) सजिल्दका २॥)

देशदर्शन। लेखक, ठाकुर शिवनन्दन सिंह। समाजशास्त्रके एक विशेष अंगका इसमें प्रतिपादन किया गया है जो जनसंख्यासे सम्बन्ध रखता है। जनसंख्याकी वृद्धिसे और पराधीनताके कारण बाहर आबाद न हो सकनेकी कठिनाई तथा विदेशी व्यापारके कारण भारतकी जो दुर्दशा हुई है उसका जीता जागता चित्र इस लोकप्रिय ग्रन्थमें चित्रित किया गया है। बीससे ऊपर चित्रोंसे सुशोभित है। तीसरा संस्करण हाल ही निकला है। मू० २), सजिल्दका ३)

नोट—हमारे यहाँ हिंदीके सब प्रकारके ग्रन्थ मिलते हैं। सूचीपत्र मँगाकर देखिए।